

अंक-166

सहयोग राशि-30 रु.

वर्ष-5, अंक-46, जून, 2017

ISSN 2320-0359

; ¼jr vke vkneh

वंचितों का मासिक आर्थिक-सामाजिक दस्तावेजी साहित्य



::संपादक::

रमणिका गुप्ता

पुस्तक सूची

रमणिका फाउंडेशन के लिए प्रकाशित एवं वितरित पुस्तकों की सूची

संपर्क एवं प्रशासनिक कार्यालय : 1516, प्रथम तल, वजीर नगर, कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली-110003

फोन : 011-46577704, मो.:09312039505

E-Mail : ramnika01@gmail.com

आदिवासी

1. पूर्वांचल एक: कविता यात्रा/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता(आदिवासी)	1985	120/-
2. बोनेक बोल/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता	1994	35/-
3. आदिम से आदमी तक/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता संग्रह (इतिहास)	1997	200/-
4. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी खंड-1/सं. रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	विविध	2002	595/-
5. आदिवासी शौर्य और विद्रोह/सं. रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	आलेख तथा कथाएं	2004	55/-
6. निज घरे परदेसी/रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	आलेख	2004	125/-
7. अपने घर की तलाश में/निर्मला पुतुल, अनु.-अशोक सिंह	कविता	2004	125/-
8. आदिवासी लोक : लोक-अस्मिता खंड-1/सं. रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	विविध	2006	350/-
9. आदिवासी लोक : लोक-संस्कृति खंड-2/सं. रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	विविध	2006	350/-
10. भारत के आदिवासी लेखक : परिचय एवं अवदान भाग-1 (आदिवासी)	परिचय	2006	450/-
11. Indigenous writers of India : Introduction and Contribution (Tribal), Ed. Ramnika Gupta	Bibliography	2006	450/-
12. Tribal Contemporary Issues Appraisal and Intervention Ed. Ramnika Gupta	Article	2007	250/-
13. आदिवासी : विकास से विस्थापन/सं. रमणिका गुप्ता	आलेख	2008	350/-
14. आदिवासी : साहित्य यात्रा/ सं. रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	आलेख	2008	275/-
15. आदिवासी कौन/सं. रमणिका गुप्ता (आदिवासी)	आलेख	2008	250/-
16. पहाड़ हिलने लगा है/वाहरु सोनवणे (आदिवासी) (रफा)	कविता	2009	75/-
17. पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियां/संपा. रमणिका गुप्ता	आदिवासी कहानियाँ	2009	60/-
18. सीता/मौसी/रमणिका गुप्ता	उपन्यास (आदिवासी)	2010	225/-
19. पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएं/सं. रमणिका गुप्ता	मिथक व लोककथाएं	2010	110/-
20. बहू जुठाई/रमणिका गुप्ता	कहानी संग्रह	2010	200/-
21. वह जिएगी अभी/सं. रमणिका गुप्ता	कहानी संग्रह	2016	250/-
22. संताली भाषा/कृष्ण चंद्र टुडू	आलेख	2011	595/-
23. आदिवासी भाषा और शिक्षा/सं. रमणिका गुप्ता	आदिवासी आलेख	2012	250/-
24. आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते साक्षात्कार/सं. रमणिका गुप्ता	आदिवासी आलेख	2012	295/-
25. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह/सं. रमणिका गुप्ता	आदिवासी आलेख	2012	300/-
26. आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना/सं. रमणिका गुप्ता	आदिवासी आलेख	2013	250/-
27. आदिवासी अस्मिता का संकट/सं. रमणिका गुप्ता	आदिवासी आलेख	2013	250/-
28. नन्हें सपनों का सुख / संरिता बड़ाइक (रफा)	(नागपुरिया-हिन्दी कविता-संग्रह)	2013	150/-
29. मलसॉमा/खॉलकुरंगी (रफा)	उपन्यास	2014	250/-
30. भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें, वासवी किड़ो (रफा)	शौर्यगाथाएं	2014	90/-
31. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखंड)/सं. रमणिका गुप्ता	आलेख/कथाएं	2015	280/-
32. आदिवासी सृजन मिथक एवं अन्य लोक-कथाएं/सं. रमणिका गुप्ता	मिथक खंड	2015	500/-
33. झारखंड की भाषाएं/सं. रमणिका गुप्ता	सर्वेक्षण	2015	1675/-
34. कलम को तीर होने दो/सं. रमणिका गुप्ता	आदिवासी कविता-संग्रह	2015	225/-
35. विमुक्त-धुमन्तू आदिवासियों का मुक्ति-संघर्ष/सं. रमणिका गुप्ता	आलेख	2015	250/-
36. आदिवासी समाज और साहित्य/सं. रमणिका गुप्ता	आलेख	2015	300/-

दलित

1. अब मूरख नहीं बनेंगे हम/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	दलित कविता	1997	250/-
2. दलित चेतना : साहित्यिक और सामाजिक सरोकार/रमणिका गुप्ता	आलेख	2000	200/-
3. तेलुगू साहित्य में दलित दस्तक/सं. रमणिका गुप्ता/डॉ. वी. कृष्ण	आलेख	2001	200/-
4. गुजराती साहित्य में दलित कलम	आलेख	2001	200/-
5. पंजाबी साहित्य में दलित कदम/सं. रमणिका गुप्ता	विविध	2002	450/-
6. दलित कहानी संचयन/सं. रमणिका गुप्ता	कहानी-संग्रह	2003	250/-

युद्धरत आम आदमी

वंचितों का मासिक आर्थिक-सामाजिक दस्तावेज़ी साहित्य

सलाहकार संपादक :

अनुज लुगुन, अनामिका, हरिराम मीणा
नितिशा खलखो, अभय मौर्य

संपादक : कार्यकारी संपादक :

रमणिका गुप्ता पंकज चौधरी

उप संपादक: सुमन कुमारी, संवादादाता : कपिल भारद्वाज

लेआउट और आवरण : बर्नड हेम्ब्रम, दिनेश कुमार

पत्रिका की सहयोग राशि

साधारण अंक 1 प्रति	:	30/-
वार्षिक (साधारण डाक)	:	350/- व्यक्तिगत
दो वर्ष (साधारण डाक)	:	700/- व्यक्तिगत
संस्थाओं के लिए (वार्षिक)	:	600/-
संस्थाओं के लिए (दो वर्षीय)	:	1200/-
आजीवन व्यक्तिगत	:	10,000/-
संस्थाओं के लिए आजीवन	:	20,000/-

प्रकाशन एवं संपादकीय कार्यालय

युद्धरत आम आदमी

रमणिका फाउंडेशन

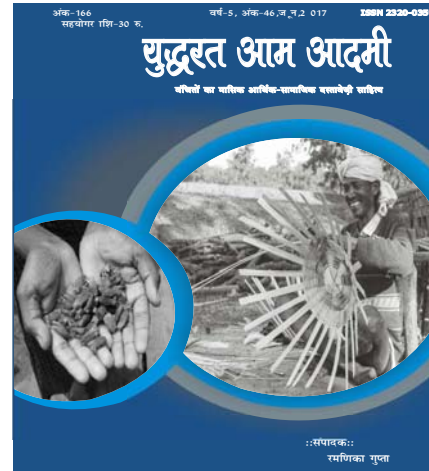
1516 पहली मंजिल, वजीर नगर, कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली-03
कार्यालय : दूरभाष. : 011-46577704, मो. : 09910744984
ई-मेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक : रमणिका फाउंडेशन

संपादक का आवास : ए-221, ग्राउंड फ्लोर
डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली-24

मुद्रक :

रुचिका प्रिंटर्स, बी-25, DSIDC कॉम्प्लेक्स,
झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110032



युद्धरत आम आदमी पत्रिका मंगवाने हेतु

सभी राशि युद्धरत आम आदमी, दिल्ली के नाम से भेजें। दिल्ली से बाहर के बैंक भेजते समय बैंक कमीशन के 50/- अतिरिक्त जोड़ दें।

सदस्यता की राशि **खाता सं.** 794412136 **शाखा** : डिफेंस कॉलोनी

IFSC Code : IDIB000D008 इंडियन बैंक में जमा कर
रसीद स्कैन कर के ईमेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com

पर भेजकर **टेलीफोन नं.**: 011-46577705 पर
12 बजे दिन से संध्या 6 बजे के बीच सूचित करें।

रमणिका फाउंडेशन से पुस्तकें मंगवाने के लिए

खाता सं. : 630001023163 **शाखा** : डिफेंस कॉलोनी
IFSC Code : ICIC0006300 आई.सी.आई.सी.आई. बैंक में जमा कर
रसीद स्कैन कर के ईमेल : ramnika01@gmail.com पर
भेजकर **टेलीफोन नं.** 011-46577704 पर 12 बजे दिन से
संध्या 6 बजे के बीच सूचित करें।

युद्धरत आम आदमी

अब आप वेबसाइट www.ramnikafoundation-yuddhrataamaadmi.org पर देख सकते हैं।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के हैं, इसमें 'युद्धरत आम आदमी', सम्पादक या सम्पादक मंडल की सहमति जरूरी नहीं है।

पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। सम्पादन और संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अनुक्रम जून 2017

खरी-खरी बात		
हिन्दी मानस और दलित लेखन	रमणिका गुप्ता	03
दलित कहानियां		
अभिप्रमाणित (दलित कहानी)	अभय कुमार	05
ठठरे की मशीन	सूर्यनाथ सिंह	12
अब और नहीं	सुशील 'मानव'	17
रधिया (दलित कहानी)	हूबलाल राम 'अलकहा'	22
बंधन और मुक्ति	धर्मचंद्र विद्यालंकार	27
लंगड़ा गांव (दलित कहानी)	रजनी कुमारी	33
हस्तान्तरण (बांग्ला कहानी)	अमर मित्र	35
अश्वेत कवयित्री	निक्की फिन्नी	41
कविताएं		
दलित युवा कवि	डॉ. कर्मानंद आर्य	42
	राम श्रेष्ठ दीवाना	46
काव्य-पाठ		
	अभिप्राय नीरव	48
	धर्मवीर यादव 'गगन'	49
	अशोक रुहेला	51
	रेखा कुरें	53
आदिवासी उपन्यास अंश		
डाईन	मंगल सिंह मुण्डा	55
दलित-आदिवासी दुनिया		
बिहार की राजनीति में अति पिछड़ों की भागीदारी : एक विश्लेषण	श्री भगवान ठाकुर	64
लिम्बाले की कहानियों में दलित चेतना	हमिमा	67
आलोचना		
मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में स्त्री जीवन का यथार्थ	सुरेश कुमार निराला	69
प्रवासी यानी विस्थापन की कहानियां	चैताली सिन्हा	72
समकालीन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श	शशि	76
साहित्य, मीडिया एवं समाजशास्त्र का अंतःसंबंध	रेशमा खान	78
सामयिकी		
महिलाओं की गोद भरता बाबा	संजीव खुदशाह	82
नए दौर के प्रकाशक	दिनेश कुमार	84
इंटरव्यू		
समाचार पत्रों की पहचान होती है भाषा : ओम थानवी	रजनीश कुमार मिश्रा	87
निकष		
नेटुआ करम बड़ा दुखदायी	डॉ. बलदेव पाण्डेय	89
ग्राम-गंध से सराबोर एक कथाकृति	डॉ. अशोक निराला	91
जीवन की लय को पकड़ने की कशमकश	बी.के. सिंह	94
जीवन की कठोरता से साक्षात्कार	संजीव ठाकुर	96
रपट		
दलित अस्मिताओं का विकास	नीतिशा खलखो	100
बहस		
दलित साहित्य संसार का सम्यक आकलन	प्रह्लाद चंद्र दास कवर बैक पेज	

हिन्दी मानस और दलित लेखन

आज दलित कलम ने प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया है। अस्सी के दशक से उसने हिन्दी में भी जोरदार दस्तक दी तो साहित्यकारों में—चाहे वे शिष्ट अभिजात साहित्यकार हों चाहे प्रगतिशील या जनवादी सभी ने इसे धीरे-धीरे स्वीकार करना शुरू किया। यह अलग बात है कि जहां शिष्ट या अभिजात साहित्यकार इसे साहित्य मानने से इंकार करते हैं, वहीं कुछ अपवाद छोड़कर प्रगतिशील एवं जनवादी साहित्यकार एक छद्म मुद्रा में अब इसे स्वीकारने लगे हैं लेकिन 'इफ एण्ड बट' (किन्तु-परन्तु) लगाकर। दरअसल अब वे इसे सीधे नकार तो सकते नहीं लेकिन इस पर अपनी परिभाषा थोपकर इसके लक्ष्य को पछाड़ने की कोशिश जरूर करते रहते हैं। इसके लिए वे कई तरीके अपनाते हैं। एक तरीका तो यह है कि कोई दलित लेखक अपनी रचना में सीधे प्रश्न न करे, तर्क करे और पूछे—

‘...कर दे तुम्हें मजबूर/रहने के लिए/ गांव-बस्ती से दूर/ गंदगी के ढेर पर/
कृमि-कीटों के समान/ तब तुम्हें कैसा लगेगा?’ (एन. आर. सागर)

तो उसे तुरंत जातिवादी या प्रतिशोधात्मक साहित्य कहकर खारिज कर देना, उस पर घृणा फैलाने वाला, कटुता बढ़ाने वाला या वर्ग-तोड़क का बिल्ला लगा देना।

दूसरा तरीका जो वे अपनाते हैं वह है हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकारों जैसे प्रेमचंद या निराला आदि को भी दलित साहित्यकारों की कतार में खड़ा कर, दलित लेखकों के महत्व को घटाने की चेष्टा करना। यहां तक कि तुलसीदास द्वारा वर्णव्यवस्था के समर्थन में कहे गए—‘ढोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी/ ये सब ताड़न के अधिकारी’ को भी वे तोड़-मरोड़ कर, अर्थ बदल-कर पेश करते हैं। नहीं तो ‘मांग के खड़बो, मसीत में सोड़बो’ को उद्धृत करके उन्हें दलित समर्थक सिद्ध करने की कोशिश करते हैं।

प्रगतिशील और जनवादी लेखक भी तुलसीदास को महाकवि मानते हैं और उनके द्वारा रचित ‘रामचरित मानस’ को कालजयी कहते हैं; जबकि पूरी की पूरी रामायण आर्य नस्ल की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उच्च जातियों द्वारा भारतीय मूल निवासियों पर वर्चस्व जमाने के लिए लिखी गई गाथा है। यह सही है कि निराला या प्रेमचंद ने जो अपने समय में लिखा वह वर्णवादी सोच के अनुसार समीचीन था। उनके कतिपय पात्र भी दलित हैं। लेकिन उनका दृष्टिकोण दलित चेतना को प्रतिबिंबित नहीं करता। उनमें समाजवादी सोच है—सामंतवादी प्रथा के विरुद्ध विरोध है—पर कहीं न कहीं उनमें सवर्ण मानसिकता, जो दरअसल भारतीय मानस या हिन्दू मानस है, अवचेतन में मौजूद रहती है और उनके साहित्य से यदा-कदा झांकती रहती है। प्रेमचंद ने मातादीन के मुंह में गाय की हड्डी दिलवाकर दलित पात्र की क्रांतिकारिता को—उस कृति में बहुत अच्छे ढंग से दिखाया है, लेकिन कफन कहानी में वे घीसू व माधव का चित्रण करने में सवर्णवादी मानसिकता के शिकार हुए हैं। उन्होंने घीसू और माधव को ऐसे संवेदना-शून्य पात्रों के रूप में पेश किया है, जो घर में पड़ी मृत पत्नी का कफन बेचकर दारू पी जाते हैं। प्रेमचंद दलित नहीं थे उनके प्रति संवेदनशील नहीं थे। इसलिए उनकी कहानी ‘कफन’ के पात्रों का चित्रण जिस प्रकार किया गया है, उससे पाठक के मन में उनके प्रति घृणा पैदा होती है। यह घृणा केवल घीसू और माधव के प्रति नहीं बल्कि उनके पूरे समाज को समेटते हुए ऐसी प्रतिक्रिया पैदा करती है, जिसकी ध्वनि यह है कि—“यह ससाले ऐसे ही होते हैं” आश्चर्य है लेखक ने घीसू और माधव को उस संवेदनहीनता की स्थिति में पहुंचाने वाले हिन्दू समाज पर एक शब्द नहीं लिखा बल्कि उस सवर्ण समाज के शिकार घीसू-माधव को ही कठघरे में खड़ा करा दिया, जो एक ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे मानसिक तौर से गुलाम बना दिया गया है। यदि एक दलित लेखक कफन की कथा को लिखता तो वह संभवतः सवर्ण समाज की क्रूरता चिन्हित करता और उसकी ध्वनि

होती—“यह हिन्दू समाज की व्यवस्था का ऐसा शिकंजा है, जिसने मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दिया। दलित लेखक की कलम घीसू और माधव को मुक्ति चेतना से लैस करती या कम से कम पाठक को उसका अहसास अवश्य कराती। यही है दलित चेतना बनाम सवर्ण हिन्दुत्ववादी भारतीय मानसिकता का अंतर। दोनों विपरीत ध्रुवों पर अवस्थित हैं।

संस्कार के नाम पर हर भारतीय को सदियों से ब्रेनवाश किया जाता रहा है। इस समाज में बचपन में ही, होश संभालते हुए यह संस्कार भर दिया जाता है कि “हम उच्च जाति के हैं और हमारे विशेषाधिकार हैं। दलित नीच हैं, निम्न जाति के हैं और सवर्णों की सेवा के लिए बने हैं। उन्हें कोई मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं है। न ही ऐसा कोई सामाजिक नियम ही बनाया गया जो उन्हें अधिकार देता हो। बस यही धर्म है, यही शास्त्रसम्मत है और यह तर्कातीत है।” ऐसे समाज की मानसिकता वाले हिन्दी लेखक चाहे वह रामायण के रचयिता तुलसीदास हों या आज का नरेन्द्र कोहली-केवट को दीनहीन मूर्ख के रूप में पेश करेंगे। इसी मानसिकता से भारतीय वाङ्मय और हिन्दू धर्म ग्रन्थों के पन्ने रंगे पड़े हैं। इसी के तहत तुलसी, शम्भूक के हत्यारे, सीता की अग्नि-परीक्षा लेने वाले तथा उसे घर से निष्कासित करने वाले छली-कपटी राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाते रहे हैं। उनके यहां पत्नी को जुए में हारने और अपने सामने उसे नंगा किए जाते देख कर भी कायरों की तरह चुप रहने के बावजूद युधिष्ठिर योद्धा, वीर और सत्यवादी कहलाए। जुआरी भी नहीं कहा उन्हें किसी हिन्दी लेखक ने जबकि वे अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए में ही हारे थे। दलित साहित्य हिन्दी साहित्य के इन्हीं मिथकों और गौरवान्वित झूठ को नकारता है। डॉ. आम्बेडकर के ‘स्वीकार और नकार’ की सोच पर आधारित दलित साहित्य जो धर्म, भाग्य, भगवान, विकृत परम्परा, अन्धविश्वास और जातीय भेदभाव को नकारता है और समानता, भाईचारे और आजादी को स्वीकार कर मानवता का हक मांगता है को कैसे स्वीकार कर सकता है हिन्दी साहित्य, जो दो मापदण्डों की संस्कृति का पोषक रहा है? यह तभी संभव होगा जब वे या तो अपना हृदय परिवर्तन कर लें अथवा मानसिकता बदलने को बाध्य कर दिए जाएं। अन्यथा “पूजिये विप्र शील, गुण-हीना, शूद्र न गुण गण ज्ञान प्रवीणा” की मानसिकता दलितों और उनके साहित्य को—आज की परिस्थितियों में यदि वर्जित नहीं कर सकी, तो उपेक्षित तो रखना चाहेगी ही। यह संभव है या नहीं यह अलग बात है। इस पर भी मैंने चर्चा की है।

यह तो बाद में प्रगतिशील और जनवादी लेखन के

प्रवेश के बाद हिन्दी साहित्य में आम आदमी या सर्वहारा का साहित्य में प्रवेश संभव हुआ और दलित पात्र भी शामिल किए गए। अन्यथा हिन्दी वाङ्मय का नायक तो केवल उच्च कुल व्यक्ति या राजा ही हो सकता था। दलित तो वर्जित था उस साहित्य में। जनवादी या प्रगतिशील लेखन में वर्गचेतना के तहत दलित पात्रों का प्रवेश हुआ पर दलित चेतना उस साहित्य में नहीं थी। कुछ अपवाद छोड़ कर वर्णवाद के प्रश्न पर प्रगतिशीलता और जनवादिता भी धरी की धरी रह गई। हालांकि प्रगतिशील और जनवादी साहित्य को भी अपने को प्रस्थापित करने के लिए भयंकर जद्दोजहद करनी पड़ी थी—बड़ा विरोध किया था हिन्दीवादियों ने—और आज भी यह दो खेमे मौजूद हैं हिन्दी साहित्य में। इनका सवर्ण-मन भारतीय मानस की वर्णवादी जातिवादी हकीकत के मुंह-दुह होने को लम्बे अरसे तक अपने को तैयार नहीं कर पाया। आज भी वह मुख्यतः वर्ग-संघर्ष को ही हर दर्द की दवा मानता है, जैसे कि यह लक्कड़-हजम पत्थर हजम चूर्ण हो। ऐसे इस सोच ने मनुष्य को केंद्र में लाकर उसकी वर्गीय आर्थिक समानता को अपना लक्ष्य बनाया और सर्वहारा की सुप्रीमसी स्थापित की। लेकिन भारतीय परिवेश में केवल वर्गीय बराबरी से सम्पूर्ण समानता नहीं मिल सकती। इसलिए डॉ. आम्बेडकर और फुले ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी के मुद्दे को इसमें जोड़ा। दलित साहित्य का भी यही अभीष्ट है। संस्कृत वाङ्मय के अनुरूप ही हिन्दी साहित्य दलित को नायकत्व के पात्र से वंचित रखने की संहिताओं के तहत लिखा जाता रहा है। इसलिए वह दलित बराबरी और भागीदारी के प्रति कभी भी आकृष्ट नहीं हुआ। ना ही वह उसके प्रति सहिष्णु हो पाया। भले कभी-कभी ‘वचन किंव दरिद्रता’ के तहत उसके पक्ष में कुछ कह देता है। पर मनसा-वाचा से उसने उनकी बराबरी कभी नहीं मानी।

दरअसल हिन्दी साहित्य, जो सोच में अभिजात ही रहा है का सौन्दर्यशास्त्र ‘सत्यं शिवं सुन्दरं’ पर आधारित है, जो दूसरों की कीमत पर सुख, आनन्द, रस और मनोरंजन को ही साहित्य का लक्ष्य मानता है। यह पूरा का पूरा साहित्य चन्द विशेष जातियों के संदर्भ में ही सत्यं शिवं और सौन्दर्य को आंकता है। ठीक इसके विपरीत है दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र। वह मनोरंजन नहीं मारक चोट में मुखरित होता है और अपने आक्रोश, प्रतिरोध और तार्किकता के कारण ही साहित्य बनता है। हिन्दी साहित्य की तरह वह फैंटेसी या कल्पना अथवा पौराणिक मिथकों के गौरव से अभिभूत होकर अतीत में नहीं जीता। उसका अतीत तो

अभिषप्त है और अतीत का गौरव है उसके अपने शोषण का प्रतीक। दलित साहित्य को समझने के लिए एक विशेष दृष्टि अपनाने की जरूरत है। चूंकि दलित साहित्य के मिथक, प्रतीक, भाषा, विधा और शैली सभी हिन्दी साहित्य के प्रतिरोध से उत्पन्न होते हैं और वह सदियों से हिन्दी साहित्य से बहिष्कृत रहा है, इसलिए दलित साहित्य हिन्दी साहित्य का अंग नहीं हो सकता। वह स्वयं में एक स्वतंत्र धारा है और एक दिन मुख्यधारा भी बन जा सकता है, जैसे महाराष्ट्र में हुआ।

जब तक हिन्दी मानस हिन्दुत्व से मुक्त नहीं होता, द्विजत्व से निजात नहीं पाता, श्रेष्ठता और उच्चकुल की ग्रन्थि के दर्प को नहीं त्यागता, शुचिता, पवित्रता और श्रेष्ठता के नाम पर उत्पीड़न, शोषण और भेदभावमूलक संस्कृति को गौरवान्वित करना नहीं छोड़ता, तब तक दलित साहित्य को आत्मसात् करना उसके लिए संभव नहीं है।

ऐसा नहीं कि दलित कलम ने इसी युग में हिन्दी साहित्य का दरवाज़ा खटखटाया है। नाथ बौद्ध और भक्त कवि, जो वास्तव में परिवर्तनकामी थे और जन-मानस में पैठ बना रहे थे ने सक्षम दस्तक दी थी। लेकिन भारतीय लेखकों ने कभी उसे सुना ही नहीं। उन्होंने उसे साहित्य ही नहीं माना। कबीर, मीरा, रैदास, दादू और नानक की क्रांतिकारी वाणी को रहस्यवाद और भक्ति की संज्ञा देकर संत खाते में डाल दिया गया था। गुरु गोरखनाथ को तो विकृत कर गोरख धन्धे का पर्याय बना दिया गया और बौद्ध साहित्य में हिन्दू मिथकों से लैस प्रक्षेपक जोड़ कर गौतम बुद्ध की मूल शिक्षा को ही विकृत कर दिया गया है।

○

(संपादक डायरी से)

२०१०/०१/२१

अभिप्रमाणित

26 जनवरी के दिन स्कूल के शिक्षकों के साथ सभी बच्चे प्रभातफेरी में '26 जनवरी जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए गांव की गलियों से गुजर रहे थे। इन बच्चों में पप्परा और टिंगरा भी शामिल थे। ऐसे स्कूल में इनका नाम प्रदीप और नागेश नाम से दर्ज था। फटा पुराना कपड़ा, सिर पर सरसों का तेल और आंखों में काजल लगाकर इनकी मां फूलिया ने इनको प्रभातफेरी में भेजने के लिए तैयार किया था। फटा सुथन्ना पहने जब इन बच्चों को पिता मोटेलाल ने देखा तो उसे मन ही मन हंसी भी आई और खुश भी हुआ। उसने फूलिया से कहा—“देखो अपने राजकुमार, कितने अच्छे लग रहे हैं।” फूलिया ने कहा—“हां फटा-सुथन्ना पहनकर भी हमारे लिए तो यही राजकुमार हैं।” हम कोई जमींदार महाराणा सिंह तो हैं नहीं जो रेडीमेड कपड़ा दे सकें। इसी बीच पप्परा और टिंगरा शोर मचाते और नारे लगाते हुए प्रभातफेरी के बच्चों की फौज में शामिल हो गए।

ठंड का महीना था। उस पर पूस-माघ में पछिया हवा, जो हड्डी को भी गला दे। मोटेलाल और फूलिया दोनों प्राणी बोरसी की आग में हाथ सेंक रहे थे। दोनों चुपचाप थे लेकिन अपने-अपने मन में बच्चों के भविष्य के बारे में भी सोच रहे थे कि—कहीं हमारी तरह ही ये भी बंधुआ न हो जाएं। पता नहीं इस जनम में बंधुआगिरी छुटेगी कि नहीं या फिर बंधुआ रह कर ही मुक्ति मिले। कब तक हमारे बच्चे स्कूल जा पाएंगे यह भी नहीं कहा जा सकता?

महरणा गांव में राजपूतों की ठठ आबादी थी। इस गांव में नहीं भी तो दो हजार घर जरूर होंगे। जजमानी जातियों को राणा सिंह के दादा जमींदार महाराणा सिंह ने बसाया था। उसमें एक-एक घर बनिया, ब्राह्मण, कानू, धोबी दो-चार घर नाई, कुम्हार, बढ़ई, चमार, जुलाहे और दस-बीस घर यादव, मुसहर के भी थे। गांव में कुछ लोग ही खुशहाल थे। बाकी की हालत ठीक नहीं थी। सभी जातियों के टोले अलग-अलग बसे हुए थे। इनमें सबसे बुरा हाल मुसहरी टोला का था। मुसहरों का घर क्या था, घर के नाम पर झोपड़ी थी। उसी में खाना-पीना, उठना-बैठना, जीना-मरना था। इनकी जिन्दगी का मतलब—जब तक देह में ताकत, तब तक खाना मिलना। उसके बाद खजुआहा कुत्तों की तरह हो जाते। अधिकतर लाचार बूढ़े-बुढ़ियां या तो ठंड से मर जाते या फिर कुछ ठंड में बोरसी तापते-तापते झुलसकर मरते। इनके जीवन में सुख का सूरज कभी नहीं उगा।

रबी की फसल पकने को आ रही थी। राणा सिंह ने मुनादी करवा दी थी कि फलाने दिन से कटनी शुरू होगी। फसल क्या थी अकाल-ओला की मारी। बरसात में जमीनें पानी में डूबी रहतीं। उसी नमी से जो भी फसल हो जाती। लेकिन हजारों बीघा जमीन होने से जमींदार परिवार खुशहाल था। राणा सिंह कंधे पर दोनाली बंदूक रखे घोड़ी पर सवार होकर अपने जमीन-जायदाद देखने जाया करते। उसके साथ चार-चार पहलवान भी होते। इनमें जतन दुसाध, मक्खन यादव और दो राजपूत से थे। सभी पहलवान हट्टे-कट्टे थे। इलाके के लोग इन लठैतों को देख कर राणा सिंह से अधिक डरते थे। कोई भी राणा सिंह से आंखें मिलाकर बातें करना तो छोड़ उनके सामने से गुजरते भी डरते थे।

महरणा गांव का पड़ोसी गांव मंझारी भूमिहार जाति का गांव था। इस गांव की जमीन-जायदाद महाराणा गांव से सटी हुई थी। दोनों गांवों के जब कभी जातीय अहंकार जाग जाते तो आपस में लाठियां बरसने लगतीं। इसमें कभी कुछ घायल, जख्मी होते तो कभी-कभी एकाध मर-मुरा भी जाते। एक बार महरणा के राजपूत मंझारी के भूमिहारों से भिड़ पड़े। दोनों गांवों के बीच लाठियां चलने लगीं।

इस भिड़ंत में मंझारी दल भारी पड़ने लगे थे। तभी जतन दुसाध तेल पिलाए लाल लाठी लेकर मैदान में कूद पड़ा और महाभारत के अभिमन्यु की तरह चक्र को तोड़ने लगा। उसने मंझारी के चार-पांच लोगों को एक झटके में गिरा दिया। इससे महरणा गांव के दल की हिम्मत बढ़ गई। दूसरी तरफ से मक्खन यादव भी लाठी भांजे जा रहा था। इन दोनों की लाठी के सामने मंझारी गांव के भूमिहार पस्त हो रहे थे। कई खून से लथपथ हो चुके थे।

अचानक महरणा और मंझारी के जमींदारों को पता नहीं क्या हुआ जो युद्ध महरणा के राजपूतों और मंझारी के भूमिहारों के बीच ठना था, वह जतन दुसाध और मक्खन यादव के विरुद्ध हो गया। जतन और मक्खन महाराणा गांव की तरफ से और मंझारी के विरुद्ध लड़ रहे थे—दोनों विरोधी महाराणा के राजपूत और मंझारी के भूमिहार एक हो गए। दोनों तरफ से जतन और मक्खन पर लाठियां बरसने लगीं। मंझारी की लाठी का जवाब तो वे दे रहे थे परंतु महरणा जिनकी तरफ से वे लड़ रहे उसकी भी वे दोनों लाठियां खा रहे थे। अंत में दोनों मंझारी के भूमिहार और महरणा के राजपूतों ने मिलकर जगन दुसाध और मक्खन यादव को अधमरा कर वहीं गिरा दिया। दोनों जातियां एक दूसरे की घोर विरोधी और खून के प्यासे रहते थे फिर भी इस लड़ाई में वे न तो हारे न तो जीते। लेकिन जतन दुसाध और मक्खन यादव जो निम्न जाति से थे उनके द्वारा इस तरह का वार और प्रहार किया जाना उनके जाति दंभ को तोड़ता लगा। दोनों जाति आपसी दुश्मनी को समेटे लेकिन अपने दंभ पर अभिमान करते हुए शान से अपने-अपने गांव लौट रहे थे। कोई छूटा था तो वह था जतन दुसाध और मक्खन यादव। उनके अधमरे शरीर को कुत्तों-कौओं को खाने के लिए छोड़ आए थे।

महाराणा और मंझारी की घटना को लेकर दोनों गांवों में बहस चल पड़ी थी। दोनों गांव हार-जीत से उतने दुखी नहीं थे किंतु-परंतु चिंतित उस वार के प्रहार से हो रहे थे जिसके निशान मंझारी के जमींदारों की पीठ पर पड़े थे। इतने सालों से आपस में छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ते-भिड़ते रहे। कितने घायल और जखमी हुए परंतु उसका कोई निशान बाकी नहीं था। लेकिन जगन और मक्खन के दिए निशान अति पीड़ादायक थे और उसपर सोचने पर मजबूर हो रहे थे। मंझारी गांव का बूढ़ा रामख्याली सिंह ने अपनी पकी दाढ़ी खुजलाते हुए कहा—देखो तुम लोगों को महरणा से इस तरह का द्वेष छोड़ देना चाहिए। और जाओ मिल-जुलकर रहने की बात करो। अगर ऐसा नहीं करते तो भविष्य में अलग-अलग दिशाओं से लाठियां बरसेंगी। उसका जवाब तुम दोनों मिल कर भी नहीं दे पाओगे। समय रहते आपस में अपना सम्बन्ध सुधार लो वरना तुम इतने नहीं हो कि अपनी जमीन-जायदाद बचा पाओगे। बूढ़े रामख्याली सिंह की बातों में दम था और उसका इशारा सभी लोग समझ रहे थे।

देश आजाद हुआ था अंग्रेजों से परन्तु गांव की आधी से अधिक आबादी धनपुत्रों की गुलाम थी। मुट्ठी भर लोग थे जिन्हें दोनों जून भरपेट भोजन मिलता बाकी किसी तरह गुजारा करते। मुसहरी का जीवन उसके श्रम पर निर्भर करता

था। वे कमाते तो खाते नहीं, तो भूखों मरने की स्थिति बनी रहती। फसल कटाई के समय जो बोन^१ मिलता उससे कुछ दिनों का गुजारा होता। बोन भी क्या मिलता जहां दस मजदूर की जरूरत होती वहां बीस-तीस मधुमक्खी की तरह खेतों में कूद पड़ते। खलिहान^२ से खेत प्रायः दूर होता इसलिए कटनियों को फसल का बोझा सिर पर ढोकर लाने में बहुत मशक्कत करनी पड़ती। परिवार का पेट भरने के लिए लोग अंतिम दम तक प्रयास करते रहते। जमींदार को हमेशा लगा रहता कि कहीं मजदूर फसल का बोझा खलिहान में न रख कर बल्कि चुराकर अपने घर न ले कर चले जाएं। इस पर अधिक निगरानी रखनी पड़ती। लेकिन समस्या यह थी कि एक तो खेत-खलिहान से दूर, दूसरा मजदूरों की अधिक आबादी। इसमें यह पता लगाना मुश्किल हो जाता कि कौन मालिक का बोझा है और कौन मजदूरों के बोन का।

मोटेलाल और फुलिया भी बोन बटोरने में इस तरह लगे थे जैसे चूहा फसल कटने से पहले सालभर का अनाज अपने मांद में भर लेता है। बोन से जो भी मिलता मजदूरों के लिहाज से बहुत ही कम था। लेकिन दूसरा उपाय भी तो नहीं था। ज्यों-ज्यों फसल की कटाई तेज होती जाती त्यों-त्यों जमींदार का शक भी मजदूरों पर बढ़ता जाता। अकाल की मार खाए लोगों पर विश्वास करना मुश्किल था। गरीबी-भुखमरी ने पेट की आग के सामने नैतिकता और ईमानदारी जैसे आदर्श धूमिल पड़ने लगते हैं और कोई भी कुकर्म कम या ज्यादा नहीं लगने लगता। यद्यपि मजदूर इस तरह की हिम्मत तो नहीं कर सकते थे परंतु जीव तो जीव ही है। लोभ में कभी-कभी कुछ लोग फंस जाते और सफल भी हो जाते। लेकिन महरणा में ऐसा करना वहां के मजदूरों की सोच से बाहर था। जो कोई शक पर भी पकड़ा जाता तो जमींदार जानवरों के खूंटों से उसे बांधकर ऐसा मारता-मरवाता कि फिर कोई ऐसा सोचने से भी डरते।

शाम का समय था। फसल का बोझा खलिहान में सैंता^३ जा रहा था। बनिहार^४ अपना-अपना बोन लेकर घर जा रहे थे। राणा सिंह अपने पिता रणवीर सिंह के साथ फसल और मजदूरों को लेकर आपस में बातचीत कर रहे थे। रणवीर सिंह ने शंका जताते हुए कहा—कहीं मजदूर चोरी-चकारी तो नहीं करते। जरा ध्यान रखना। ऐसे ही पिछले दस सालों से अकाल पड़ रहा है। जो फसल होती है उससे अपना परिवार ही मुश्किल में रहता है तो इन बनिहारों का क्या। जरा शक्ति बरता करो। जहां-जहां कटाई होती है वहां अपनी बिरादरी के लठैतों को भी देख-रेख में लगा दो। बाकी दोनों जगन और मक्खन पर अब भरोसा नहीं किया जा सकता।

पिता रणवीर सिंह को बीच में ही टोकते हुए राणा सिंह ने कहा—क्या कोई ऐसा उपाय नहीं किया जाए कि इस तरह की कोई चोरी-चकारी हो ही नहीं। लोगों में एक भय भी रहेगा। भय की विशेषता है कि वह व्यक्ति को अकेले में भी खुद को खुद का ही पहरेदार बनाए रखता है। स्वयं किसी गलती को करने की क्या सोचने पर भी वह पहरा लगा देता है।

रणवीर सिंह ने उत्सुकतावश पूछा—क्या करोगे?

राणा सिंह ने कहा—ऐसा करते हैं कि एक मजदूर को हम पहले ही बता देंगे कि कल तुम्हें सभी के सामने खलिहान में इस बात पर पीटेंगे कि तुमने आज रास्ते से बोझा चोरी किया था। पहले तुम मना करोगे और बाद में तुम स्वीकार कर लेना। इसके बदले में तुम्हें हम दस बोझा अनाज देंगे। इसको देख कर मजदूरों में खौफ हो जाएगा कि जर्मीदार की नजर चारों तरफ है। अनजाने में भी कोई किसी तरह की गड़बड़ी करने के लिए सोचेगा तक नहीं। इस काम के लिए अपनी बिरादरी के लठैतों को लगा देंगे। पिता-पुत्र के बीच कल के लिए विचार कर लिया गया।

दूसरे दिन लठैतों को इसका अंजाम देना था। शाम के समय लठैतों ने मोटेलाल को मारना-पीटना शुरू कर दिया। खलिहान में शोर मचा हुआ था। सभी मजदूर मोटेलाल को पीटते देख कर पूछना शुरू किया—क्या किया इसने जो तुम इसे इस तरह बेरहमी से पीट रहे हो?

लठैतों ने कहा—इसने मालिक का बोझा चोरी किया है। अगर विश्वास नहीं होता तो खुद ही इससे पूछ लो।

मजदूरों ने मोटेलाल से पूछा—मोटेलाल दोनों बच्चों के माथे पर हाथ रखकर कसम खा गया और बोला—मैंने कोई चोरी नहीं की है।

लठैतों ने और पीटना शुरू कर दिया और पीटते-पीटते मोटेलाल को अधमरा कर दिया। मोटेराम दौड़ता-भागता राणा सिंह के पास पहुंचा और हांफते हुए बोला—मालिक आपने लठैतों को मुझे मारने को कहा था। वहां खलिहान में उन्होंने मुझे मारकर अधमरा कर दिया है। जाइए कुछ कीजिए।

क्या! चौंकते हुए राणासिंह ने कहा। मूर्खों को क्या कहा और क्या कर दिया। उसने मोटेराम से कहा—देखो तुम्हारा दस बोझा मिल जाएगा। तुम चुपचाप अपने घर चले जाओ। मैं सब कुछ देख लूंगा। राणासिंह खलिहान पर पहुंचे और लठैतों को धकियाते एवं गाली बकते हुए वहां से चले जाने को कहा और फूलिया से बोला—इसे घर लेकर जाओ। दवाई-पानी का खर्च दे देंगे। इतना कहकर वह चला गया।

फूलिया के साथ और लोग भी मोटेलाल को सहारा देकर उसकी झोपड़ी तक छोड़ गए। खाट पर मोटेलाल कराह रहा

था। बार-बार यह कह रहा था—जब मैंने कुछ किया ही नहीं तब मुझे क्यों मारा? मेरी नीयत में कभी चोरी की बात आई भी नहीं। बार-बार इसी को रटता। फूलिया ढाढ़स दिलाती और कहती—हमारे भाग्य में यही लिखा है। एक तो बंधुआगिरी भी करो ऊपर से मुफ्त में मार भी खाओ। कमजोर की बहु सबकी भौजाई। गर्म पानी से मोटेलाल के घाव को सेंकती जाती और हे भगवान! कह कर रोती भी जाती। दोनों बच्चे भी इस हालात को देखकर जोर-जोर से रोने लगते। पास-पड़ोस की मर्द-महिलाएं आते और आश्वासन देकर चले जाते। सभी अंदर से टूटे हुए थे।

मोटेलाल को लाठी की चोट से अधिक इस बात का दर्द हो रहा था कि जो मैंने किया ही नहीं उसको हम क्यों भोगें। जिन्दा रहकर क्या करेंगे। रोज-रोज मरने से अच्छा है एक बार मर जाना। मन ही मन वह फैसला कर लिया। जब सभी सो जाएंगे। बस्स! आदमी जब निराश होता है और उसमें कदम उठाने की भी हिम्मत नहीं होती तब वह मरने या आत्महत्या करने के लिए दौड़ लगा देता है। लेकिन सहारा मिलते ही वह फिर से जीने के लिए भी उठ खड़ा होता है। जीवन में जीने की संभावनाओं की उम्मीदों को तलाशना भी शुरू कर देता है।

रात के तीसरे पहर बाद मोटेलाल उठा और चल पड़ा। कराहते हुए चलता और अपनी किस्मत को कोसता जाता। किसी तरह चलते-चलते रेलवे लाइन के पास पहुंच गया। अपनी धुन में चलता रहा उसे पता नहीं चला कि उसके पीछे-पीछे कोई आ रहा है। तभी पीछे से बालगोविन्द यादव ने आवाज दी।

बालगोविन्द यादव अपनी जवानी के दिनों में किसी को जाति को लेकर सताए जाने पर अपनी आवाज बुलंद करता रहा। इसीलिए एक बार सरपंच भी चुना गया था। मोटेलाल को इतनी सुबह रेलवे लाइन की तरफ जाते देख कर उसके मन में शंका हुई थी। गांव के परिवार में किसी से किसी का झगड़ा-झंझट हो जाए तो लोग मुक्ति के लिए रेलवे लाइन की तरफ ही दौड़ते। हाथ में लोटा लिए वह दौड़ता हुआ मोटेलाल के पास पहुंचा था। उसने बिना कुछ कहे रेलवे लाइन के दोनों तरफ गौर से देखा, कोई गाड़ी तो नहीं आ रही है।

बालगोविन्द ने मोटेलाल के पास आकर कहा—देखो, जो तुम करने जा रहे हो उसका परिणाम तुमने सोचा है? कल जो कुछ हुआ उसके बारे में सभी को पता है। हमारे समाज के लोग हिजड़े हैं। जहां ताकत दिखाने की बात होती है वहां तो दुम दबा कर भाग जाते हैं। राजपूत-भूमिहारों के सामने तो ये कुत्ते की तरह दुम हिलाते रहते हैं लेकिन बच्चा पैदा करने में शेर हो जाते हैं। देखो मोटेलाल, तुम्हारे पीछे बच्चों का क्या

होगा जरा सोचो? तुम्हारी पत्नी का क्या होगा? वह तुम चंदुआ की पत्नी रतनी को देख ही रहे हो। उसके मरद ने भी रेल से कट कर अपनी जान दी थी। रतनी को जल्लादों ने रखैल बना रखा है। रहा बच्चों का सवाल, तो जमींदार को एक की बजाय दो और बंधुआ मिल जाएंगे। उन लोगों का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। हां, तुम्हारे परिवार का सर्वनाश जरूर हो जाएगा।

मोटेला ल कराहते हुए बोला—काका, इस तरह की जिल्लत से मर जाना बेहतर समझता हूं। जिन्दा रहकर भी बच्चों के लिए कौन-सा ताजमहल बना रहा हूं।

बालगोविन्द हिम्मत बंधाते हुए बोला—ताजमहल क्यों नहीं बना सकते। प्रयास करके देखो। इस गांव में तुम्हारे बाप-दादा की कौन सी जमींदारी है। यहां से बाहर भी तो दुनिया है। जाओ, बाहर जाओ। कमाओ-कोड़ो। बाल-बच्चे समेत मेहनत-मजूरी करो। कम से कम वहां बिना बात के लोग डंगाएंगे⁶ तो नहीं। यहां बैल की तरह मेहनत करते हो और गधों का जीवन-बसर करते हो। ऐसे ही मरने जा रहे हो तो जाओ कमा-धमा कर, लड़-पिट कर मरो। तब लोग तो नहीं कहेंगे कि मोटेला ल डरपोक है। और मरा भी तो मेहनत-मजूरी करते हुए मरा। देखो लखन धोबी को, बाहर चला गया और शहर में लॉन्ड्री खोल ली। यहां जमींदारों के लत्ते धो-धोकर पीढ़ियां गुजर गईं और बाल में तेल भी मयस्सर नहीं हुआ। किसी के यहां बच्चा-जच्चा होता तो चुल्लूभर तेल कपाड़ (सिर) पर नसीब होता। जाओ मोटेला ल, कहीं और जाकर मरना। इस धरती को अपने खून से मत सनो।

मोटेला ल जिस तरह लंगड़ाता हुआ मरने आया था, बालगोविन्द की बात सुनकर जीने की लालसा में मन ही मन विचार करता हुआ घर लौट आया। घर में किसी को कानों कान खबर भी नहीं हुई थी। बीच में फूलिया उठी थी तो सोची कि बाहर मैदान के लिए गए होंगे। मोटेला ल को आते देख कर फूलिया पूछी—बहुत देर लगा दिए। कोई और तकलीफ है क्या? मोटेला ल बोले—हां।

फूलिया उठ बैठी और पास बैठ कर पीठ सहलाने लगी। दर्द हो रहा है। कराहते हुए मोटेला ल बोला—दर्द हो रहा था और दर्द देने भी गया था। लेकिन धन्य हो बालगोविन्द काका का जिसने समय पर हमें रोक लिया। नहीं तो तुम मुझे चन्दुआ वाली स्थिति में पाती। फूलिया को काटो तो खून नहीं। अपने आप को संभालते हुए बोली—मैं तो सोची थी कि आप मैदान गए हैं। हे भगवान! आप क्या करने जा रहे थे। हमारे और बच्चों के बारे में तनिक भी नहीं सोचा।

फूलिया का दर्द मोटेला ल समझ रहा था। जिस तरह अति सुख होने पर आदमी पागल होने लगता है उसी तरह अति दुख में भी अपना सुध खोने लगता है। मैं तो ठहरा अनपढ़-गंवार। मैं जो करने गया था वह सही नहीं था। लेकिन अब जो करूंगा वह सब तुम सबके लिए सही होगा। अपने आपको संभालते हुए फूलिया बोली—क्या करेंगे?

मोटेला ल आत्मविश्वास भरे स्वर में बोला—अब इस गांव में नहीं रहेंगे। कहीं और जाकर गुजर-बसर करेंगे। हमारी पीढ़ियां जमींदारों की जमीन कोड़ते-कोड़ते खुद उसमें दफन हो गईं। मरने के बाद कइयों को तो दो गज कोरा कफन भी नसीब नहीं हुआ। जब यहां भी मरना है वह भी जिल्लत भरी मौत तो यह मौत कहीं और जाकर क्यों नहीं आजमाएं। बालगोविन्द काका लखना के बारे में बता रहे थे। सही में वह पहले से बहुत अच्छा जीवन-बसर कर रहा है। चलो हम भी चलते हैं। कहीं और। कम से कम बिना बात की डांग (लाठी) तो नहीं खाएंगे।

फूलिया को भी ठीक लगा। एक दिन सुबह होने से पहले बिना किसी को कुछ बताए दिल्ली जाने वाली गाड़ी अपर इंडिया में सपरिवार बैठ गए। इससे पहले कि बच्चे कुछ पूछते गाड़ी चल पड़ी और वे खिड़कियों से बाहर की दुनिया को देखने में व्यस्त हो गए। जो कुछ घर में कच्चा-पक्का पड़ा था पफूलिया ने गठरी में बांध ली थी। और पिफर झोपड़ी में था भी तो क्या? नंगा नहाए क्या निचोड़े क्या! रास्ते भर कच्चा-पक्का खाते-पीते पुरानी दिल्ली स्टेशन पहुंच गए। स्टेशन शहर जैसा लग रहा था। और स्टेशन पर मोटेला ल का परिवार रेशमी टाट में चिप्पी। इधर-उधर बहुत देर तक देखता रहा। उनकी फटेहाल स्थिति बाहर से ही नजर आ रही थी। बिना पूछे कोई भी बता सकता था कि इस खत का मजमून क्या है। सुबह से शाम हो गई। कहां जाएं, क्या करें कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जब कुछ समझ में नहीं आता तो फूलिया मोटेला ल दोनों आपस में आपबीती सुनाने लगते। भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता बोली-भाषा को लेकर भी है। प्रत्येक गांव और क्षेत्रीय स्तर की बोली-भाषा का स्वर अनोखा है। इसलिए जब कोई अपने गांव या क्षेत्र की बोली में बातें करते हैं तो उस बोली को समझने वालों का बोलने वाले के प्रति जिज्ञासा बढ़ जाती है। मोटेला ल और फूलिया की बातों को सुन कर उसके पास लाल कमीज पहने एक बूढ़ा आकर खड़ा हुआ और पूछा—भाई तुमलोग सुबह आए थे और अभी तक यहीं पर हो। तुम्हारी बातचीत सुन रहा था। तुम लोग मुंगेर जिला के रहने वाले हो क्या?

मोटेलाल और फूलिया उसको देख कर पहले डर गया और सोचा कोई बाबू होगा। हम लोगों को यहां से भगाएगा। बड़े ही डरते हुए भाव में बोला-नैय बाबू। हमरा सब पर बड़का ठो विपत्ती आइ गेल छै। जान बचाए क अइले छिय बाबू। हम्मर त कौउनो कसूरो नैय छले।(नहीं बाबू। हम पर एक बड़ी बिपत्ति आ गई थी। जान बचा कर आयें हैं बाबू। हम लोगों का कोई कसूर नहीं था।) इतना कहकर मोटेलाल और फूलिया दोनों सुबक-सुबक कर सोने लगे। लाल कमीज वाला आदमी बोला- डरे के कोय जरूरत नैय छै। की होले छल। जरा बतावो त।(डरने की कोई बात नहीं है। क्या हुआ था। बताइए।)

मोटेलाल और फूलिया ने बारी-बारी से अपनी व्यथा सुनाई और पीठ पर पड़े निशान को भी दिखाया ताकि उनकी बातों पर विश्वास कर सके। दाग को देखते ही लाल कमीज वाला आदमी का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। मोटेलाल को लगा जैसे अपनी कहानी सुनाकर उसने कोई गलती कर दी हो। लाल कमीज वाला बाबू को इस तरह से नहीं कहना चाहिए था। थोड़ी देर बाद उसका चेहरा ठीक हुआ। लाल कमीज वाला पास में वहीं बैठ गया और वह सुबक-सुबक कर रोने लगा।

दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। जो आदमी पहले गुस्से में था अचानक रोने क्यों लगा। फूलिया ने हिम्मत जुटा कर पूछा-की होय गेलो बाबू। तोय रोबअ काहे लघलो। हमरा सभै सै कोय गलती त नय होय गेलै कि? हम्मा सब बाबू बंधुआ छिये? पहली बार रेलगाड़ी म बैठलिये आरू यहां पहुंच गैइले। (क्या हुआ बाबू। आप रोने क्यों लगे? हम लोगों से कोई गलती तो नहीं हो गई? हम तो बंधुआ हैं बाबू। पहली बार गाड़ी में बैठे और यहां पहुंच गए।) फूलिया और मोटेलाल अपनी भाषा में बोलता चला गया। लाल कमीजवाला आदमी सुबकता चला गया। थोड़ी देर बाद वह बोला- तौय सब हमरा साथ चलो। बगल म ही हम्मर झुग्गी छै। चलो वहीं परिया बैठ बात करबै। (आप लोग हमारे साथ चलें। पास में ही हमारा झुग्गी है। वहीं पर बैठ कर बात करेंगे।) मोटेलाल परिवार समेत लाल कमीज वाले के साथ पीछे-पीछे चल पड़ा।

झुग्गी क्या थी गांव वाली झोपड़ी से भी उसका बुरा हाल था। परिवार के नाम पर वह अकेले था। बिस्तर के नाम पर कई बोरों को एक साथ सिल कर बनाया हुआ एक गेंदरा⁷ था। सब सामान अस्त-व्यस्त था। लोटा कटोरी सब पर पता नहीं कब से धूल पड़ी थी। देख-रेख के अभाव में सब कुछ तितर-बितर था। दो-चार कांच की बोतलें पड़ी थी जो थोड़ी

साफ-सुथरी दिख रही थी। सभी को बिठा कर लाल कमीज वाला झोपड़ी से बाहर गया कुछ खाने-पीने के लिए ले आया। बच्चों को बहुत भूख लगी थी। वे दोनों हाथों से खाने लगे।

फूलिया को संबोधित करते हुए लाल कमीज वाला बोला-बेटी, मैं कोई बाबू नहीं हूं। स्टेशन में मुसाफिरों का समान ढोता हूं। कुली हूं। तुम सबको देख कर मुझे अपनी कहानी याद आ गई। मैं भी तुम्हारे जिला का ही रहने वाला हूं। मेरा घर गंगा पार था। मेरा नाम शीतल यादव है। मेरा भी भरा-पूरा परिवार था। जमीनें तो थी नहीं। हां सम्पत्ति के नाम पर चार-पांच भैंसे थीं। दूध बेचकर परिवार का गुजारा किया करता था। घर में दूध-घी होता था जिसको खा कर मैं बहुत ताकतवर था। एक दिन मेरी भैंस गांव के जमींदार उज्ज्वल राय के खेत में चली गई। उसकी फसल को थोड़ा नुकसान पहुंचा। जानवर जानवर होता है। आदमी तो है नहीं जो भला-बुरा सोचे। उस समय यादव और भूमिहारों में ठना-ठनी चल रही थी। भैंस का बहाना भूमिहारों को मिल गया। मेरी भैंस पकड़ ली और अपने दरवाजे पर बांध ली। लोग लाठी-भाला लेकर मेरे घर पर आ धमके और गाली-गलौज करने लगे। मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ और मार-पीट हो गई। वे तीन-चार थे। मैंने सभी को मार कर गिरा दिया और उसका लाठी, भाला, फरसा सब रख लिया। इस बात का रोष गांव भर को हो गया। लोगों ने रात में मेरे घर में आग लगा कर मार देने की सोची। मुझे पता लगा। मैं उन लोगों से लड़ना चाहता था। पर परिवार था, पत्नी रोने लगी और बोली नहीं हम इस रावन के गांव में नहीं रहेंगे। सतना नाई के परिवार को भी इसी तरह जला कर मार डाला था। रातों-रात हम लोग जान-माल छोड़कर अपना जान बचाने निकल पड़े। रात में ही नाव से नदी पार किया और गंगा मइया को अंतिम बार प्रणाम करके तुम्हीं लोगों की तरह दिल्ली चला आया। कुछ दिनों के बाद हैजा में मुझे छोड़कर सभी लोग चल बसे। मैं अकेले इस झुग्गी में रहता हूं। जब मैंने तुम्हारी कहानी सुनी तो मुझे अपना बीता जीवन याद आ गया और अपने आप को रोने से रोक नहीं पाया।

खैर कोई बात नहीं-यहीं रोजी-रोटी का इंतजाम हो जाएगा। जब भगवान ने मुंह दिया है तो कौर⁸ भी देगा। जब दुख समान होता है तो संवेदनाओं के बंधन में मनुष्य अपने आप बंधते चले जाते हैं। फूलिया, मोटेलाल और बच्चों को देख कर शीतल को लगा जैसे अपना बिछुड़ा परिवार मिल गया हो।

दिल्ली में उस समय नए-नए भवन, रोड, ऊंचे-ऊंचे

मकान आदि बनने लगे थे। राजधानी के रूप में दिल्ली का चहुंमुखी विकास हो रहा था। शहर पुरानी दिल्ली और कर्नाट प्लेस से कई किलोमीटर आगे बढ़ गया था। यहां के गांव धीरे-धीरे शहर का रूप ले रहे थे। इन सबके लिए मजदूरों की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति में मोटेलाल और फूलिया बंधुआ से दिहाड़ी मजदूर बन गए। दोनों मिलकर एक दिन में इतना मजदूरी कमा लेते जितना गांव में महीनों में भी संभव नहीं था।

शीतल यादव की अवस्था गिरती चली गई और एक दिन वह सदा के लिए सुख की नींद सो गया। दोनों को ऐसा लगा कि अपना बाप ही मर गया हो। उसका अंतिम संस्कार किया और जो दो पैसे कमाए थे उससे रहने लायक थोड़ी जमीन खरीद ली। उसी में झोपड़ी बनाकर रहने लगे। झोपड़ी तो गांव में भी थी लेकिन वह बंधुआ की झोपड़ी थी और यह सम्मानित दिहाड़ी मजदूर की झोपड़ी बन गई। यहां किसी जमींदार का रौब नहीं था और न ही बिना बात लाठी चलाने वाला। दोनों बच्चों को नगरपालिका के स्कूल में दाखिला दिलवा दिया। शहर के माहौल में बच्चे पलने लगे। किसको पता था कि एक दिन ये बच्चे साहब बनेंगे वे भी बंधुआ के बेटे। बड़ा बेटा प्रदीप केंद्रीय मंत्रालय में ऑफिसर बना वहीं छोटा नागेश बिहार लोक सेवा आयोग में। बेटों की तरक्की से मोटेलाल और फूलिया बहुत खुश थे। वे दोनों बालगोविन्द यादव को याद करना नहीं भूलते। उन्हें दिल से याद करते और आंसू बहाते।

नागेश की ट्रेनिंग चल रही थी। ट्रेनिंग के बाद उसे प्रखंड विकास पदाधिकारी का सेवा भार दिया गया। बिहार में रहते दो-तीन वर्ष बीत चुके थे। नागेश की जहां-जहां पोस्टिंग होती माता-पिता एवं बड़े भाई को वहां की स्थिति बताता। अगली पोस्टिंग महाराणा प्रखंड में हुई। ईमानदार होने के कारण जिलाधिकारी नागेश को बहुत पसंद करते और प्रखंड स्तर की मीटिंग में उसकी तारीफ जरूर करते। इस प्रखंड की हालत भी औरों जैसी ही थी। विकास के नाम पर पैसों की लूट थी। ठेकेदारों का बोलबाला था। जिस जाति के लोग दबंग होते ठेका उन्हीं को मिलता। दबे-कुचले तो मेहनत-मजदूरी में ही मजबूर होकर विश्वास रखते।

समय भी बदल रहा था। सामाजिक जातीय संस्कार के अहंकार में कमी नहीं तो परिवर्तन जरूर हो रहा था। आर्थिक स्तर पर लोग ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जा रहे थे लेकिन सामाजिक संस्तरण बहुत कुछ पुराना ही था। राणा सिंह की जमींदारी टुकड़ों में बंट चुकी थी। उसकी आधे से अधिक जमीनों को बटाईदारों ने बेच खायी थी। जो बची थी

वह भी कोर्ट-कचहरी में गरमजरा⁹ कह कर मुकदमा चल रहा था। पहले का जमाना ही कुछ और था। जहां तक दबंगों की नजर जाती जमीनें उसकी हो जातीं।

सरकारें बदल रही थीं और समाज भी। समय के करवट लेने से जातीय दंभ भी टूट रहे थे। अब केवल जमीन से जीवन गुजार पाना मुश्किल हो रहा था। और होता भी कैसे? पानी के लिए हमेशा आसमान की ओर निहारना पड़ता। जिसको दस-बीस बीघे तक जमीनें थीं वह भी सरकारी कलर्की के लिए दिए में आंखें फोड़ रहे थे। राणा सिंह का परिवार घुड़सवारी में ही लगा रहा। स्वयं राणा सिंह भी गुस्से में अपने बच्चों को सरस्वती का दुश्मन कहते थे। बड़े पोते का विवाह हो चुका था। उस पर भी बाल-बच्चों का बोझ बढ़ चुका था। जितना ज्ञान था उसमें एक ही व्यापार बचा था- ठेकेदारी। प्रखण्ड स्तर पर ग्रामीण विकास के नाम पर फंड आता। इसी से सम्बन्धित राणा सिंह का पोता वीरविजय सिंह प्रखंड कार्यालय आवेदन के लिए जा रहा था। जाने से पहले दादा राणा सिंह से आशीर्वाद लेने गया।

राणा सिंह ने समझाते हुए कहा-देखो ऑफिसर के सामने झुक कर विनम्रता से दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना। सब कुछ इन्हीं के हाथों में होता है। अकेले में हो तो पैर भी छू लेना। आशीर्वाद में लक्ष्मी मिलेगी। और तुम्हें इस हालात में क्या चाहिए। वीरविजय सिंह दादा से आशीर्वाद लेकर प्रखण्ड कार्यालय चल पड़ा। रास्ते में जितने थान और देवी-देवता के स्थान मिले सभी को प्रणाम करते हुए प्रखण्ड कार्यालय पहुंचा।

प्रखण्ड कार्यालय में बहुत भीड़ थी। क्लर्क फाइलें लेकर इधर-उधर दौड़ रहे थे। लोग आपस में काना-फूसी कर रहे थे कि यह बीडीओ बड़ा कड़क ईमानदार आदमी है। वाजिब हो तो तुरंत अपना मुहर लगा देता है लेकिन जरा भी गड़बड़ हुई तो ऐसा डांटता है कि पतलून गीली हो जाए। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित जो भी कागजात थे उसे किसी तरह वीरविजय ने इकट्ठे कर लिए। फॉर्म को सही तरीके से भर कर बीडीओ से एटेस्टेड करवाना था।

वीरविजय सिंह सभी पेपर लेकर बीडीओ के दफ्तर में पहुंचा। दादा राणासिंह के बताए व्यवहार को याद किया और विनम्रता से बीडीओ को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और निकट पहुंचकर पैर भी छू लिए। नागेश को बड़ा अटपटा लगा। उसके साथ इस तरह की घटनाएं कई बार घट चुकी थीं। नागेश ने पेपर की पूरी जांच करके उसपर एटेस्टेड कर दिया। खुश होता हुआ वीरविजय घर पहुंचा और अपने दादा को सारी घटना सुनाई। पोते की खुशी में

दादा भी खुश हुआ लेकिन मन ही मन दुख भी हो रहा था कि जो परिवार किसी के सामने कभी नजरें नहीं झुकाया करता था बल्कि लोग उसके सामने नजरें झुका कर बातें करते थे आज वह परिवार अनजान व्यक्ति को जिसका जात-धर्म पता नहीं उसके चरणों पर अपना सर झुका कर चरणस्पर्श किया। इस दुख को बूढ़ा राणा सिंह मन में ही दबा गया। बीडीओ के काम को सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और उसे धन्यवाद देने के लिए सोची।

प्रखण्ड कार्यालय के पास ही नागेश को क्वार्टर मिला था। उसके पास सामान के नाम पर बिस्तर, खाना बनाने का सामान और कुछ अच्छी किताबें थीं। इनमें से जो सबसे महत्वपूर्ण था वह था मां-पिता एवं भाई की फोटो जिसको बड़े फ्रेम में मढ़वा कर बैठकी में लगाया था। एक सुबह राणा सिंह अपने पोते वीरविजय को लेकर बीडीओ से मिलने चला। साथ में कुछ मिठाई भी संदेश के रूप में ले लिया। सामाजिक व्यवहार में मिलने-जुलने का एक तरीका रहा है उसी का वह निर्वाह कर रहा था। क्वार्टर के गेट पर पियून बैठा था। उससे बीडीओ साहब से मिलने की बात कही। पियून ने थोड़ी देर रुकने को कहा और पूछ कर अंदर बुला लिया। राणासिंह ने अभिवादन किया और वीरविजय ने फिर पैर छूकर प्रणाम किया। नागेश ने सभी को बैठने को कहा। राणासिंह ने हार्दिक धन्यवाद दिया और उपकार की सराहना की। नागेश ने व्यवहारवश सरल शब्दों में कहा—नहीं बाबा जी, यह तो हमारा दायित्व है। आपस में बातचीत चल ही रही थी कि राणा सिंह की नजर फ्रेम लगी तस्वीर पर पड़ी। फिर गौर से देखा और उसे निहारता चला गया। अपनी आंखों पर यकीन नहीं हो रहा था। वह अपने आप को और अंधेरे में नहीं रखना चाहता था। बड़ी विनम्रता से उसने नागेश से पूछा—बीडीओ साहब यह फोटो किसकी है?

नागेश ने कहा—ये मेरे माता-पिता और उनके बगल में मेरे बड़े भाई हैं। ये दिल्ली में मंत्रालय में अधिकारी हैं।

यह सुनते ही राणा सिंह की आंखें चौंधिया गईं। जमीन फटती-सी लगी। फिर हिम्मत बटोर कर पूछा—क्या नाम है आपके माता-पिता का?

नागेश बोला—पिता मोटेलाल और मां फूलिया।

राणासिंह के हाथों से लाठी दूर छिटक गई। इजाजत लेकर वह घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में हरेक कदम जैसे कुएं में पड़ता जा रहा था। जिसे कभी अपने कदमों की धूल के बराबर नहीं समझा था आज उसके चरणों की धूल को उसका भविष्य अपने माथे पर तिलक लगाया था। जिसके पीठ पर कभी लाठी मार कर प्रमाणित किया था कि मैं

तुम्हारा मालिक हूं उसी ने आज अभिप्रमाणित कर यह साबित कर दिया कि कौन क्या है। चलते-चलते राणा सिंह अचानक रुका और आसमान की ओर ताकने लगा। दादा राणा सिंह को इस तरह आसमान की तरफ देखने का मतलब पोते वीर विजय सिंह को समझ में नहीं आया।

नोट :

¹मिट्टी का बना जिसमें आग सुलगाकर ठंडी में हाथ सेंकते हैं।

²फसल कटाई के बदले मजदूरी के रूप में काटे गए फसल का ही 16वां भाग मजदूरी के रूप में प्राप्त करना।

³फसल से अनाज निकालने से पहले साफ-सुथरी जगह बनना।

⁴व्यवस्थित करना।

⁵फसल काटने वाले मजदूर को बनिहार भी कहते हैं।

⁶लाठी से मारना-पीटना।

⁷मोटा बिछावन जिसको अन्य जगह गूदड़ भी कहते हैं।

⁸निवाला

⁹जिस जमीन का किसी के पास केबाला आदि जैसे ठोस कागजात नहीं हो परंतु उस पर अपना दावा करता हों।

○

— — — — —
संपर्क : सी/ओ श्री मेहरचंद, मकान न. - 400- ए/4, बुद्ध विहार
 (राजकीय बालिका विद्यालय के नजदीक),
 मुनिरका गांव, नई दिल्ली-110067
 ईमेल : abhay.manav@rediffmail.com
 मो. 090135 39348

ठठेरे की मशीन

“लो सुनो, आज एक नई कहानी सुनाता हूँ। कहानी है, एक मसीन की।”

“हूँ, चलो सुनाओ।”

“पुरानी बात है। एक ठठेरा था। ठठेरा क्या था, बहुधंधी था। कभी टिक के एक काम किया ही नहीं, उसने। जितनी बार उसने धंधा बदला, उतनी बार उसका नाम बदला। शुरू-शुरू में गांव-गांव घूम के हींग बेचा करता था। उधारी। ‘हींग लो उधारी, जेठ-बइसाख की करारी...।’

“ई का बात हुई भला?”

“अरे भाई पहिले हींग अइसे भी बिका करती थी। उधारी हींग बेचने वाले कुआरकालिक में कंधे पर झोला टांगे गांव में आते और उधारी हींग दे जाते। फिर जेठ-बइसाख में आके पैसा वसूल ले जाते।”

“उधारी काहें दे जाते?”

“अरे बुड़बक, ई बेचने का तरीका होता है। देखते नहीं, आजकल बजार में जाओ तो उधारी देने के लिए हर बनिया तैयार खड़ा रहता है? किस्त वाली इस्कीम जो चल गई है। वैसे ही हींग वाला भी करता था। आदमी का क्या है। उधार मिल जाए तो पूरा बजार उठा जाए। कौन-सा तुरंत पइसा देना है। तो उधारी हींग बेचने का फायदा ई होता कि वह तो थोड़ा कीमत बढ़ाके बेचता, लेकिन लोगों को उधारी मिलता तो ज्यादा मोल-भाव भी नहीं करते। जरूरत से ज्यादा खरीद लेते। पाव-पाव भर हींग। फिर जेठ-बइसाख में जब अनाज काट-मांड के घर में ले आते तो वह आ जाता पइसा वसूलने। वह भी जानता था न कि देर करेगा तो लोग सब खा-चबा जाएंगे और मांगने जाओ तो ठेंगा दिखा देंगे...।”

“हां-हां अब समझ गए। फिर आगे का हुआ?”

“तुम्हारे सब की साथे ईहे तो दिक्कत है। पहिले टोकोगे, फिर बताओ तो लगोगे आंय-बांय करने। एही लिए हमको टोकाटाकी बिलकुल पसंद नहीं है। ससुर कहानी पूरी रायता बन के रह जाती है। अब भूल गया न कि क्या कह रह था?”

“कह रहे थे कि ठठेरा पहिले हींग बेचता था।”

हां। तो जब वह हींग बेचता था तो उसका नाम था—हींग वाला। लेकिन हींग बेचने में उसको बहुत फायदा नहीं नजर आया। साल में एक-दू महीना बेचता, फिर घर बइठ जाता। फिर एकाध महीना वसूली करता, फिर खाली। अइसे साल भर की रोजी-रोटी चलनी मुश्किल थी। तो छोड़ दिया उसने ई धंधा। “फिर मवेसी बेचने का धंधा शुरू किया। गांव-गांव घूमके उधारी मवेसी खरीदता और ले जाके सोनपुर मेला में, बक्सर मेला में, ददरी मेला में, जहां भी मवेसी मेला लगता, बेच आता। लौट के सबका पइसा चुकता कर देता। इससे नगदी आ तुरंत फैंदा मिल जाता। घर का खर्चा भर की ठीक-ठाक कमाई कर लेता। दूर-दूर के गांव में उसकी जान-पहचान बढ़ी। तो इस धंधे में उसका नाम पड़ा—दलाल। मवेसी दलाल। लेकिन ई धंधा भी तो रोज का था नहीं। कभी-कभार का था। फिर दूसरी बात ई कि इसमें मुनाफा की भी कौनो गारंटी नहीं थी। लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का। तो कुछ साल बाद उसने ई धंधा भी छोड़ दिया।”

“फिर इस्टील के बरतन का धंधा शुरू किया। नया-नया इस्टील का बर्तन चला था। पता नहीं कहां से दूढ़-ढांड के ई धंधा ले आया था। घूमता तो रहता ही था, सहर-बजार। लग गया होगा कहीं से पता। तो जब वह इस्टील लेके गांव में आया और करने लगा उसका बखान, तो गांव वाले बड़े खुस। पहिले तो लोग माटी की बर्तन में खाते-बनाते थे। फिर बाद में कांसा और फूल का बर्तन शुरू हुआ। लेकिन वह एक तो भारी बहुत होता था और महंगा भी था। वजन के हिसाब से बिकता था। तो वह बर्तन तो खरीदना गरीब-गुरबा आदमी के बस के बाहर की बात थी। जिनके पास पइसा था, वही खरीद पाते थे। तो जब इस्टील का बरतन आया तो देखने में बहुत सुंदर। एकदम चमाचम। धोने-मांजने, धरने-उठाने में भी बहुत

हल्का। सालों-साल चलने की गारंटी। न टूटने का डर न पिचकने का खतरा। दाम भी ज्यादा नहीं। जितने पइसे की फूल की एक थाली आती थी उतने में इस्टील की पांच। तो भइया जो अब तक माटी और अलमुनिया में खाते-बनाते थे वह इस्टील खरीदने लगे। जिनके पास फूल के बर्तन थे वो भी उन्हें बदल के इस्टील का खरीदने लगे। जिनके पास पइसा कम था उनके लिए हींग वाली इस्कीम लगा दी। बस, बिकने लगा दबादब उसका बर्तन।

“इस तरह से इस धंधे में उसका नाम पड़ा-ठठेरा। ठठेरा पहिला आदमी था इस जवार में, इस्टील का बर्तन ले आने वाला। अब भइया ठठेरा एतना मसहूर हुआ कि लोग उससे बर्तन खरीदने के लिए भीड़ लगाए रहते। लेकिन ठठेरा एक और भीड़ जवार भर की। सबके पास तक पहुंचना मुस्किल। तो ठठेरे ने एक उपाय निकाला। पहिले तो वह बोरे में बर्तन भर के, पीठ पर लाद के गांव-गांव घूमता था, अब उसने एक घोड़ी खरीद ली। अब घोड़ी की पीठ पर ढेर सारा बर्तन लाद के घूमने लगा। उसका एक पांच-छह साल का बेटा था। उसे भी साथ ले जाने लगा, मदद के लिए। फिर जब इससे भी काम नहीं बना तो उसने अलग-अलग गांव के लिए अलग-अलग दिन धर दिया। एक दिन एक गांव में, तो दूसरे दिन दूसरे गांव में बइठने लगा। जिसको बर्तन खरीदना होता वह उसके पास जाके बर्तन खरीदता। अब घूम-घूम के बेचने से उसकी छुट्टी। दुकानदारी में तो इहे होता है, एक बार नाम चल गया तो बस मजे ही मजे। तो भइया इस तरह से ठठेरे ने खूब पइसा आ सोहरत कमाई-बरतन बेच के। उसकी कमाई देख के बहुत सारे लोग ठठेरा बन गए। लगे बरतन बेचने। तरह-तरह की इस्कीम निकालने। हमरे देस में तो इहे है न कि एक आदमी कौनो काम करके कामयाब हुआ नहीं कि मधुमक्खी की छत्ता की तरह लपट जाते हैं सारे उसी पर।”

“फिर क्या हुआ?”

“हां तो हुआ ई कि ई सब देखके ठठेरे का मन इस धंधे से भी ऊब गया। लगा सोचने दूसरे धंधे के बारे में। तो अइसे में पता नहीं कहां से ठठेरे के हाथ लग गई एक मसीन। बस उठा लाया। बइठा दिया घर में। वह मसीन भी ससुरी गजब की थी। जो काम कहो खट से कर देती। सौ आदमी का काम अकेले। अगर कुछ समझ में न आए तो बता भी देती। कुछ गलती करो तो टोक भी देती...।”

“अब कुछ ज्यादा ही हांक रहे हो। अइसी कौन सी मसीन थी ससुरी भला? मसीन थी कि उसमें आदमी का दिमाग लगा था?”

“अरे ई कौन नई बात है? रामजी के पुस्पक बिमान के

बारे में नहीं सुने हो? जहां बोलो पहुंचा देता? ई मसीन तो उसके आगे कुछो नहीं थी।”

“अरे भइया वह तो भगवान थे। जो चाहते हो जाता। ससुर घास के तिनका को भी इसारा करते तो उड़ जाता। वह तो पुस्पक बिमान था...।”

“तुम हो कुआं का मेंढक। दुनिया के बारे में कुछ पता नहीं। और गियान बघारने बइठोगे तो ब्राह्म के नाती। अब सोचो, पहिले लोग दोन-ढेंकुल से खेत सींचते थे। पूरा घर मिलके दिन भर चलाए तो ससुरा लड़ा भर खेत सिंचाता था। अब देखो सब जगह टीबुल आ गया है। घंटा भर में बिगहा का बिगहा खेत पटा देता है। महीना भर का काम एक्के दिन में खतम। सहर में जाके देखो। सुना है अब अइसी कंटूपर मसीन आ गई है, जो आदमी की दिमाग से भी तेज काम करती है। जो कहो करती है। दुनिया का कौनो अइसा काम नहीं, जो वह न करे। आदमी को समझाती-सिखाती भी है। गलती करो तो थप्पड़ भी लगाती है। कोतवाल-सिपाही की कौनो जरूरतें नहीं, बदमासन के पकड़ के खट पटक देती है। तो ठठेरे की मसीन कौनो अजूबा थोड़े न थी। वह भी अइसी ही रही होगी। लेकिन तुम्हरे जैसे बुड़बक लोगन की दुनिया में कमी थोड़े न है। उजरा गांव में ऊंट आया तो लोग बोले बलबल है। ...”

“अच्छा ठीक है, फिर क्या हुआ?”

हुआ क्या। तुम्हरे जैसे लोग लगे मसीन देखने के लिए भीड़ लगाने। लेकिन ठठेरा देखने दे तब न देखें। मसीन तो एक घर में बंद थी। किसी को देखने की इजाजत नहीं। तो इस तरह से ठठेरे की मसीन लोगों के लिए अजूबा बन गई। ठठेरा घर में चुपचाप मसीन पर काम करता रहता।

पहिले तो उसने मसीन से बरतन बनाना शुरू किया। बरतन बनाता और जवार भर के ठठेरे को बेच देता। इस तरह से कुछ दिन तक तो उसका काम खूब अच्छा चला। मगर, थोड़े दिन बाद उसने देखा कि इस धंधे में मुनाफा कम होने लगा है, तो उसने प्लास्टिक का सामान बनाना शुरू कर दिया। जूता-चप्पल से लेके बाल्टी-परात तक। तो ई धंधा भी खूब चला। और अइसा चला कि इस्टील वाला उसके सामने फेल। खूब पइसा पीटा, ठठेरे ने।

“तो कहते हैं न कि एक बार पइसे की भूख समा जाए तो आदमी का पेट भुसहुल बन जाता है। वही हाल ठठेरे का भी हो गया। मसीन पर बर्तन और प्लास्टिक का काम तो चल ही रहा था, साथ-साथ उसने दूसरे धंधे भी शुरू कर दिए। मसीन तो मसीन। जहां लगा दो, वहीं काम करना शुरू। उसने सिले-सिलाए कपड़े का धंधा शुरू कर दिया। वह ससुरी

मसीन थान का थान कपड़ा घंटा भर में काट-पीट-सी के तैयार कर देती। अब किसी को कपड़ा खरीद के सिलवाने की कोई झंझट नहीं। सस्ते में सिला-सिलाया और बढ़िया डिजाइन का कपड़ा मिलने लगा। फिर क्या, जवार भर के दर्जी बेकार। दिन भर बड़टे माछी मारने लगे और ठठेरे की मसीन का कपड़ा धड़ल्ले से बिकने लगा। जो मारकीन पहिनते थे अब वे टेरलिन पहिनने लगे। जिसे देखो, वही हीरो। इस तरह से ठठेरे ने बहुत सारे धंधे एक साथ फैला लिए।...

“फिर क्या हुआ?”

हुआ ये कि, ठठेरे ने तो इतने सारे धंधे फैला लिए, लेकिन वो अकेले तो सारे काम कर नहीं सकता था। हालांकि सारा काम मसीन करती थी, लेकिन मसीन के पास खड़ा होने वाला भी तो कोई चाहिए? क्या पता मसीन को कब किस चीज की जरूरत पड़ जाए। और फिर अकेला ठठेरा सारे काम के लिए तो खड़ा नहीं रह सकता। और वो भी कितनी देर खड़ा रहता। मसीन तो मसीन है भाई। चल पड़ी तो चल पड़ी। वो रुकेगी थोड़े नहीं। मसीन और जिन्न में कोई फरक थोड़े न होता है। उसे तो काम चाहिए। काम नहीं मिलेगा तो बवाल करेगी। और दूसरी बात ये कि ठठेरे को मसीन चलाने के अलावा भी तो बहुत सारे काम होते। हिसाब-किताब करना होता। माल कब कहां कितना गया, कितना रह गया, उसका भी तो बंदोबस्त देखना होता। और तीसरी बात ये कि भाई आदमी पइसा कमाता किसलिए है? ऐसो-आराम के लिए ही न? फिर इतना पइसा कमाने के बाद भी आराम न मिले, पहिले जैसी ही हाय-हाय पट-पट लगी रहे तो फिर क्या फायदा?

तो यही सब सोच के ठठेरे ने विचार किया कि कुछ लोगों को नौकरी पर रखना चाहिए। सो रख लिया कुछ लोगों को। लेकिन समस्या ई खड़ी हो गई कि उसके अलावा किसी और को मसीन चलाने आती नहीं। तो शुरू-शुरू में लोगों को काम पर रखने से पहिले वो खुद टरेनी देता। जिसको नट-बोल्ड ठीला करने, कसने के लिए रखता उसे उसके बारे में बताता। जिसको लट्ठा लपेटने के काम पर रखता उसे उसके बारे में बताता। कोई मसीन का तेल चेक करता, तो कोई पानी। इस तरह से हर काम के लिए अलग-अलग टरेनी और हर काम के लिए अलग-अलग आदमी। पूरी मसीन की जानकारी किसी को नहीं। हर आदमी अपने-अपने काम में मास्टर।

तो भइया, इस तरह से आदमी रखने से काम तो अच्छी तरह और ज्यादा होने ही लगा, ठठेरे को भी थोड़ी फुरसत मिली। थोड़ा आराम मिला। तो वो कहते हैं न कि आदमी को पइसा और आराम मिले तो उसका दिमाग भी तेज चलने

लगत है। तो ठठेरे का भी दिमाग फुरसत में तेज चलने लगा। उसने कारोबार और बढ़ाने की सोची। तो बस उसके सोचने भर की देर थी। बढ़ गया कारोबार। मसीन तो थी ही। जिस काम में लगाओ काम शुरू।

लेकिन समस्या ये कि कारोबार बढ़ा तो मसीन भी बढ़ी। मसीन बढ़ी तो जगह-जमीन की जरूरत भी बढ़ी। आदमी भी बढ़े। आदमी बढ़े तो उनकी टरेनी की जिम्मेवारी भी बढ़ी। तो ठठेरे के पास पइसे की कमी तो थी नहीं। गांव भर की जमीन खरीद ली। लोगों को झुआ भर पइसा मिला तो वो भी खुस। ससुरी जमीन पर तो रात दिन खटो तो भी खाने भर को अन्न नहीं उपजता। बकरी रात भर डिड़रानी, बच्चा एक्को ना बियानी वाली बात थी। इहां तो दू-दू फैदा। जमीन का पैसा जो मिला सो मिला, ठठेरे की मसीन पर काम करने की नौकरी भी पक्की। सो भइया गांव में जलसे का महौल। पइसा मिला तो गांव के सारे दुख दूर। खपरा का मकान तोड़ के पक्की बिल्डिंग पिटा गई। गांव सहर लगाने लगा।

उधर ठठेरे का कारोबार पूरे गांव की जमीन पर फैल गया। खेत-खरिहान सब खतम। चारों ओर मसीन ही मसीन, गोदाम ही गोदाम। आनंद ही आनंद। तो इतने बड़े कारोबार के लिए जो आदमी रखे जाने थे उनको टरेनी भी तो दी जानी थी। और टरेनी देने वाला एक अकेला ठठेरा। तो भाई ठठेरा लोगों को टरेनी दे कि कारोबार देखे। तो ठठेरे ने एक उपाय सोचा। उसने कुछ पुराने करमचारियों को टरेनी मास्टर की टरेनी दी और बाकी सबके लिए खोल दिया, एक ठो टरेनी इस्कूल। जो भी ठठेरे की मसीन के लिए भरती होता उसको पहिले टरेनी स्कूल में टरेनी दी जाती। हर काम के लिए अलग भरती। हर भरती की अलग टरेनी।

“तो इस तरह से कारोबार बढ़ता रहा, भरती चलती रही। स्कूल चलता रहा, टरेनी चलती रही। लोगों को काम मिलता रहा, मौज मनती रही। खुरपा-कुदार छोड़ के सब रिंच-पाना चलाने लगे। कोई मिस्त्री तो कोई हेड मिस्त्री। कोई मेठ तो कोई सुपरवैजर। कोई बाबू तो कोई बड़ा बाबू। पूरे गांव में ओहदे बंट गए। जितना बड़ा ओहदा, उतना ही बड़ा आदमी। जितना बड़ा रुतबा, उतनी ही बड़ी इज्जत।”

“फिर?”

“इस फिर में तो बहुत कुछ है...लेकिन अभी तो जो कहानी में सुना रहा हूं, वही सुनो। इस फिर के बारे में फिर कभी।”

“अच्छा चलो, आगे क्या हुआ?”

“हुआ ई कि टरेनी स्कूल तो खुल गया। तो खुल गया तो खुल गया। बंद तो होगा नहीं। लेकिन भाई टरेनी तो उसी

को देंगे न, जो भरती होगा? और फिर भरती की भी कोई हद होती है। अइसा थोड़े है कि जो मुंह उठाए चला आया उसे दे दी भरती। और जो एक बार भरती हो गया तो वो रिटायर होके ही न बाहर निकलेगा। तो नया आदमी तो तभी भरती होगा न, जब कोई जगह खाली होगी या कोई नया काम शुरू होगा, तो नई जगह रोज थोड़े न बनती है, न रोज कोई नया काम शुरू होता है। लेकिन मसीन का अइसा जादू, पइसे की अइसी चमक कि जिसको देखो वही भरती के लिए लाइन लगाए खड़ा था। दूसरे गांव, जिला, जवार के लोग भागे चले आ रहे हैं। सबको मसीन चलानी है। ठठेरे के आगे हाथ पसारे खड़े हैं, हमें रख लो, हमें रख लो। लेकिन ठठेरा सबको काम दे तो कहां से दे। तो उसने देखा कि अगर इस तरह से भरती नहीं होगी तो टरेनी स्कूल तो खाली हो जाएगा। तो उसने एक इस्कीम सोची।

“उसने लोगों से कहा कि भाई टरेनी स्कूल में पहिले एडमीसन ले लीजिए। टरेनी की डिग्री ले लीजिए। फिर जो लोग टरेनी लिए रहेंगे, जब नई भरती आएगी तो हम उन्हीं को रखेंगे। बस, हो गया काम। जो भरती के लिए लाइन लगाए खड़े थे सब घुस गए टरेनी स्कूल में। खेत-खरिहान बेच के टरेनी की फीस भरने लगे। टरेनी चलने लगी। कोई नट-बलू खोलना-कसना सीख रहा है, कोई बत्ती बनाना। कोई लट्ठा लपेटना सीख रहा है, कोई सांचा बनाना। जो काम सीखने को मिल जाए वही सीखे जा रहे हैं। लोग काम सीखते और बाहर से मसीन की खटर-पटर सुनके खुस होते रहते कि एक न एक दिन वो भी मसीन को चलाएंगे। मसीन को पास से काम करता देख पाएंगे।

“जिनको मसीन पर काम करने को मिल जाता वो बाहर आके मसीन की अइसी तारीफ करते कि पूछो नहीं। जैसे मसीन पर काम करने को नहीं मिल गया, भगवान मिल गए। तो इस तरह से बात सुन-सुन के लोग मसीन के लिए और बावले हो जाते। जैसे ही टरेनी खतम होती, लोग टरेनी स्कूल से निकल के सीधा मसीन पर चिपटने दौड़ पड़ते। लेकिन चिपटें भी तो कहां? वहां तो पहिले ही से मधुमक्खी की लेखा लोग चिपटे पड़े थे। जगह मिले तब न चिपटें। उस छते में हाथ लगाने की किसी की हिम्मत नहीं। एक को छेड़ो तो पचास काटने दौड़ पड़ते। तो अब टरेनी के बाद करें तो क्या करें। खेत-खलिहान था नहीं। और जिनके पास था भी वो टरेनी के बाद खुरपा-कुदार चलाएं तो बेइज्जती होगी। तो कुछ टरेनी वालों ने मिलके एक उपाय निकाला। ठठेरे के टरेनी स्कूल से अलग टरेनी स्कूल खोलना शुरू कर दिया। जिसे देखो वही मसीन से चिपटने को आतुर। अइसे में कमाई का

नया धंधा। तो भइया अब गली-मुहल्ला, जहां देखो टरेनी स्कूल खुल गए। जिसको ठीक से उठने-बइठने का सहूर नहीं वो भी इंचियर बना घूमने लगा।”

“हूं, फिर?”

“फिर क्या? ज्यादा स्कूल खुलने से काम थोड़े न ज्यादा हो जाएगा? स्कूल खुलते रहे। लोग इंचियर बनते रहे। उनके मां-बाप सपने देखते रहे। वो सब तो जो होता रहा, सो होता रहे। ठठेरे पर क्या असर पड़ना था? अभी तो बस तुम ठठेरे की कहानी सुनो। ज्यादा आंचा-पांचा के चक्कर में न पड़ो।”

“अच्छा, एक बात तो बताए ही नहीं। कह रहे थे कि जितनी बार काम बदला, उतनी बार उसका नाम बदला। तो जब उसने इतने सारे काम फैला लिए तब भी वो ठठेरा का ठठेरा ही क्यों कहलाता रहा?”

“अरे भाई, जब आदमी कोई एक काम करता है, तो उसकी पहचान भी एक होती है। जब वह बहुधंधी है, तो उसका नाम उसके किस धंधे से जोड़ोगे? तो ठठेरे के साथ भी यही हुआ। वो ठठेरा से बहुधंधी हो गया, मगर नाम पुराना ही चलता रहा... लेकिन तुम नाम की छोड़ो, उसके काम की सुनो। जैसे-जैसे ठठेरे का काम बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसका नाम चढ़ता गया। उसकी गांठ में दाम बढ़ता गया। तो उसने अपने बेटे को, जो पहिले उसके साथ घोड़ी की लगाम थामे गांव-गांव घूमा करता था, भेज दिया पढ़ने के लिए बिदेस। इधर ठठेरे ने खूब सोहरत कमाई। बड़े-बड़े लोगन से दोस्ती बनाई। ससुर पइसा पास में हो तो हर बड़ा आदमी दोस्त बन जाता है। इस तरह से देस का राजा भी उसका दोस्त बन गया। जब भी महल में कोई परोगराम होता, राजा ठठेरे को खास मेहमान की तरह बुलाता। ठठेरे के घर में कोई परोगराम होता तो राजा अपने सारे परोगराम छोड़ के वहां जाता। इस तरह से ठठेरा अब सिरिफ गांव, जवार, जिला में नहीं देस भर में जाना जाने लगा।”

“हूं, फिर?”

फिर क्या? ठठेरा बड़ा आदमी बन गया था। उसका कारोबार बड़ा हो गया था। उसका बेटा, जो बिदेस पढ़ने गया था, पढ़-लिखके वो भी बड़ा हो गया था। बेटा पढ़-लिख के लौटा तो ठठेरे ने उसे भी काम में लगा दिया। उसका बेटा बिदेस से पढ़ के लौटा था। बिदेस में नई-नई बातें सीख के आया था। सो उसने बाप के कारोबार को बिदेस में भी फैलाने का सोचा।

“तो भइया जब कारोबार बिदेस में फैलाना है तो काम भी तो बिदेसी ढंग से होना चाहिए। सो उसने पूरा बिदेसी स्टाइल लगा दिया। मसीन को भी बिदेसी स्टाइल में फिट

करवा दिया। काम करनेवालों को बिदेसी स्टाइल के कपड़े पहिना के पूरा हीरो बना दिया। नया महौल बना। नई स्टाइल से काम शुरू हुआ तो एक नई रौनक भी आई। एक दिन ठठेरे ने सारे करमचारियों की मीटिन बुलाई। मीटिन में बिदेस की खूब सारी बातें बताई कि वहां पर लोग कइसे मेहनत करते हैं। कइसे काम करते हैं। न खाने की चिंता न पीने की फिकिर। काम है तो बस काम करना है। न घर, न परिवार। बस काम ही काम। इसीलिए तो वो लोग इतनी तरक्की कर रहे हैं... और उसने आगे कहा कि आज से यहां पर न कोई मालिक है, न कोई नौकर। सारे एक परिवार के सदस्य हैं। सारे साथ काम करते हैं। सारे मिल के काम करेंगे। जैसे अपने घर का काम करते हैं। जैसे अपना काम करते हैं। जितनी कमाई बढ़ेगी, उसी हिसाब से आपकी तनखा भी बढ़ जाएगी। यह आमदनी पूरे परिवार की आमदनी होगी।

“अब तो भइया, एतना तामझाम और ठाट-बाट देखके ठठेरे की मसीन पर काम करने के लिए लोगों में धक्का-मुक्की और बढ़ गई। लेकिन पहिले ही से इतने लोग उसमें भरे पड़े थे कि उन्हीं के लिए काम ढूंढ के निकालना पड़ता। लेकिन उनमें से कोई भी मसीन छोड़ने को तैयार नहीं। एक बार को तो लोग अपने माई-बाप को छोड़ दें, मगर मसीन को छोड़ने के लिए कोई तैयार नहीं। अइसे में नए को कहां से रखें। लेकिन जिस तरह से नए ढंग से काम-काज शुरू हुआ और बिदेस में कारोबार शुरू होने की बातें चलने लगीं तो उससे लोगों को ये उम्मीद बनी कि नई भरती जल्दी ही शुरू हो जाएगी और जितने भी टरेनी लेके घर बइठे हैं उन्हे काम पर बुला लिया जाएगा। लेकिन कहां से वो सब होता, वो तो एक नया ही कांड शुरू हो गया।”

“क्या?”

“रोज की तरह उस दिन भी लोग मसीन से चिपके हुए थे, पूरे बिदेसी इस्टाइल के सूट-बूट में। खटर-पटर चालू थी। तभी अचानक पता नहीं क्या हुआ कि मसीन ने लोगों को उठाके फेंकना शुरू कर दिया। हजारों लोग जाके गिरे सौ-सौ गज दूर। किसी की नाक टूटी, किसी की टांग। किसी का माथा फूटा, तो किसी की कमर टूटी। सबका कोई न कोई अंग भंग जरूर हुआ।”

“फिर?”

फिर क्या, मच गया चारों ओर हाहाकार। जिसका अंग भंग हुआ वो बेकार। उसके घर में मोहरम का महौल। लेकिन जिन्हें मसीन से चिपकने का मौका नहीं मिल रहा था, जो बरसों से लाइन लगाए खड़े थे वो बड़े खुस। मौका बढ़िया था। सारे दौड़े और जाके चिपक गए मसीन से। लेकिन वो जैसे

ही चिपके, मसीन ने फिर उठाके फेंकना शुरू कर दिया। फिर हजारों अपंग। लोग गए ठठेरे के बेटे के पास।

“ठठेरे के बेटे ने लोगों को तसल्ली दी। बिदेस से इंचियर बुलाके मसीन ठीक कराने का वादा किया। सो बिदेस से एक इंचियर आया। उसने मसीन की तकलीफ जानने की कोसिस की। मसीन से पूछ-ताछ की। मसीन ने बताया कि आदमियों की भीड़-भाड़ में उसका दम घुटता है। माथा गरम हो जाता है। तो उस बिदेसी इंचियर ने ठठेरे के बेटे को सलाह दी कि मसीन के आस-पास आदमियों की भीड़ न बढ़ने दें। काम तो मसीन को करना है, इसके पास लोगों की क्या जरूरत? मसीन के पास लोग रहेंगे तो काम तो कुछ करेंगे नहीं। खाली बैठे-बैठे बीड़ी-सिगरेट पीते रहेंगे। खैनी-तमाकू खाके गंदगी फैलाएंगे। इससे मसीन को काम करने में दिक्कत तो आएगी ही। सो आदमियों को मसीन से दूर रखा जाय।”

“फिर?”

“फिर, पुराने गए सो गए, तुरंत नई भरती भी बंद। लोगों से कहा गया कि भइया, मसीन में खराबी आ गई है। ज्यादा भीड़ देख के नाराज हो जाती है। अब मसीन अकेले काम करेगी। उसके पास किसी आदमी को जाने की इजाजत नहीं है। अब तो भइया, मच गया कोहराम, चारों ओर। अखबारों में खबरें छपने लगीं। नाराज लोग सड़कों पर नारे लगाने लगे। जिनकी नौकरी गई वो भी नाराज, जिनकी मिलने की आसा गई वो भी नाराज। लगा ठठेरे के घर का घेराव होने। धरना-परदरसन होने। अनसन और भूख हड़ताल शुरू। रोज जलूस निकलते, नारे लगते। कहीं तोड़-फोड़ होता, तो कहीं फूंक-ताप। पूरे देस में आंदोलन शुरू। उधर मसीन चलती रही। खटर-पटर होती रही। इधर जनता सड़क पर। ठठेरे के बेटे को जान का खतरा। ठठेरे के बेटे ने राजा से मदद मांगी। तो भइया, राजा तो उसके बाप का दोस्त। उसने भेज दिए सिपाही। और कहा, मारो ससुरों को। देस की तरक्की में बाधा डाल रहे हैं। बस, शुरू कर दिया सिपाहियों ने तांडव। जो धरना-परदरसन करता दिख जाता उसे मार-मार के लंबा कर देते। तो भइया, जो मसीन से बच गए थे वो राजा के सिपहियों से परसाद पाने लगे। डंडे और लात-जूतों खाने लगे।”

“फिर?”

“तो फिर क्या? कितने दिन चलता धरना-परदरसन? कुछ दिन बाद अपने-आप ठंडा पड़ गया।”

“तो इसका मतलब तो ई हुआ कि अगर अइसी ही मसीन बन जाय, जो सारा काम कर दे, तो फिर तो आदमी को तो कोई काम करना ही नहीं पड़ेगा?”

“बन क्या जाय, बनिए गई है। लूटो मौज। लाओ, लगाओ, मस्त हो जाओ।”

“तो फिर आदमी का क्या होगा?”

“यही तो सवाल गड़बड़ है। ई बतावे लायक होते तो हम ईहां बइठे रहते? इस पर तो कौनो इंचियरे विचार कर सकता है। लेकिन अभी तो सुना है, सारे इंचियर ठठेरे की मसीन को और तेज बनाने में जुटे हुए हैं। जब उहां से फुरसत पाएंगे, कभी अकेले में बइठेंगे, विचार करेंगे, तो तुम्हें भी पता चल जाएगा। अभी तो जाओ और चुप मारके सो जाओ।”

“तो क्या कहानी खतम?”

“मानो तो खतम, नहीं जारी है।”

“लेकिन वह मसीन की आदमी सब को पटकनेवाली बात हमरे सब की समझ में नहीं आई।”

“अरे भइया, इसमें ना समझेवाली बात कौन सी है? ठठेरे के बेटे ने खुद काराई होगी मसीन में गड़बड़ी?”

“काहें?”

“अब काहें, ई तो तुम खुद सोचो। अभी चुपचाप जाके सो जाओ। सोच लेना तो हमको भी बताना।”

संपर्क : 181, नेवल
सोसायटी, प्लॉट नं.-3ए,
सेक्टर-22, द्वारका, नई
दिल्ली-110075

स्त्री कहानी

सुशील 'मानव'

अब और नहीं

“अरे! ये तो पाखी है!”

“हां, पाखी ही तो है!—मिसेज कपूर की दुविधा को बल देते हुए मिसेज खुराना ने कहा। है तो, पर है बड़ी निर्लज्ज...। अभी दिन ही कितने हुए? मैडम तो बन-ठन के फिर चल दीं। कोई और लड़की होती तो...।”

“कोई और लड़की होती तो इस जिंदगी और जहां को अलविदा कह चुकी होती। इज्जत लुटने की पीड़ा और बदनामी का बोझ लिए कोई लड़की जी भी कैसे सकती है?”

“कोई लड़की नहीं मिसेज खुराना, शर्म और इज्जतवाली लड़की।”

“हां मिसेज कपूर, इस बेशर्मा पाखी को देखकर तो अब यही कहना पड़ेगा”—मिसेज खुराना ने ठंडी सांस लेते हुए कहा।

जैसे ही पाखी करीब पहुंची, मिसेज कपूर ने बातों का मजमून बदलते हुए कहा,—“अरे, पाखी, कैसी हो? मुझे तुमसे कुछ बात करनी थी।”

“आंटी मैं ऑफिस के लिए पहले ही लौट हो चुकी हूं, सो लौट के बात करती हूं—कहते हुए पाखी ने कदम आगे बढ़ा दिए। मिसेज खुराना और मिसेज कपूर की निंदावलियां उसके कर्णपटल से टकराकर वापिस लौट चुकी थीं। पाखी ने मन के धावों को खुला नहीं छोड़ा था कि कोई उन पर सहानुभूति के दो फाहे रख सके। न ही आंसुओं से सींचकर जख्मों को हरियर कि किसी की भी निंदावलियों, आक्षेपों की नमकीनियत से वो छरछरा उठे।

जिस राह ऑफिस से लौटते तीन रोज पहले तीन नर-पिशाचों ने उसके साथ सामूहिक दुष्कर्म कर छोड़ दिया था आहत, अनावृत्त, क्षत-विक्षत। वो उसी राह चलकर ऑफिस जा रही थी-बेफिक्र! बेपरवाह! बेलगाम!

शिकारी कुत्तों की शिकार बनी पंछी ने उन्मुक्त उड़ान हेतु पंख पसार दिए। हौसलों ने हुंकार भरे, उसे उसके हिस्से का आसमान चाहिए। और शिकारी कुत्ते? वे राहों में भौंक सकते हैं, पर राहें खत्म नहीं कर सकते। ख्वाबों के पांवों में दांत गड़ा सकते हैं पर मंजिल तक पहुंचने से उन्हें रोक नहीं सकते। कोशिशों के पंख नोच सकते हैं पर उम्मीदों की उड़ान को चबा नहीं सकते।

पकड़े गए पिशाचत्रय की मनोवृत्तियों को जब डिकोड किया गया तो वहां मिली सोच बेहद सड़ी हुई और संकीर्ण, संक्रमित पौरुषदंभ के खड्डे में गिरा निरुपाय, निस्सहाय, निरुत्साह अहम्। शिक्षा की उच्च सीढ़ियां चढ़ने की नाकाम, नशे और जुए की आदतों से अभिशप्त शोषित आय व पेशे से संबंधित जुड़े होने का हेयबोध, बनिस्वत इन सबके स्वयं को लैंगिक आधार पर स्त्रियों से श्रेष्ठ समझते।

पाखी के खुले-कटे बाल उन्हें पौरुष का उपहास लगता। आजाद-खयाली

अपमानसूचक प्रतिकों को तजकर सम्मानसूचक पुरुषवादी प्रतीकों को ग्रहण कर लेना सत्ता को चुनौती देने जैसा ही था। कलाइयों पर चूड़ियों की जगह घड़ी का काबिज हो जाना इस बात का पर्याय था कि स्त्री ने पुरुषवादी परंपरा को त्यागकर समय की संगत कर ली

है। आधुनिकता से प्यार, स्वच्छन्द व्यवहार, अस्तित्व का ज्ञान, स्त्रीत्व पे अभिमान, अनुभूतियों की अभिव्यक्तता, सक्षमता, स्वाबलंबिता जैसे परंपरागत स्त्री विरोधी गुणों से युक्त, बंधन-मुक्त पाखी कांटों सी चुभती। स्त्री की स्वच्छंदता पुरुषत्व का अपमान लगता। उसका यूं बात-बेबात खिलखिलाना, हंसना-बोलना पौरुष का उपहास। पाखी के देर-रात सड़कों पर अकेली घूमने-फिरने से पुरुषत्व लहलुहान हो रहा था, सो घायल अहं चीत्कार उठा, जानवर जागा तो उसकी आंखों में उन्माद था, हिंसा थी और थी... हवस। पुरुष से ऊपर स्त्री का अस्तित्व, किसे स्वीकार्य है? मिटकर मरना या मरकर मिटना, पाखी के अस्तित्व की अब यही नियति थी।

पाखी के लिए सब कुछ सामान्य हो चुका था। तभी तो ऑफिस पहुंचते ही जैसे ही बॉस ने कहा,—‘पाखी कुछ दिन और आराम कर ली होती!’ जवाब में पाखी ने पूरे स्टाफ से सीधे-साधे दो टूक कह दिया—‘मैं ऑफिस काम करने आई हूं, सहानुभूति बटोरने नहीं, सो प्लीज नो सिम्पैथी’—और सीधे अपनी केबिन में चली गई।

जो लोग असमंजस के चौराहे पर अटके थे कि वो कैसे, किस तरह, किन शब्दों में पाखी से सहानुभूति व्यक्त करें, वो पाखी की बातों से संतुष्ट हो लिए, पर जो पाखी को मान-मर्दित मानकर उसके लिए सहानुभूति की खिचड़ी पका चुके थे, वो पाखी द्वारा ऐन मौके पर नकार दिए जाने से ठगे हुए, अपमानित-सा महसूस कर रहे थे। किसी को चापलूसी की एसीडिटी थी तो कोई नीचा दिखाने के लूजमोशन से त्रस्त। हमदर्दी का हाजमोला लिए कोई कच्ची डकारें ले रहा था तो कोई दिखावे की हैवी डोज की वजह से वोमिटिंग। कोई कहता रस्सी जल गई पर ऐंठन नहीं गई तो कोई कहता—सुना है मैडम घंटों सड़क पर पड़ी रहीं... नंगी! तिस पर तेवर तो देखो कि जैसे बहुत इज्जतदार हों।

एक कहता,—हाय जल गए जलने वाले अब राख में क्या रखा है। तो तीसरे के जज्बात यूं बयां होते,—मुकद्दर की बात है। बलात्कारियों का नाम बदनाम है वर्ना जिंदगी का असली मजा तो वही लूटते हैं।

दिन थका चुका था, सो सुस्त कदमों से अपने बसेरे को चल दिया। पाखी अब भी ऊर्जा से भरी थी, ऑफिस से निकलकर सीधे सड़क पर आ गई। कुछ कदम पैदल चलने के उपरान्त फुटपाथ के किनारे खड़े बूढ़े दुकानदार से रोजाना की तरह आइसक्रीम का कोन लिया, खाया और मम्मी-पापा का फेवरेट बटर स्कॉच का छोटा पैकेट लिया और गाते-गुनगुनाते घर को चल दी।

पाखी के आत्महत्या करने या सपरिवार गली-मुहल्ला छोड़कर चले जाने जैसी खबरों का इंतजार कर रहे पूर्वाग्रहियों के कलेजे पारदर्शी पॉली बैग से झलकते आइसक्रीम की पैकेट से जल उठे। मां-बाप हताशा की कुर्सियों पे उदासी बिछाए बैठे थे। पाखी ने घर आते ही उदासियां उदासी और हताशा को घर के बाहर का रास्ता दिखा, दो कटोरियों में तीन स्कूप आइसक्रीम निकाल एक कटोरी मां के हाथ में पकड़ा दिया, दूसरी पिता को देने लगी तो वो हाथ, सिर एकसाथ हिलाते हुए बोले,—न, मुझसे ना खाया जाएगा। गला रुंध गया, आंखें डबड़बाईं, हृदय अव्यक्ता की पीड़ा से पीड़ा-पीड़ा हो गया।

‘मेरे मर जाने से गर आपकी पीड़ा कम हो सके तो मैं सुसाइड कर लूं’—पाखी के प्रश्नई निश्चय से मां-बाप तन-मन से कंपकंपा उठे। पिता की दुर्बलता बेटी को प्राणाहुति के लिए बाह्य कर रही। भासित होते ही असहाय स्वर में बोले,—‘तुझ विन मैं ही जीकर क्या करूंगा?’ मैं भी मर ही जाऊंगा।

पाखी ने बिलखते पिता को सीने से लगा लिया। दो दर्द एक हो गए। पिता के आंसू पोंछते हुए वो बोली—‘दर्द भीतर रहा तो जमा ही रहेगा बर्फ की मानिंद, बाहर निकालिए तो पिघले और बह जाए।’

आइसक्रीम पिघल रहा था। पत्नी ने आइसक्रीम की कटोरियां पति और बेटी के हाथों में रख दिया।

अधखुली खिड़की से ग्यारह वर्षीया पड़ोसी नीलू सहमी-सहमी आंखों से पाखी को एकटक देखे जा रही। चार दिन पहले तक वो पाखी की बेस्ट-फ्रेंड थी, पर इन चार दिनों में वो पाखी से एक बार भी न मिली या यूं कि उसे मिलने ही न दिया गया।

नजर पड़ते ही पाखी ने इशारे से बुलाया तो वो आंखों में पाबंदी लिए पास चली आई।

“कैसी हो?”—पाखी ने पूछा।

“अच्छी हूं”

“आई क्यों ना इतने दिन?”

“मम्मी ने आने न दिया”—और कहते ही जैसे अपराधबोध से घिर गई वह।

“आइसक्रीम खाओगी”—पाखी ने जैसे उसके अपराधबोध का घेरा तोड़ते हुए पूछा।

“हां”

पाखी ने अपनी कटोरी उसके हाथ में थमा दी। दोनों के होठों पे एक खामोशी ठहर गई। पाखी ने बिना होंठ हिलाए आंखों के इशारे से पूछा—“क्या हुआ?”

“एक बात पूछूं पाखी दी?”

“हां, पूछ।”

“तुम्हारा रेप हुआ है?”

“हां... हुआ है।”

“क्या होता है रेप?”

असहजता के बादल उनके दरम्यां नहीं मंडराए। बातों को गोल-गोल वहां घुमाना पड़ता है, जहां कुछ तोपना-ढांकना हो। पाखी एक खुले समाज के निर्माण में अपनी भागीदारी चाहती थी, जहां कुछ भी वर्जित और लुकाव-छुपाव न हो। सो पहलकदमी करते हुए उसने नीलू के प्रत्युत्तर में कहा—“जब कोई पुरुष किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध बलात् उसके मनोभावों पर चोट करता है, उसके शरीर को जख्म देता है, उसके यौनांगों पर हिंसा करता है, उसे रेप कहते हैं।”

“तुम्हारा जख्म कहां है?”

“मैंने उसे फेंक दिया।”

“कहां?”

“वहीं, जहां संवेदना नहीं होती।”

“तो क्या मेरा भी रेप होगा?”—नीलू ने पूछा।

पाखी ने शीघ्रता से अपनी अंगुलियां नीलू के होठों पे रख दी। जिन सवालकों के जवाब नहीं होते उन्हें यूं ही लबों पे दफन कर दिया जाता है।

आज पूरे चार दिनों के बाद बुद्धू बक्से ने भी अपनी खामोशी तोड़ी। समाचार चैनलों पर आजकल ढंग का कुछ भी आता कहां है। पर मन भी तो नहीं मानता। सोलह दिसम्बर 2012 की घटना के प्रतिवाद में पाखी ने भी कैंडिल मार्च में शामिल होकर अपना प्रतिरोध दर्ज करवाया था। राष्ट्रपति भवन के सामने लाठियां, रबर बुलेट व वाटर कैनन झेलकर हजारों लड़कियों, स्त्रियों की तरह पाखी भी वापस लौट आई थी स्त्री सुरक्षा और अपराधियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई का आश्वासन लिए। पर सिर्फ आश्वासनों की चुनरी ओढ़ लेने से कोई स्त्री सुरक्षित नहीं हो जाती, ये बात इस वक्त पाखी से बेहतर और कौन जान सकता था। निर्भया को माटी हुए महीने बीत चुके थे पर बोली अब भी टीवी चैनलों पर बोले जा रहे थे। संवेदना के मर जाने के पश्चात् जो बचता है वो पशुता है। दैहिक, यौनिक पाशिवकता के पश्चात् बौद्धिक पाशिवकता का प्रदर्शन शेष बचता था। बलात्कार जैसे अमानवीय यौन-दुर्व्यवहार को संवेदना-विहीन कर देने वाले टीवी चैनलों पर बैठकर अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ विवेचना कर रहे समाज में बढ़ते यौन-अपराधों का। एक धर्मशास्त्री जिन पर कालान्तर में बलात्कार का केस चला टीवी पर कह रहे—महिलाएं लक्ष्मण रेखा लाधेंगी तो अपहरण, दुराचार, बलात्कार तो होगा ही। पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण ही अधम का मूल है। भगवान चीरहरण रोकने आते हैं, जींसहरण नहीं। यदि बलत्कृता

ने बलात्कारियों को भाई के संबोधन से पुकारकर ‘त्राहिमाम्’ कहा होता तो वे बलात्कार नहीं करते। जबकि एक राजनीतिक मनोरोगी बके जा रहे थे,—“घर की इज्जत दिन ढले सड़कों पर घूमेगी तो लुटने का भय तो रहेगा।” और फिर “भले घर की लड़कियां किसी दूसरे घर के पुरुष के साथ लेट नाइट शो देखने जाती हैं क्या”—कहकर उन्होंने भुक्तभोगी लड़की के चरित्र पर ही कीचड़ उछाल दिया। तबेले से सीधा सियासत में आए एक राजनेता कह रहे थे,—“जवानी की आग जलेगी तो लड़के तो हाथ सेंकेंगे ही। लड़के हैं लड़कों से गलती हो जाती है, इसमें इतना शोर मचाने की जरूरत नहीं। टीवी मीडिया ने तो इसे बेवजह ही इतना तूल दे रखा है।” जबकि अपनी पारी में एक समाजशास्त्री कहने लगे—“फैशन के मद में लड़कियां आजकल इतने छोटे, उत्तेजक व कामोद्दीपक कपड़े पहनती हैं कि लड़कों के मन में विकार पैदा हो जाता है, और वे अपने-आप से नियंत्रण खो बैठते हैं।”

इसी तरह कोई मोबाइल को, कोई नूडल्स को, कोई आइटम सांग को कसूरवार ठहराकर अपनी असंवेदनशीलता का भोंड़ा प्रदर्शन कर रहा था। पूरी तरह से पक चुकने के बाद पाखी के पिता ने टीवी बंद कर दी।

रविवार दिन ही होता है औपचारिकताएं निभाने का। सुबह से ही आने-जाने वालों का तांता लगा है। जो फलों की डालियां और फूलों के गुलदस्ते लेकर अस्पताल न जा सके वो मुफ्त के मशविरे व छद्म सहानुभूतियां लिए घर चले आ रहे थे।

उसी क्रम में महिलाओं के एक समूह ने पाखी के दर पे दस्तक दिया। पम्मी खुराना, पिंगी कपूर, मिसेज खत्री, मिसेज सिंह और मिस चन्द्रा स्त्रियों की शक्ति में पुरुष सत्ता का उपनिवेश थी। यहां परंपरा भी थी और उत्तर-आधुनिकता भी।

साफ-सफाई के साप्ताहिक कामकाज से क्लान्त पाखी को देख सोफे पर धंसते हुए मिसेज सिंह ने कहा,—“अरे हाय, हाय! क्या हाल कर डाला है दरिन्दों ने। फूल-सी बच्ची को जिंदा लाश बना दिया है।”

तिस पर मिस चन्द्रा ने अपने शब्दों से स्थिति-परिस्थिति को और भी दयनीय बनाते हुए मिसेज सिंह की बातों को आगे बढ़ाया—“मान-मर्यादा, इज्जत, ख्वाब, खुशियां सब कुछ तो लूट लिया वहशियों ने, फिर बचा ही क्या, जान भी ले जाते कमीने तो लड़की यूं कलपती, तड़पती तो ना।”

ऐसे हादसों के पश्चात् मौत ही सुकून देती है, जिंदगी तो पल-प्रतिपल और भयावह होती जाती है। मिसेज खत्री फुसफुसाई।

पाखी के मम्मी-पापा सुनते जा रहे, सिर झुकाए, सब

कुछ। ओह! कितनी निर्मम होती है—विवशता! ऐसे हादसों के बाद इसी तरह की बातें होती आई हैं, हमेशा से। ड्राइंग रूम की बातें पाखी तक नहीं पहुंच रही शायद ऐसा ही सबका मत था, पर वास्तव में ऐसा था नहीं। सहनशीलता की नदी में अकाल पड़ा होता तो अब तक एक जिंदगी सूख गई होती। महिला मंडली की सहानुभूति के शब्दों में जहर था या औषधि। सबके पास इसके अपने-अपने मायने थे। पर पाखी इत्तेफाक न रखती थी, ना महिला मंडली के जहर बुझे विचारों से ना पिता की विवशता से। जीवनधारा पर बंदिशों के बांध बनने लगे तो वेदना के मेघ फट पड़े, सहनशीलता की नदी में बाढ़ की नौबत बन आई।

दर्द अथाह प्रवाह से बह चला। पाखी अपने कमरे से उठकर दनदनाती हुई ड्राइंग रूम में दाखिल हुई और पूरे आवेग में बोल पड़ी,—“नहीं हूं मैं जिंदा लाश। लाश और जिंदगी एक साथ कैसे हो सकती है? मुझे तो सड़न की बू आप लोगों के दिमागों से आ रही है।”

“पर बलकृता का यूँ ऑफिस जाना, हंसना-मुस्कुराना, पुरुषों के साथ फिर से घुलना-मिलना, घूमना, आइसक्रीम खाना, गाना-गुनगुनाना तुम्हारे चाल-चलन की तस्दीक करते हैं पाखी। ये सब करके तुम बलात्कार को ग्लोरीफाई कर रही हो,—पिंकी कपूर ने पूरे ढीठपने से कहा।

“मेरा बलात्कार हुआ है, इसका अर्थ ये नहीं कि अपराधी मैं हूँ। अरे, अपराधी तो वे लोग हैं जिन्होंने मेरे साथ ये किया। फिर मैं सजा खुद को क्यों दूँ? क्यों ना हंसू? क्यों ना बोलूँ? क्यों ना घूमूँ? क्यों ना बोलूँ और क्यों ना जियूँ?”

ड्राइंग रूम में सन्नाटा छा गया हर ओर। किसी के पास कोई जवाब नहीं। मां ने पाखी के कंधों पर अपना हाथ रख दिया। ये रुकने का नहीं हैसला बढ़ाने का संबल था। कीप इट अप का सिग्नल था। उनका ड्राइंगरूम समाचार चैनलों के प्राइमटाइम शो की तरह बेशर्म बहसबाजियों, आरोपों-प्रत्यारोपों के अड्डे में तब्दील हो चुका था। जहां से उठकर न जाने या अपने घर से न भगाने की नैतिकता के बीच ही सब अनैतिक घट रहा था। सन्नाटे को तोड़ पाखी फिर बोल उठी,—“कोई हादसा मुझसे मेरी खुशियां नहीं छीन सकता। मेरी जिंदगी मेरे सपने नहीं छीन सकता। मुझसे मेरी उमंगें नहीं छीन सकता।”

..

“कोई गलती, कोई गुनाह मैंने तो नहीं किया। बल्कि, गलत तो मेरे साथ हुआ। सजा अपराधी के बदले मैं स्वयं को दूँ ऐसी अपेक्षा आप लोग मुझसे करते हैं। वास्तव में कितनी मूर्ख हैं आप सब।”

पाखी ने बलकृता की वो इमेज तोड़ दी जो पुरुषवादी

समाज ने बनाई थी जिसे बार-बार परोसकर समाचार मीडिया लोगों के मन की भित्तियों पर स्थापित-आरोपित करता रहा है। स्याह रंगों से सराबोर एक इमेज जिसमें एक लड़की अपने हाथों अपना मुंह छुपाए स्वयं को घुटनों, कूल्हे, कोहनियों में समेटती, सिसकती दिखती है। उजालों को उससे कोसों दूर रखा जाता है। पाखी अपवाद बन गई। रंज-ओ-गुबार ने हृदय के आसमां को ढंक लिया, एक कसक कई दिलों से एक साथ उठी—“एक अस्मत् लुटी लड़की का इतना दुस्साहस! असहनीय।” पाखी का आत्मसम्मान रक्तरंजित करने के तर्क तिलमिलाई महिला मंडली ने हैवानियत के पत्थर पर रगड़-रगड़कर शब्दों को खंजर बना लिया।

मिस चंद्रा अपने उपदेशों में हिंसक हो उठी,—“जब इज्जत निर्वस्त्र होती है तो दुनिया का महंगा से महंगा कपड़ा भी उसे ढंकने में असमर्थ हो जाता है।”

“आपकी बात सही है पर अवसर गलत है, परिभाषा गलत है। इज्जत कोई गुप्त वस्तु नहीं जिसे छुपाकर रखना आवश्यक हो। असल में इज्जत वो उपहार है जो प्रतिक्रिया स्वरूप मिलती है किसी की नैतिकता, मानवीयता, आचरण को पाक रखकर किए गए बात-बर्ताव-व्यवहार के प्रति। ना तो कोई इसे खरीद सकता है, ना ही बेच।

“और बलात्कार क्या होता है मिस पाखी जो किसी स्त्री का अस्तित्व ही कुचल कर रख देता है”—मिस चन्द्रा के कटु प्रश्नों ने आहत कर दिया। ये तो पाखी की मां थी। जिन्होंने पति को बहाने से बाजार भेज दिया था। और स्वयं भी कुछ नहीं कह रही थी। दरअसल वो चाहती थी कि पाखी अपनी सबलता, सक्षमता स्वयं साबित करे और स्वयं ही हर स्थिति-परिस्थिति का निबटारा भी। पाखी ने मां के विश्वास को पुरजोर कायम रखते हुए जवाब दिया—“बलात्कार स्त्री के आत्मसम्मान पर की गई हिंसा है, और कुछ नहीं...। रही बात अस्तित्व की तो मेरा अस्तित्व कोई बलात्कारी नहीं कुचल सकता। वो स्वयं हाशिए पर खड़ा ऐसा शख्स है जो स्वयं अपने वजूद की लड़ाई हार चुका है, जिसकी मनोवृत्तियां विकृत एवं वीभत्स हो चुकी हैं। निर्ममता, वीभत्सता, हिंसा जिसकी संतुष्टि का स्रोत है, वो भला क्या रौंदेगा किसी का अस्तित्व?”

जब कोई किसी को नीचा दिखाने की ठानता है, तो सर्वप्रथम उसकी अपनी सोच नीचे गिर जाती है। पिंकी कपूर की मनोदशा कुछ ऐसी ही हो चुकी थी। वो और अधिक निर्दयी होते हुए बोलीं—“इज्जत का खजाना लुटा चुकी लड़की उस दिवालिया हो चुके बैंक की मानिंद है, जिसमें अपनी कुल की जमा पूंजी, मान-मर्यादा, इज्जत कोई भी खानदानी परिवार

नहीं रखना चाहता। ये बात आज नहीं तो कल तुम समझोगी भी और स्वीकारोगी भी, पाखी।”

“न तो यौनांग कोई खजाना है, और ना ही बलात्कारी कोई डकैत। फिर लुटने-लुटाने की बात का क्या औचित्य? इज्जत गर स्त्री के यौनांग होते तो आप सबकी भी रोज लुटती है, अपने ही पतियों द्वारा। यदि स्त्री यौनांगों पर हिंसा से इज्जत लुटती है, तो हर पुरुष बलात्कारी है, हर पुरुष लुटेरा है।”

इंसान दूसरे को तभी तक नंगा करता है जब तक उसे स्वयं के नंगे न होने का भरोसा हो। महिलाओं के मोर्चे से आक्रमण हो चुकने के बाद पाखी ने भी मोर्चेबंदी शुरू कर दी,—“बात-बात पर मुझे इज्जत की दुहाई दे रही हो मिस पिंकी, भूल गई जब घूस लेते रंगे हाथ पकड़ी गई थीं आप। सचित्र चर्चाएं होती थीं अखबारों में आपकी। जब महीनों जमानत नहीं हुई थी तब कहां थी आपकी इज्जत? मिस पम्मी खुराना जब आपका बेटा चैन स्नेचिंग और बाइक चोरी के आरोप में धराया था और दर्जनों चैन आपके घर से बरामद हुए थे और मिसेज सिंह जब आप कोख में कन्या-भ्रूण की हत्या करवाने के आरोप में जेल गई थी। अकेली मिस चन्द्रा के अपार्टमेंट में पुलिस ने वेश्यावृत्ति के आरोप में छापा मारा था। और मिसेज खत्री आप भी बहू को दहेज उत्पीड़ित करने में कम बदनाम नहीं हैं। बावजूद इन सब कुकर्मों को करके भी आप सब तो बेशर्मी से जिए जा रही हैं! ये सब करके भी आप लोग इज्जतदार बनते फिरते हो?” हद है बेशर्मी की!

महिला मंडली कलप उठी। पाखी के शब्द हृदय के आर-पार हो गए। पूर्व के बाकी सारे शब्द सन्नाटे में डूब गए। पाखी ने सबकी ही इज्जत पर तेजाब उड़ेल दिया हो मानो। तनिक देर के ठहराव के अनन्तर पाखी के मन के आवेग फिर प्रवाहित हो उठे—“समझौता करके ठहर जाना मेरी प्रकृति नहीं। मैं उन्नीसवीं सदी की अबला नारी नहीं जो झूठ-मूठ की इज्जत के नाम पर निरपराध ही मर जाया करती थी। मैं इक्कीसवीं सदी की सशक्त महिला हूं, मैं लड़ूंगी और आगे बढ़ूंगी। कोई बंदिश मेरी बेड़ी नहीं बन सकती और ना ही कोई हादसा मेरी नियति।”

वक्त के साथ आचरण की स्तरहीनता बातों में उतर आई है। स्तर भी लोग अब अवसर देखकर उठाने-गिराने लगे हैं। जहां घटिया स्तर की बातें मनोरंजन करने के निमित्त उपयोग की जाने लगी हैं वहीं ऊंची बातें तंज की मानिंद।

चला-चली की बेला में पम्मी खुराना ने सोफे से उठते हुए कहा,—“जब तक इज्जत बेदाग रहता है तभी तक उसकी फिक्र की जाती है। एक बार दाग लग जाए तो फिर कितने भी दाग लगे न व्यक्ति को चरित्र की फिक्र रहती है ना बंदिशों की परवाह।”

“एक मशविरा देती हूं मिस खुराना, वो भी मुफ्त। आप लोग भी रेप करवा लीजिए। कम से कम इन बेकार की मर्दाना बंदिशों से आजाद तो हो जाएंगी। फिर आप भी स्वच्छंद होकर उन्मुक्त जीवन तो जी सकोगी, बिना चिंता, बिना संकोच, बिना भय के”—दहलीज तक छोड़ने आई पाखी ने मुस्कराते हुए कहा। जो महिला समूह आते समय नाक ऊंची करके आया था, जाते समय उनके दिलों की टीस थी—“बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।”

उसी रात डिनर टेबल पर बैठे पिता का मन अभी भी गीला था। प्लेट लेते हुए अपने मन की बोले,—“वो रिश्तेदार ठीक ही कह रहे थे दुश्मन किसके नहीं होते। हम ये घर बेचकर कहीं और शिफ्ट कर लेंगे।”

“कितने घर बेचेंगे पापा?”

“क्या मतलब है तुम्हारा?”

“मेरा मतलब साफ है पापा। जहां भी घर लेंगे वहां वहशी नहीं होंगे क्या इसकी कोई गारन्टी है? क्या देश में ऐसा कोई शहर, कोई गांव, कोई स्थान है जहां बलात्कार नहीं होते? फिर क्या करेंगे आप? हर बार घर बेचेंगे? हर बार सपने तोड़ेंगे?”

“पर यहां रहते तुझे कौन ब्याहेगा बेटी?”

हर लड़की के जीवन का अंतिम ध्येय ब्याह तो नहीं होना चाहिए ना पापा। वैसे भी घर बदल लेने से दोस्त, परिवार, रिश्तेदार तो नहीं बदल जाएंगे ना। फिर घर छोड़कर कहीं और जा बसने का क्या औचित्य? ये घर मां का सपना है। इसकी नींव में कितने अरमान दफन हैं। इसकी दीवारों में मां के गहने और आपकी भविष्यनिधि भर नहीं लगी है पापा, कई ख्वाबों का रूपाकार है ये घर। जिसकी छत पुरखों की अमानत पर टिकी है। हमारे सपने, हमारी स्मृतियां, हमारे नाभिनाल सब यहीं दफन हैं। इस घर के साथ मेरी बचपन की किलकारियां, अपनी जवानी की यादें, मां के अरमान, मुहल्ले के लोगों का साथ-सौहार्द क्या-क्या छोड़कर जाएंगे आप?” पिता इसका उत्तर नहीं ढूंढ पाए। उलझनें सुलझ चुकी थीं। भला अब घुटन का क्या काम? उन्होंने उठकर सारी खिड़कियां खोल दीं। धुआं उठने लगा... उसे रास्ता जो मिल चुका था। पिता के दिल को पुरसुकून दे गई एक बात। पत्नी की सोच को बेटी ने आचरण में उतार लिया था।

○

संपर्क : द्वारा-डीएन पांडेय, ग्राम-पाली, पोस्ट-बाबूगंज, फुलपुर
धियानाघर, जिला-इलाहाबाद-212404
मोबाइल-709839943050, 08750090497

रधिया

चट्टाक—SSS' मायगे—SS मायगे... येँSS येँ

लगभग 4 साल का बच्चा रोते-रोते मां से दूर भागा, दूर बैठकर रोने लगा। नंगा बदन पीठ पर मां की चारों अंगुलियों के निशान उभर आए। बच्चा रोता-रोता थक गया, या भूल गया दर्द। तब फिर मां के पास आया। मां कुछ नहीं बोली। बच्चा फिर मां से खाना मांगने लगा।

मां ने मना किया—अभी कुछ नहीं है बेटा, एक घंटा रुको पापा को आने दो।

लेकिन बच्चा मानने वाला कहां था। दूध पीने की जिद्द करने लगा। मां की छाती से चिपक कर फटी साड़ी हटाने लगा। मां बच्चे को मना करती लेकिन बच्चा उतनी ही जिद्द कर रहा था। बच्चा जब ज्यादा तंग करने लगा तब अपनी छाती से उसे दूर करने में फटी साड़ी और फट गई।

मां ने बच्चे को फिर एक चांटा दे मारा, बच्चा जोर-जोर से रोता हुआ फिर दूर भागा। इस बार जोर से मार पड़ी थी इसलिए चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

सिंगरौली प्लेटफॉर्म पर बनारस इण्टरसिटी ट्रेन पकड़ने के लिए खड़े कुछ लोग यह तमाशा देख रहे थे। कुछ लोग उसे घूर रहे थे। फटे साड़ी-ब्लाउज रहित बदन को पूरी तरह ढंक नहीं पा रही थी। फिर भी घूरने वालों की नजरों से बदन को ढंकने का असफल प्रयास कर रही थी। फटी साड़ी से जहां-तहां से बदन दिख रहा था।

प्लेटफॉर्म पर यात्रियों की संख्या बढ़ रही थी। सुबह-सुबह का समय था, ट्रेन वाशिंगपीट से एक न. प्लेटफॉर्म में प्लेस होने में एक घण्टे की देरी थी। सिंगरौली में बनारस इण्टरसिटी एक घण्टे देरी से एक न. प्लेटफॉर्म से रवाना होगी। बार-बार बड़े ही कर्णप्रिय आवाज़ में विस्तारक यंत्र से प्रसारण किया जा रहा था। सामने ही सी.डी.पाण्डे और बबलू मिश्रा के साथ प्रोफेसर मोहम्मद सिद्दकी भी बैठे-बैठे यह तमाशा देख रहे थे। सी.डी.पाण्डे से औरत की हरकत असहनीय लगी और डांटने के अंदाज में बोले—

“येँ! बच्चे को क्यों मार रही हो।”

औरत ने कुछ जवाब नहीं दिया।

फिर पाण्डे ने धमकाते हुए पूछा

“बहरी हो क्या”

“पूछ रहे हैं न!”

औरत बोली—“जान के क्या करोगे बाबूजी।”

रुक कर फिर बोली—“भूखा है, कुछ देर रोएगा फिर चुप हो जाएगा।”

“कहां जाना है?” मिश्रा जी ने पूछा।

“कहीं नहीं”— धीरे से बोली।

“इतना सबेरे स्टेशन आ गई—क्यों?”

“बोले न बाबूजी जान के क्या करोगे।”

बातचीत करते देख बच्चा फिर मां के पास आ गया आंसू पोंछते हुए।

मां ने प्यार से आंसू पोंछ दिए। और आंचल खोल कर दो रुपये का सिक्का बेटे को दिया।

बच्चा सिक्का लेकर फेंक दिया।

मां ने समझाया—“नहीं बेटा ऐसा नहीं करते।”

अब तक समझने की कोशिश कर रहे सिद्दकी ने 10 रुपये का नोट निकालकर बच्चे को देना चाहा।

बच्चा मां की तरफ याचक की तरह देखा—बच्चा डर रहा था कि मां इशारा करेगी तो 10 रुपये ले लेगा।

मां ने बच्चे को 10 रुपये लेने से मना कर दिया। सिद्दकी ने रीपिट किया—

“अरे 10 रुपये ले लो—भूखा है बिस्कुट खा लेगा।” “नहीं बाबूजी—मांगने की गंदी आदत लग जाएगी।”

सिद्दकी को आश्चर्य हुआ—

“अरे मांग नहीं सकती हैं, किसी का दिया लेती नहीं है तो बच्चे को भूखा मत रखो।”

“हां बाबूजी इसके पापा बाहर गए हैं आते होंगे।” पाण्डे से रहा नहीं गया, खीझ कर बोला—“प्लेटफॉर्म पर रहती है और ईमान वाली बनती है। 10 रुपये लेने से आदत गंदी हो जाएगी एंड तेरी गंदी आदत से ये बच्चा भी प्लेटफॉर्म का होगा।”

“मुंह, संभाल कर बोलिए बाबूजी, जबान गंदी मत कीजिए।”

तब तक मिश्रा टपका—“अरे बहुत मुंह चलाती है, इसका एक ही बाप है जब कहीं जाना ही नहीं है तो रात भर प्लेटफॉर्म पर क्या कर रही थी।”

“यार से मिलने आई होगी?”

“क्या पाण्डे जी हा हा हा हा हा...” शैतानी ठहाका लगाया—“अरे आदमी देखकर उसूल वाली बनती है, और रात में इसका उसूल कहां चला जाता है?”

औरत बर्दाश्त नहीं कर पाई और बोली—“बाबूजी आपकी बहू-बेटियों की आदत यहां-वहां मुंह मारने की होगी, इसलिए आपको ये तजुर्बा है। हम गरीब हैं पर गंदी नहीं।”

पाण्डे चिल्लाया—“अरे तुम्हारी ये मजाल, दो कोड़ी की हैसियत नहीं—और बड़ी-बड़ी बातें करती है।” अब तक बातचीत सुनकर और लोग इकट्ठे हो गए थे। “बाबूजी जो बातें अपने लिए अच्छी न लगे दूसरों के लिए भी नहीं कहनी चाहिए।”

सिद्दकी ने हस्तक्षेप किया—“अरे—अरे पाण्डे जी इस बेचारी पर मत बिगड़िए, लगता है कुछ मुसीबत में है तभी यहां पड़ी है।”

“नहीं—नहीं ई—ऐसे नहीं मानेगी—जीआरपी को बोल देते हैं, चार डंडा लगते ही ठीक हो जाएगी, पूछने पर बताती नहीं है और अकड़ देखते हैं।” पाण्डे जी रेलवे हास्पिटल के कम्पाउण्डर होने का रौब झाड़ रहे थे। “ये मिश्रा जरा स्टेशन मास्टर को फोन लगा।”

औरत अब तक चुपचाप सह रही थी उसे और चुप रहना अच्छा नहीं लगा। और पाण्डे की ओर मुखातिब होकर बोली—“स्टेशन मास्टर को काहे, डाइरेक्ट जीआरपी को फोन

कीजिए जैसे दिए हैं फोकट में बैठे हैं क्या?”

पैसा की बात सुनकर सब चुप हो गए। “अरे तुमसे वही बात जानना चाह रहे हैं क्या बात है। लगता है कोई कष्ट में हो? ठीक है नहीं बताना चाहती हो तो कोई बात नहीं। तुम आराम से बैठो।”

सिद्दकी की बातों ने मरहम का काम किया। जब कोई समस्याओं के कारण अपनी ही किस्मत को दोष दे रहा हो तब दूसरे का हस्तक्षेप—अच्छा नहीं लगता है।

फिर से रंधिया अपना दुखड़ा सुनाने लगी—“बाबूजी अपना दुख किसको बताएं, अपनी किस्मत ही खोटी है।” बताते-बताते बीते काल में खो गई।

“एक सप्ताह से जंगल में पत्ते तोड़-तोड़ कर इकट्ठे किए। सभी पत्तों को बोरी में भरकर स्टेशन लाए। आने में 20 रुपये भाड़ा लग गया। 40 रुपये ले कर चले थे।”

“प्लेटफॉर्म पर कल नौ बजे रात में ही आ गए। पत्ते बोरी में खराब न हो जाए इसलिए प्लेटफॉर्म से रात को निकाल दिए। बीस-बीस पत्ता का मुट्ठी बनाते हैं। और बनारस की दुकानों में एक रुपया मुट्ठी बेचते हैं।”

“जीआरपी वाला सिपाही दस रुपये मांग रहा था। बड़ी मुश्किल में आठ रुपये लेकर माना। दो रुपये ही बचे थे लेकिन दो रुपये में क्या मिलेगा। अभी हमलोग बीस-बीस पत्ता का मुट्ठी बनाना सोच ही रहे थे कि अचानक हवा चलने लगी। पत्ते समेटते तब तक अचानक आंधी उठ गई, पत्ते बचाने की बहुत कोशिश किए मगर असफल रहे। हमारी आंखों के सामने एक सप्ताह की मेहनत बेकार हो गई। साड़ी खोलकर दोनों पति-पत्नी कुछ पत्ते बचाना चाहे लेकिन नहीं बचा पाए। साड़ी भी फट गई।”

औरत अपना दुखड़ा कहते जा रही थी। इसी सिंगरौली बनारस इण्टरसीटी से पत्ते बेचने बनारस जाते। लेकिन अब क्या करें। कहते-कहते औरत की आंखों में आंसू आने लगे। “घर में सास बीमार है उनकी दवाई लेनी थी। भोजन की व्यवस्था करनी है।” —“भगवान की यही मर्जी है। हम गरीबों पर ही मुसीबत मेहरबान होती है। पता नहीं भगवान गरीब को और गरीब क्यों बनाता है!”

तुम्हारा पति कहां गया?

आत्मीयता से सिद्दकी ने पूछा?

“स्टेशन के बाहर गए हैं क्वार्टर की तरफ कोई काम खोजने। चालीस-पचास रुपये का काम हो जाएगा तो भाड़ा करके घर वापस चले जाएंगे।” घटना सुनकर लोगों को दया आ गई। अबतक जो औरत की देह को देख रहे थे अब उनकी आत्मा को देखने लगे।

हड़बड़ाते हुए विनोद तिवारी अपनी पत्नी के साथ पहुंचे।
“अरे पाण्डे बाबा इण्टरसीटी खुल गई का। टिकट को लाईन लगा है जैसे आज क्वार्टर से निकलने में देरी हुई।”

“तिवारी जी टिकट मिलल की ना।” पाण्डे ने पूछा, “झा जी को बोले हैं, टिकट भेजवा देंगे अच्छा ठीक बा बैठः। ट्रेन लेट बा एक घण्टा।” उसी में सरक कर सभी बैठ गए।

तब पोर्टर तिवारी का टिकट लेकर आ गया—“आपका टिकट पोर्टर-टिकट दिया। तिवारी ने सवाल किया—अरे लम्बी लाइन लगी है इतनी जल्दी टिकट कैसे मिला? स्टेशन मास्टर झा जी बुकिंग में फोन कर दिए और हम अंदर जाकर टिकट ले लिए।”

“ठीक है तू जा।”

हां तो बाबा-ई-शुक्ला जी कह रहे थे आज यज्ञ के चंदा का हिसाब करना था।

रेलवे परिसर के मंदिर में नौ दिवसीय यज्ञ का आयोजन किया गया है। जिसके कर्ता-धर्ता-तिवारी जी, पाण्डे जी, बबलू मिश्रा जी तीनों मुख्य भूमिका में हैं। तीनों के एक साथ होते ही चर्चा होने लगती है।

“हिसाब क्या करना है तिवारी जी तीनों को एक-एक मोटरसाइकिल बोले हैं। यज्ञ खत्म होगा दे देंगे।”

पाण्डे ने तिवारी को समझाया।

“हां तो साठ हजार से ज्यादा की मोटरसाइकिल नहीं देनी है। तिवारी ने अपनी राय दी। ऐसा नहीं कि दो के पार हो जाए।”

“मोटा-मोटी हिसाब क्लीयर है छह तिया अठारह, मतलब एक लाख अस्सी”, पाण्डे ने हिसाब लगा कर बता दिया।

नागा बाबा के तिवारी के सवाल पर पाण्डे सम्भलते हुए बोला—

“तिवारी सब स्टेशन में हिसाब कर लोगे कुछ रहने दो। नहीं आते समय नागा बाबा मिले थे। वे बोले कि कुछ बढ़ा कर करना है। काहे कि चंदा रेलवे कालोनी में पुरकस हुआ है। तिवारी शंका जाहिर किए यज्ञ का चंदा ज्यादा बंट जाएगा तो बंटवारा में अपना हिसाब कम ना हो जाए।”

“तिवारी तुम नाहक चिंता करते हो। नागा बाबा को नौ दिन का एक लाख और लोगों को देने के बाद भी 07 लाख से ऊपर बचेगा।” बबलू मिश्रा ने समझाया। तब ठीक है मानो तिवारी की जान में जान आया। “तिवारी क्या हुआ तुम्हारी सिटी राइड बस का।”

बस-बाबा—“हां हां सिटी राइट बस।”

पाण्डे ने तिवारी के मन की बात छेड़ दी। तिवारी ने पत्नी की तरफ देखा तो पत्नी ने भी कोहनी मार दी। कहे न।

“हां बाबा-बस साल भर चला है। ढाई लाख में दे देगा। वो! इसीलिए चंदा का हिसाब जोड़ घटा रहे हो।” पाण्डे ने व्यंग्य किया। “हां बाबा जानिए रहे हैं इसीलिए इतनी मेहनत कर रहे हैं, ड्यूटी में सीक लगा के।”

अच्छा ठीक बा। तोहार सपना पूरा होई।

फिर तिवारी जी ने पत्नी को कोहनी से इशारा किए कि काम हो जाएगा। “बाबा आज भण्डारा है।”

“है तो?”

“भण्डारा का कोई सामान नहीं लाए हैं काहे?”

“पता नइखे?”

“वो देवी प्रसाद गुप्ता-भण्डारा का पूरा भार उठा लिया है। चलो ठीक है अच्छी खुश-खबरी-दिया-पच्चास हजार और बचल। भगत ऐसने होना चाहिए। आंख का अंधा गांठ का पूरा।”

अब तक सिद्दकी सब बात सुनकर बोले—“पाण्डे जी जब भण्डारा हो रहा है तो ई-सब गरीब बेचारी को वहीं खाना खिला दीजिए न।”

औरत और बच्चे की तरफ इशारा करते हुए सिद्दकी ने कहा। पाण्डे जी कुछ कहते तब तक तिवारी जी टपक पड़े।

“अरे प्रोफेसर साहब आप क्या चाहते हैं—डोम, चमार गुलगुलिया को मंदिर में ले जाकर खिला दें। और मंदिर यज्ञ को अपवित्र कर दें।” बबलू मिश्रा टपक पड़ा। “हां सिद्दकी साहब चाहते हैं। कि यज्ञ भ्रष्ट हो जाए।”

सिद्दकी को बुरा लगा।

“इसमें भ्रष्ट होने की क्या बात है? यज्ञ में जरूरतमंद गरीब लोगों को खिलाने से मर्तबा हासिल होगा आपलोग क्या कहते हैं? हां! पुण्य मिलेगा। आपलोग दरिद्र में नारायण दूढते हैं न।”

“अरे प्रोफेसर साहब दरिद्र में नारायण दूढना है तो ब्राह्मण से बड़ा कोई दरिद्र है? ब्राह्मण देवता है, ब्राह्मण दरिद्र भी है।”

मिश्रा ने सिद्दकी की बातों की मानो खिल्ली उड़ा दी। सिद्दकी हार नहीं माना और बोला—“मंदिर में जब इतने लोग चोबिसों घण्टा भण्डारा में लंगर खा सकते हैं तो ई बेचारी नहीं खा सकती है?”

तिवारी ने सिद्दकी को ब्राह्मण धर्म समझाया—सिद्दकी साहब कॉलेज नहीं है। मंदिर है मंदिर!! वहां बनारस के विद्वान कर्म-काण्डी ब्राह्मणों का भोजन चलता रहता है। मंदिर परिसर में चारों तरफ आना-जाना रहता है। वहां ई सब डोम चमार का भोजन कराना...? समझते हैं! रुक कर तिवारी आगे बोला।

नागा बाबा और उसके साथी सब नाराज हो जाएंगे।

नागा बाबा से सभी डरते हैं। उनकी नाक में गुस्सा रहता है। कहीं देख लिए न इन लोगों, चमारों को तो किसी की खैर नहीं।

“अच्छा तो पाण्डे जी हमको एक बात बताइए”—सिद्धकी ने पूछा।

“आप लोग डोम, चमार से चंदा लेते हैं कि नहीं।”

“लेते हैं न! चंदवा डोम, चमार नहीं है न ! वे तो लक्ष्मी हैं।”

पाण्डे बोला—“तो क्या डोम-चमार गुलगुलिया हिन्दू नहीं हैं या आपलोग हिन्दू नहीं मानते हैं?” तिवारी को सिद्धकी के इन सवालों से गुस्सा आ रहा था। गुस्से में बोला—“आप नहीं जानते हैं।”

“डोम-चमार हरिजन हैं! अछूत हैं अछूत!”

“तो क्या अछूत नहीं कहेगा”

“गर्व-से कहो हिन्दू हैं हम। या...”

और कितना जलील कराएगा बाबूजी डोम-चमार को!

रधिया से रहा नहीं गया, और सिद्धकी से मुखातिब होकर बोली। आखिर उसी के कारण बहस छिड़ी थी।

“बाबूजी ये लोग खुद को ब्राह्मण मानते हैं। मनुष्य होकर मनुष्य से घृणा करते हैं। ये तो चमार का मतलब भी नहीं जानते हैं।”

भीड़ से आवाज़ आई।

“ढोंगी ब्राह्मण हैं। गरीब और जरूरतमंद को खिलाने से ही पुण्य होता है। संविधान में सब बराबर है। इनको मनुष्य नज़र नहीं आता है।”

“डोम-चमार नज़र आता है।”

तब तक भीड़ से दूसरी आवाज़ आई—“अरे-इन ढोंगी ब्राह्मणों पर केस करना चाहिए।”

“नहीं-नहीं”—तीसरा बोला इनका सामाजिक बहिष्कार करना चाहिए। भीड़ के मन में जो आया वो बोल दिया तिवारी, मिश्रा और पाठक डर से सहम गए। उसे भीड़ के दवाब में भूल का एहसास सताने लगा।

सिद्धकी ने हस्तक्षेप किया—“भाइयो, इसमें झगड़े की बात नहीं है आपलोग गुस्सा मत कीजिए।”

“बाबूजी तब से बोल रहे हैं—डोम-चमार! जबकी हम हिन्दू हैं। लेकिन जात के नाम पर गाली दे रहे हैं। नागा बाबा जहां सोता है उस छावनी को मेरे पति ने बनाया है। उस जगह की मैंने गोबर से लिपाई-पुताई की है तब नहीं छुवाया? यज्ञ में जो बिचाली लगा है वह मेरे घर से आया है। चार दिन लगातार काम किए हैं। और मजदूरी एक रुपया नहीं मिला।”

“पाण्डे बोल दिया धर्म के काम में श्रमदान करना

चाहिए!—और आज हम अछूत हो गए?”

भीड़ रधिया की बात को सुनकर सन्न रह गई।

रधिया मानो उधेड़ देना चाहती थी। भीड़ का मौन सपोर्ट मिलने पर हौसला बढ़ गया। पाण्डे जी कहता है चमार है। जानते हैं चमार का क्या मतलब होता है।

“च - चारों वेद!”

“मा - महाभारत!”

“र - रामायण!”

“अर्थात्—चमार तेरे सारे धर्मग्रन्थों का सार है। इतना भी समझ नहीं आता है तिवारी जी—और मिश्रा जी आप भी समझ लीजिए—चमार का मतलब—

च से - चक्षु - मतलब आंख

म - से - मज्जा - मांस

और र - से - रक्त अर्थात् खून”

“जो तेरे में भी है और मेरे में भी है और यहां उपस्थित सभी लोगों में भी है।”

“अब बताओ पण्डित कौन है। चमार?” सभी चुप।

रधिया की बातें सुन कर भीड़ भी अंचभित हो गई। पाण्डे, मिश्रा और तिवारी थूक घुंटकर आंखें फाड़कर रधिया को देख रहे थे। मानो रधिया कोई आश्चर्य हो।

पाण्डे फुसफुसाया पाठक-से, “ग्वार जाहिल में इतनी विद्वता!”

“पाण्डे जी विद्वता किसी की बपौती नहीं है।”

रात में प्रवचन करने वाले पंडितजी बोल रहे थे।

“जिवहा दग्धो प्राणेनः—अर्थात् दूसरे का अन्न खाते-खाते ब्राह्मणों का जीभ खराब हो गया।”

“हस्तो दग्धः प्रति ग्रहात—लोगों को ठग कर दान लेते-लेते हाथ जल गया।”

मनः दग्धः पर स्त्रिभिः। मंत्र सिद्धि कथं भवेत्।।

“अर्थात्—पर नारी को गंदी नज़रों से देखते-देखते मन दूषित हो गया।”

“तेरे यज्ञ में मंत्र सिद्धि कैसे होगा?” रधिया के मुख से संस्कृत वाणी सुनकर सभी हैरान रह गए। भीड़ ताली बजाने लगी। भीड़ से सम्मान पाकर रधिया की आंखों से गर्व-खुशी मिश्रित आंसू छलकने लगे। भीड़ का सम्मान पाकर बोलती गई—पंडित जी पापी तो आप लोग हो।

5 “भेद भाव करने का पाप करते हो।”

5 “दूसरे को सम्मान नहीं देते हो।”

5 “बड़े और बुजुर्गों से भी पांव छुवाते हो।”

5 “अभी-अभी आप लोग यज्ञ में उठाए गए चंदे का बंटवारा कर रहे थे।”

“ये कुकर्म आपको शोभा देता है? देता भी होगा क्योंकि आप जन्मना पंडित हैं न? कर्मणा नहीं।”

“इसीलिए आप गंगा नहाते हैं। यज्ञ करते हैं। हम मजदूर लोग मेहनत करते हैं। यही हमारी पूजा है। हमें सन्तोष है। कम से कम ढोंग तो नहीं करते। गरीब-मजदूर लोग भगवान के नाम पर चंदा देते हैं। उसकी आड़ में आप गलत करते हैं। आप लोग कमाई का जरिया बना लिए हैं। जिस दिन गरीब जनता को यह बात समझ आ जाएगी उस दिन तेरे अंधविश्वास का महल ढह जाएगा।”

“रहा यज्ञ में खाने का। तो हमलोग मेहनत करके खाते हैं। मांग कर नहीं खाते। आप यज्ञ के पैसे से जितना भी कमा लो मगर भीख मांगने वही चमार टोलिया ही आना होगा क्योंकि भिखारी ब्राह्मण भी ब्राह्मण के यहां भीख मांगने नहीं जाते।”

“बस रधिया-बस।”

सिद्धकी रधिया को हाथ जोड़ते हुए बोले। “मैं भी यही समझाने की कोशिश कर रहा था। परन्तु मैं समझा नहीं सका लेकिन तुम्हारी बातों ने आज सबकी आंख खोल दी। मैं प्रोफेसर हूँ लेकिन ऐसा तर्क नहीं दे सकता।”

“तुम देवी हो। यदि मेरी बात से तुम्हें चोट पहुंची हो तो क्षमा कर देना।”

“सिद्धकी साहब आप क्षमा क्यों मांगते हैं। दोषी तो हम हैं।” सीडी पाण्डे सिद्धकी से क्षमा मांगते हुए बोले—“ब्राह्मण तो हम हैं। लेकिन ब्राह्मण का ज्ञान रधिया में है। ऐसा हमारे अहंकार ने समझने ही नहीं दिया। और हम क्या-क्या बकते चले गए, रधिया ने हमारे अहंकार को जो चोट पहुंचाई है। उससे हम शर्मादा हैं। यह बात बिलकुल सच है। यदि हम सम्मान करेंगे तभी हमारा सम्मान बचेगा। मेरे सम्मान करने से दूसरे भी सम्मान करेंगे।”

तुलसी ने कहीं नहीं लिखा है—“जाति प्रधान विश्व करी राखा।”

उन्होंने साफ लिखा है—

“कर्म प्रधान विश्व करी राखा।”

“हम जानकर भी अहंकारवश शास्त्र वचनों की अवहेलना करते हैं। तब ऐसा दीन के आगे भी शर्म से सर झुकाना पड़ता है।”

और पाण्डे जी रधिया के आगे हाथ जोड़ लिए। “रधिया हो सके तो हमें माफ कर देना।”

सिद्धकी साहब बोले—

“अरे पाण्डे जी यही बात तो हम भी कहना चाह रहे थे। चलिए देर से ही सही सदबुद्धि तो आई।”

संत रविदास जी क्या कहते हैं?

“मन चंगा तो कठौती में गंगा।”

भीड़ देख कर रामदास का मन घबरा गया। दौड़े-दौड़े आया किसी अनजान अनहोनी से दिल घबरा रहा था। क्या बात है। मेरी पत्नी और बच्चे को भीड़ घेरे हुए हैं। भीड़ को हटाते हुए बदहवास पहुंचा पत्नी और बच्चे को सही सलामत देखकर जान मे जान आई पत्नी और बच्चे से लिपट गया—

“क्या हुआ?”

“इतनी भीड़ क्यों है? कुछ हुआ है क्या?”

तिवारी जी रामदास को देखते ही पहचान गए।

“रामदास तुम्हारी पत्नी और बच्चे हैं।”

“हां तिवारी जी हमारी पत्नी है।”

माथे पर हाथ धर लिए।।

“क्या पता रामदास कि ये तुम्हारी पत्नी है। यह विदूषी है—देवी है। तुम बहुत तकदीर वाला है। रामदास।”

“जानते हैं पाण्डे बाबा, हम इसी के घर से बिचाली लकड़ी सब लाए हैं। लेकिन रधिया रामदास की पत्नी है ये हम जान नहीं सके, अनजाने में हम न जाने क्या-क्या कह दिए।”

रामदास तिवारी जी से पूछा—“क्या हुआ तिवारी जी—मेरी पत्नी कुछ बोली है क्या। हम आप सबन से माफी मांगते हैं।”

“नहीं रामदास! तिवारी जी ने रामदास के हाथ पकड़ लिए, क्षमा मांग कर हमें शर्मादा न करो।” इस बीच रधिया बोली—“कहीं काम मिला।”

“हां-हां काम मिल गया। रात की आंधी में नागा बाबा की झोपड़ी उजड़ गई—उसी को बनाना है। चलो-चलते हैं।”

तब तक स्टेशन के विस्तारक यंत्र से आवाज आने लगी। बनारस जाने वाली इण्टर सीटी एक्सप्रेस कुछ ही क्षणों में एक नम्बर प्लेटफार्म से खुलने वाली है, यात्री कृपया अपना-अपना सीट ग्रहण करें।

○

संपर्क : चन्द्रपुरा, बोकारो-828403

झारखण्ड

मो. 09771426432

बन्धन और मुक्ति!

वह एक अच्छी विद्यार्थी थी। उसकी अध्ययन कार्य में खूब रुचि थी। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी साहित्य के स्वच्छन्दतावादी साहित्य की वह दीवानी थी। हिन्दी का छायावाद उसे उसकी ही प्रतिकृति प्रतीत होता था। साहित्य और भाषा के अलावा उसे और विषयों में रुचि ही कहां थी। शेष विषय उसे विचार-विहीन और बोझिल ही अनुभव होते थे। इसलिए उसने अंग्रेजी जैसे विषय में बी.ए. ऑनर्स किया था और फिर उसी में एम.ए. की परीक्षा भी पास की थी।

हॉस्टल में रहकर ही तो मीता ने अपनी सारी शिक्षा पाई थी। इसलिए उसे घर-परिवार और किचिन जैसे बोरियत भरे कामों में कोई रुचि नहीं थी। वैसे भी आजकल रेडीमेड का जमाना है। जब सब कुछ पूर्व निर्मित माल बाजार में उपलब्ध है तो फिर स्वयं अपने ही हाथों से पापड़ बेलने कौन से जरूरी थे। तभी तो मीता को घर-परिवार, संतान और विवाह जैसे काम भी झंझट ही प्रतीत होते थे।

एक दिन वह खाली क्लास में अपनी सहेलियों के बीच में बैठी थी। एम.ए. की कक्षा थी। उसकी सारी सहेलियां 20-22 वर्षीया युवतियां थीं। सबकी आंखों में सुनहरे और सतरंगी सपने थे। इसलिए वे परस्पर अपने-अपने भावी जीवन को लेकर चर्चार्त थी।

शारदा ने सरस्वती पर फव्वी कसी थी—

“मेरी फ्रेंड तो जल्दी ही पराई हो जाएगी, जीजा जी क्या काम करते हैं। कैसे हैं तूने देखे तो होंगे?”

वह छुई-मुई की भांति मुरझा गई थी हालांकि उसके अधरों पर मन्द-मन्द मुस्कान थिरक रही थी।

जब शारदा ने अधिक ही आग्रह किया था तो सरस्वती ने इतना ही संकेत दिया था कि उसका होने वाला जीवनसाथी एक चार्टर्ड एकाउंटेंट है और एक बड़ी मल्टी नेशनल कम्पनी में कार्यरत है।

“फिर तो तू जिन्दगी भर मजे करेगी। देश-विदेश की यात्रा करेगी, दुनिया भर में घूमेगी, फ्रांस का राल्फ टॉवर देखेगी, अमेरिका की ‘स्टेच्यू ऑफ लिबर्टी’ देखेगी।”

सरस्वती सकुचाकर मुस्करा रही थी। उसके मुख-मण्डल पर एक प्रकार की दीप्ति थी। आशा थी और उमंग थी, आकाश में उन्मुक्त होकर अपने पर तोलने की।

तभी उसने शारदा पर पलटवार किया था—“तेरी भी तो सगाई हो गई है, तू भी तो बता ना अपने लाईफ पार्टनर के बारे में कुछ?”

शारदा ने भी सकुचाते हुए मुख खोला था—“मेरे लिए जो लड़का मेरे परिजनों ने देखा है, वह तो एक मामूली इंजीनियर ही है, फिर भी उसकी ट्रेड अच्छी है, सो वेतन भी ठीक-ठाक गुजारे लायक मिल ही जाता है। हालांकि आजकल इंजीनियरों की तो भरमार हो रही है, अब वो पहली वाली प्रतिष्ठा तो उनकी समाज में रह ही कहां गई।” सरस्वती के सम्मुख वह स्वयं को बोनी ही पा रही थी, अतएव एक प्रकार के हीनताबोध की शिकार थी। इस सबके बावजूद उसे अपने भावी जीवन के प्रति आशा और उमंग थी।

अब सुषमा की ओर सभी सहेलियों की नजरें लगी हुई थीं क्योंकि वह भी अभी कुमारी थी। हालांकि इन सब लड़कियों के सबके अपने-अपने वॉयफ्रेंड भी थे। लेकिन उन्हीं के साथ उनके जीवन की डोर बांधी जा सकती है, इस बात को लेकर वे बहुत आश्वस्त नहीं थी। इसीलिए शादी-विवाह की चर्चाओं में मशगूल थी। सुषमा का भी एक सहपाठी उसकी अपनी ही कक्षा में मौजूद था। लेकिन उन दोनों की जातियां भी अलग-अलग थीं और उनके परिवारों का आर्थिक स्तर भी संभवतया समान नहीं था। सुषमा एक समृद्ध वैश्य परिवार की इकलौती और लाड़ली बेटी थी, तो सुरेश किसी निर्धन दलित परिवार से ही आता था। वह सिविल सर्विस की तैयारी कर रहा था, हो सकता है कि कल को वह एक उच्च प्रशासनिक अधिकारी

नियुक्त हो लेकिन अभी तो सड़क पर ही था। सब लोग परिणाम को देखते हैं प्रक्रिया की प्रतीक्षा कौन करता है। इसीलिए सुषमा भी उसके साथ बंधने के लिए बहुत आतुर नहीं थी।

इसी अन्तराल में कक्षाओं के समय में अन्तराल होने पर वे सारी ही सहेलियां अब कॉलेज की कैंटीन में आ गई थीं। लेकिन उनमें से अभी अकेली सहेली मीता ही बिना साक्षात्कार के बची हुई थी। वह लड़कों जैसे ही वस्त्र पहनती थी। छोटे-छोटे बाल भी रखती थी। उसे नारी होने के सारे ही बाह्य आवरणों से जैसे एक प्रकार की चिढ़ ही थी।

सरस्वती ने कैंटीन में बैठते हुए चार-पांच कापियों और कुछ स्नेक्स का आदेश बैरे को दे दिया था। पानी के गिलास सभी की टेबिलों पर आ ही गए थे। यहां पर छात्र-छात्राओं की काफी चहल-पहल थी। लगभग सभी लड़के और लड़कियां जोड़ों में साथ-साथ खा-पी रहे थे। हंस-बोल रहे थे। खिल-खिलाकर अट्टहास कर रहे थे। पेमेंट की जिम्मेदारी प्रायः ही पुरुष छात्रों की होती थी। वे लड़कियों से केवल उनकी च्वाइस आग्रहपूर्वक पूछते थे और आगे आर्डर को पास कर देते थे। कुछ आ रहे थे तो कुछ खा-पीकर और बोल-बतियाकर जा भी रहे थे। जिनके पीरीयड्स खाली थे, वे एकान्त में बैठकर अन्तरंग वार्तालाप में संलग्न थे। साथ-साथ जीने और मरने का सबल संकल्प ले-दे रहे थे। या जिन्होंने बंक मारी थी, क्लासों से वे भी वहीं पर जमे हुए थे। उनके लिए अध्ययन से यह एकान्त प्रेमपरक वार्तालाप कहीं अधिक आवश्यक था।

अब अन्त में मीता की बारी थी, इसलिए सभी की आंखें उसी के चेहरे पर लगी हुई थी। वैसे वह प्रायः लड़कों के साथ ही उठती-बैठती और खाती-पीती थी क्योंकि उसे छात्राओं कि घर-परिवार और शादी-ब्याह जैसी बोरियत वाली बातों में रुचि ही कहां थी। वह तो इन सबको बेकार के बंधन और स्वतन्त्रता और प्रगति में बाधक ही मानती थी। उसने फ्रांस की 'सेकेंड सेक्स' की लेखिका को पढ़ रखा था। जिसने ज्यां पाल सार्त्र जैसे साहित्यकार और दार्शनिक के साथ भी विवाह-सम्बन्ध बनाने से स्पष्टतया इंकार कर दिया था। जोला जैसी नारीवादी लेखिकाओं का उसने अध्ययन किया था। पुरुष विचारकों में वह जान स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी' नामक पुस्तक को घोंट कर पी चुकी थी। वह अन्तर्राष्ट्रीय नारीवाद से वैचारिक स्तर पर जुड़ी हुई थी, अतएव यौन-मुक्ति को ही तो नारी-मुक्ति का एकमात्र पर्याय समझती थी। आज वह इन पिछड़ी हुई मानसिकता वाली छात्राओं में स्वयं को बहुत सहज और सन्तुष्ट नहीं पा रही थी।

सरस्वती और शारदा ने दोनों ओर से उस पर व्यंग्य-वाणों

का जैसे प्रबल प्रहार किया था—“हमारी प्यारी सहेली मीता! तू भी तो कुछ अपनी रामकहानी सुना। कोई जीवन-साथी चुना कि नहीं या ऐसे ही हर डाल पर मंडराती फिर रही है और इन रसलोभी भौरों को पागल बना रही है।”

वह इन सब बातों को सुनने के लिए तैयार ही कहां थी। उसे तो ये शादी-विवाह, घर-परिवार और जाति एवं समाज जैसी सारी संस्थाएं मानव-स्वतन्त्रता में बाधक ही अनुभव होती थी। जब सारी ही सहेलियों की दृष्टिभंगी उसी के मुख-मण्डल पर आकर टिक गई थी तो फिर तो उसे कुछ ना कुछ प्रत्युत्तर तो देना ही था। अतएव उसने इतना ही बुदबुदाया था—“क्या एक स्त्री के लिए शादी-ब्याह रचाना अपरिहार्य ही है?”

शारदा ने जोड़ा था—“लड़की तो राजा की भी अनब्याही नहीं रहती मीता।”

मीता ने उसका प्रतिवाद किया था—“जब एक पुरुष अविवाहित रह कर त्यागी-तपस्वी, ब्रह्मचारी और महान् संत और महापुरुष बन सकता है तो क्या स्त्रियों का इस बन्धन में बंधना जरूरी है?”

सरस्वती ने उदाहरण प्रस्तुत किया था—“तू तो किस खेत की मूली है, मैत्रेयी और कात्यायनी जैसी ब्रह्मवादिनी नारियों को भी याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि को अपना पति स्वीकार करना पड़ा था।”

तब तक गर्म-गर्म कॉफी उनके सामने आ गई थी, उधर यह चर्चा भी अब शास्त्रार्थ का स्वरूप ले रही थी।

अपने कप में घूंट भरकर मीता ने मुख खोला था—“पुरातन युग में जो भी व्यक्ति शास्त्रार्थ या मल्लयुद्ध में दूसरे से पराजित हो जाया करता था तो उसको विजेता का शिष्यत्व स्वीकार करना ही पड़ता था। यदि वह विजित स्त्री हुई तो उसे उस विजेता पुरुष को अचीन्हें भाव से ही अपना स्वामी या पति स्वीकार करना होता था जैसे कि विद्योतमा जैसी विदूषी नारी को भी कालिदास जैसे बज्रबटु को भी अपना पति मानना पड़ा था।”

शारदा ने टोका था—“यह तो स्वयंवर की प्रथा की शर्तों में पहले ही तय था।”

“अरे भई शास्त्रार्थ को छोड़ो शारीरिक शक्ति और संघर्ष में पराजित होकर ही तो स्त्री ने पुरुष को अपना स्वामी या पति स्वीकार किया है। वरना स्वेच्छा से कौन किसका गुलाम बनता है मेरी बहना।”

इस बार उसके शब्दों में तल्वी और तुर्शी थी क्योंकि इस शास्त्रार्थ-समर में एक पक्ष का पोषण वह अकेली ही तो कर रही थी। दूसरी ओर शेष सहेलियां समर्थक थीं। हालांकि इस

वार्तालाप की सक्रिय प्रतिभागी शारदा और सरस्वती ही थी और सुषमा आज के इस अनायास आयोजित आयोजन की मेजबान थी। इसलिए वह ऑर्डर पर ऑर्डर देकर निरन्तर चर्चा को अग्रसर करके वहां पर बैठने का प्रबन्ध कर रही थी।

वैसे भी यह चर्चा अब निर्णायक मोड़ पर आ गई थी, अतः सारी ही सहेलियों को इसमें रस आ रहा था। और दिनों जो लड़कियां आपस में बैठकर केवल खाना बनाने और वस्त्र-विन्यास के वर्ण-संयोजन और उसके नए-नए डिजाईनों की चर्चा में ही संलग्न रहा करती थी, आज उनके लिए तो जैसे ज्ञान का नया गवाक्ष खुल रहा था। वे रट-रटाकर परीक्षाओं में भले ही अच्छी पोजिशन में प्राप्त कर रहीं थीं लेकिन उन्हें आज मीता के सम्मुख विचार-विमर्श या बौद्धिक क्षमता में अपना बौनापन साफ-साफ नजर आ रहा था क्योंकि मीता अकेली वाक्योद्धा होकर भी तर्क की तलवार से उन सबका सबलता के साथ सामुख्य कर रही थी।

इस वाक्योद्ध में अपनी हार को निश्चित जानकर भी शारदा ने उसको टोका था—“स्त्री ने अपनी शारीरिक दुर्बलता के चलते ही पुरुष वर्ग के वर्चस्व को अंगीकार किया है, क्या तुम्हारे पास इस बात का कोई प्रबल प्रमाण भी है?”

क्यों नहीं, शेक्सपीयर ने नारी को दुर्बलता का दूसरा नाम जो दिया है:— Wrethy they name is women.

“वो तो विदेशी और विधर्मी अंग्रेज था, उसकी और हमारी संस्कृति में जमीन-आसमान जितना अन्तर है, अतएव तुम कोई भारतीय प्रमाण प्रस्तुत करो।” यह सरस्वती का कंठ-स्वर था।

“हां, क्यों नहीं जयशंकर प्रसाद की श्रद्धा कामायनी महाकाव्य में मनु से यही कहती है—

तन की कोमलता लेकर मैं नर से हारी हूं।

मैकुर्बलता में नारी हूं

अब तो मीता की चढ़ बनी थी। उसने अपनी सारी ही विवाह-समर्थक सहेलियों के मुंह सी दिए थे। अब उनके पास अपने पक्ष को प्रबलता के साथ पुष्ट करने का संभवतः कोई बहुत ही पुख्ता प्रमाण बचा भी कहां था।

फिर भी सरस्वती ने अपनी झोंप मिटाने के लिए ही सही खीं-खीं करके मुख खोला था—“लेकिन तुम्हारे इस फूल जैसे सुन्दर व कोमल शरीर और चांद जैसे मनोहारी मुंह का क्या होगा? मीता रानी! क्या इससे बचाव के लिए भी तुम्हारे पास कोई शास्त्रीय या साहित्यिक प्रमाण हैं।”

शारदा ने भी गर्म तबे पर चोट मारी थी—“काम-सूत्र का यह वाक्य तुमने पढ़ा है—“कामिनोऽपि रहस्याख्यानं-ब्याजश्च चुम्बनमेव प्रधानम्।”

“मैं इसका अर्थ नहीं समझी शारदा! संस्कृत में मेरा हाथ तंग है।” इसी के साथ वह मन्द-मन्द मुस्कराई थी। तब तक उसने और अन्य सहेलियों ने भी अपने-अपने कॉफी के कप खाली कर दिए थे।

शारदा ने उसे हिन्दी में समझाया था—“पुरुष चाहे कितना भी कठोर और कुटिल हो लेकिन स्त्री के प्रेम-पाश या बाहुपाश में बंधकर ही वह अपने अन्तरंग रहस्यों को भी उगल देता है। तभी तो पुराने जमाने में लोग अपने विरोधियों की गूढतम या क्रूरतम योजनाओं को जानने के लिए विष-कन्याओं का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया करते थे। आजकल यही कार्य गुप्तचरी या कालगर्ल या वेश्याएं करती हैं।”

उसके तर्क वजनदार थे, उधर सरस्वती ने जो सुकुमार शरीर के सौन्दर्योपभोग का प्रश्न किया था, अब उन सबका उत्तर देने की जिम्मेदारी मीता के सिर पर थी। भले ही वह अंग्रेजी साहित्य की अध्येता थी लेकिन बी.ए. तक तो उसने हिन्दी साहित्य का भी अध्ययन किया ही था। अतएव उसे अब दिनकर रचित ‘उर्वशी’ महाकाव्य की ये पंक्तियां स्मरण हो आई थीं—

“रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।

दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।”

शारदा ने उसको कुरेदा था—“हम तेरी बात का मतलब समझे नहीं मीता!”

“अर्थात् रूप या सौन्दर्य के समुपभोग का एकमात्र मार्ग उसका उन्मुक्त उपभोग या उपयोग ही नहीं है। जो आनन्द हमें सौन्दर्य के सन्दर्शन से मिलता है, वह भला उसके भौतिक उपभोग या उपयोग में कहां है।”

इस बार सुषमा ने हस्तक्षेप किया था—“यहां पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के कवि दिनकर पाश्चात्य काव्यशास्त्री ब्रेडले से प्रभावित प्रतीत होते हैं, जिन्होंने ‘आर्ट-फार-आर्ट सेंक’ का नया नारा दिया था। वे कला को निस्प्रयोजन मानकर केवल मनोरंजन की ही वस्तु ठहराते हैं। जबकि मैथ्यू ऑर्नोल्ड ने कविता या कला के सौन्दर्य को जीवन की व्याख्या ही बताया है।”

इस बार सरस्वती ने अपना पाण्डित्य बघारा था—“अरे! पश्चिमी विचारकों को मारो गोली। अपने कालिदास भी तो शकुन्तला के निर्व्याज और अनिन्द्य सौन्दर्य की समुपयोगिता विवाह के बन्धन में ही देखते हैं—

“इदं किल ब्याज मनोहरं पुस्तपः क्षमं साध्यमयितुम् यः

इच्छति।

ध्रुवं सः नीलोत्पल पत्र धारया, समी लतां छेतुं ऋषि व्यवस्यति।

मीता ने जिज्ञासा प्रकट की थी—“इसका हिन्दी अनुवाद कीजिए।”

“हां, क्यों नहीं: अभिज्ञान् शाकुन्तलम् नाटक में कालिदास ने दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रथम दर्शन या सम्मिलन के अवसर पर राजा दुष्यन्त से यह प्रतिक्रिया उसके मनो मुग्धकारी सौंदर्य-संभार का अवलोकन कर दिलवाई है, जिसका अर्थ है कि क्या शकुन्तला जैसी अनिन्द्य और सुकुमार सुंदरी इस विजन विपिन में मालिन की भांति कठोर कृषि कर्म करने के लिए है। यह तो ऋषि कण्व ऐसा ही कर रहे हैं कि जैसे कि कोई व्यक्ति कमल-दण्ड या मृणाल से शमी या छौंकर जैसे कठोर वृक्ष को काटने का काम कर रहा हो। अब बताइए, प्रकृति ने नारी को जो इतना सुन्दर शारीरिक संभार दिया है, यदि उसका उपभोग पुरुष नहीं करेगा तो कौन करेगा। इसी के वशीभूत होकर तो पुरुष घर-परिवार की सारी जिम्मेदारियां उठाता है और अपनी अंगनाओं के भ्रू-संकेतों पर नित्यप्रति नर्तन करता रहता है।

अब मीता की जान में एक बार फिर जान आ गई थी। तभी तो उसने प्रत्याक्रमण किया था—“नारी के इस रमणी रूप ने ही तो उसे पुरुषों की भोग्या बनाया है। दूसरी ओर सांसारिकता से विमुख और विरक्त साधु-सन्तों ने नारी के इस मोहक और मारक रूप को देखकर ही उसे माया और मिथ्या बताया है। तभी तो कबीर जैसे सन्त-कवियों ने नारी को माया-मोहिनी और ठगनी तक बताया है। यही नहीं, उन्होंने उसके प्रमदा स्वरूप को पुरुष वर्ग की आध्यात्मिक साधना और भक्ति में भी माया के रूप में बाधक ही माना है। कबीर साहब के वचन हैं—

“एक कनक इक कामिनी, दुर्गम घाटी दौय।
भगति करे कोई सूरमा, जाति-बरन-कुल खोय।”

इस बार सरस्वती ने एक बार फिर मोर्चा संभाला था—“ये साधु-सन्त तो कर्म-कठोर जीवन-संघर्ष से पलायन करने वाले लोग ही थे। नारी को साथ रखने या उसके साथ विवाह-बंधन में बंधने के लिए बहुत सारे पापड़ बेलने पड़ते हैं, जिनसे ये साधु-सन्त बचना ही चाहते थे। तभी तो उन्होंने स्त्री मात्र को अपने आत्मिक उत्थान में बाधक मानकर मोहिनी-माया ही बताया है।”

मीता ने उसके कथन का प्रतिवाद किया था—“कबीर, नानक तथा धन्ना जाट जैसे साधु-सन्त तो गृहस्थ और कामकाजी भी थे। देखो, नानक यदि खत्री जाति के जर्मींदार थे, तो धन्ना जाट तो राजस्थान के ठेठ किसान ही थे। रही कबीर साहब की अपनी बात! वे भी जुलाहे या धुनिया का अपना परम्परागत व्यवसाय ही करते थे। ऊपर से सन्त और

भक्त भी थे। इसी प्रकार रविदास भी मोची का कार्य करते थे और उच्चकोटि के सन्त और कवि भी थे। यही क्यों, दादू से लेकर नामदेव, छीपा और रज्जब से लेकर कर्माबाई और सहजोबाई तक के संत-साध्वियां सारे ही तो पेशेवर लोग थे।”

शारदा ने चुटकी ली थी—“लेकिन मलूकदास जी महाराज ने तो केवल राम-नाम के सहारे रहकर निष्क्रिय जीवन का ही उपदेश दिया था”-

“अजगर करे ना चाकरी, पंछी करै ना काम।

दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।”

इस बार उसका दांव भारी था, मीता उसकी चोट से सहम उठी थी।

फिर अब तक बैरा खाली बर्तनों को समेटने और टेबिलों पर पोंछा देने भी आ पहुंचा था। वह संभवतः बीस-बाईस वर्षीय पहाड़ी युवक ही रहा होगा। उसको देखकर सरस्वती को एक प्रश्न सूझ गया था—“क्यों भैया! आपकी शादी हो गई है?” “नहीं बेन! हम गरीब-गुरबा आदमी हैं, थोड़ा-सा रुपया कमाता है, हमारे जैसे गरीब आदमी को कौन अपनी बेटी देगा।”

शारदा ने गर्म तवे पर चोट मारी थी—“देखो न विवाह प्रत्येक पुरुष रचाना या बनाना चाहता है लेकिन स्त्री को कमाकर खिलाना सबके बस का कहां है माई डियर।”

सुषमा ने भी व्यंग्य किया था—“तभी ये साधु-सन्त रणछोड़ बहादुर रहे होंगे, मैं अब समझी।”

बैरा अपना कार्य करके चला गया था लेकिन वह गीता की संसारी सहेलियों को एक बहुत बड़ा मुद्दा भी दे गया था। अब तो उस पर लगातार चारों ओर से यह दबाव बढ़ता जा रहा था कि या तो वह इस चर्चा में सहर्ष अपनी हार स्वीकार कर ले या फिर उसका उचित उत्तर दे।

ऐसी स्थिति में उसने बजाय समर्पण और समझौता करने के संघर्ष का ही रास्ता चुना था। तभी तो उसने तफसील के साथ अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया था—“देखिए सन्त और भक्त ये दो श्रेणियां साधुओं की रही हैं। सन्त लोग घर-गृहस्थी वाले कामकाजी लोग थे जोकि किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते थे। तभी तो कबीर जी ने कहा था—

“मांगन से मरना भला यह सतगुरु की सीख।”

इसलिए सन्त-परम्परा के लोग श्रमण-संस्कृति से जाकर जुड़ जाते हैं क्योंकि वे वैदिक वर्ण-व्यवस्था के भी विरोधी ही हैं। जबकि भक्त लोग शास्त्रवादी सनातनी या ब्राह्मणी परम्परा के ही प्रतिनिधि रहे हैं। इसलिए पुरोहित वर्गों से आने के कारण वही परजीवी और पलायनवादी रहे हैं। उन्होंने ही अपनी जन्मजात श्रेष्ठता को बरकरार रखने के लिए ही वर्ण-व्यवस्था

की वकालत की है। कर्म-कठोर जीवन-संघर्ष से बचने के लिए ही नारी को माया और जगत् को मिथ्या बखाना है।”

अब सरस्वती, शारदा और सुषमा पर मानसिक दबाव बढ़ गया था। मीता ने जैसे एक नए ही ज्ञान-क्षितिज के कपाट उनके सम्मुख खोल दिए थे क्योंकि वे तो अब तक सन्तों और भक्तों को एक ही समझते रहे थे। अब उनके पास ज्यादा कुछ कहने को रह भी नहीं गया था। फिर भी उन्होंने बजाय समर्पण के सुलह-समझौते का मध्य मार्ग अपनाते हुए ही चर्चा को अग्रसर किया था।

सरस्वती ने ही जिज्ञासा प्रकट की थी—“वैसे सन्तों और भक्तों में मूल अन्तर क्या है? क्योंकि नारी मात्र के बारे में तो उनके विचार लगभग एक जैसे ही हैं?”

मीता ने उसे सहेजा था—“नहीं फ्रेंड! ऐसा नहीं है, सन्त लोगों का बल ज्ञान और विवेक पर अधिक था क्योंकि वे अपनी आंखें खुली रखकर ही साधना-मार्ग में प्रवृत्त हुए थे। दूसरी ओर शास्त्रीय या सनातनी धारा के भक्त-कविगण बजाय ज्ञान-विवेक और तर्क के एक लिजलिजी भावुकता से ही भरपूर थे जिसमें ज्यादा सोचने-विचारने की जरूरत ही कहां थी। इसलिए वे भक्ति की वेगवती अनाविल धर्मधारा में तमाम तरह के सामाजिक भेदभावों के बावजूद भारतीय जन-मन को उससे आप्लावित कर रहे थे।”

इस बार सरस्वती व शारदा और सुषमा तीनों ही एक साथ उत्तेजित हो उठी थी। लेकिन मोर्चा इस बार शारदा ने ही खोला था—“आप ऐसा कैसे कह सकती हैं कि सनातनी धारा के शास्त्रवादी कवियों और भक्तों ने ज्ञान और विवेक की घोर उपेक्षा की है। बल्कि बाबा तुलसीदास ने तो स्पष्टतः निर्देशित किया है—

“बिन सत्संग विवेक न होई।”

लेकिन उनका बल तो बहन जी भक्ति पर ही है, तभी तो वह यह रूपक या त्रिभुज रचते हैं—

“नारी न मोह नारी के रूपा,

सुन पन्नगारि यह तत्व अनूपा।

अर्थात् ज्ञान और भक्ति के बीच में से नारी या माया, ज्ञानरूपी पुरुष को ही विमोहित कर सकती है। भक्ति, माया के रूप पर नारी होने से नहीं रीझती।

सरस्वती ने तुलसीदास के समर्थन में मुख खोला था—“देखिए कई बार ज्ञानी और गुणी व्यक्ति भी सांसारिक आकर्षण-पाश में बंध जाता है जबकि भक्तजन भव-बन्धन से सर्वथा विमुक्त ही रहते हैं।”

मीता को जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया था—“आप लोग अपने कथन या पक्ष का स्वयं ही प्रतिवाद कर

रही हैं। जो व्यक्ति सांसारिकता या व्यावहारिक जीवन और जगत् से जितना दूर होगा, वह उतना ही बड़ा नारी विरोधी होगा और जो व्यक्ति जितना ज्यादा इस वास्तविक जगत् से जुड़ा हुआ है और उसमें निरन्तर कर्म-निरत हैं, वही नारी के उतना ही अधिक निकट रहेगा।”

“अब आया ऊंट पहाड़ के नीचे” इस बार सुषमा ने टोहका दिया था—“अरे हम इतनी देर से यही तो मगजमारी कर रहे हैं मीतारानी! इसलिए जो व्यक्ति जितना ज्यादा दुनियादारी से बंधकर चलता है, वह उतना ही कर्मठ और व्यावहारिक होता है। हम तेरे साथ इसीलिए तो इतनी देर से सिर खपा रहे हैं कि महारानी! इस विरक्त अवस्था को छोड़-छाड़ कर अपना घर-परिवार बसा और सबका मुंह मीठा करा।”

इस बार सारी ही सहेलियां खिलखिला उठी थीं। चिड़ियों की चहक की भांति किचिन हॉल गूँज उठा था। अन्तराल का समय कभी का बीत चुका था, बल्कि अवकाश का वक्त होने के करीब था। इस रोचक और ज्ञानवर्धक चर्चा में जैसे उन सभी को काल का बोध ही बिला गया था। वे यह मानकर चल रही थी कि शायद अब मीता ने उनके तर्क-तीरों के सामने अपने हथियार डालकर समर्पण कर दिया है। लेकिन वह भी कच्ची मिट्टी की कहां बनी थी। सो सहज में हार मानने वाली कहां थी क्योंकि अभी तो उसके तर्करूपी तरकश में बहुत सारे तीर बचे हुए थे, जिन्हें वह उचित अवसर पर ब्रह्मास्त्र की भांति प्रयोग करने वाली थी।

और अब उत्तर देने की भी उसी की बारी थी। वैसे भी सारी ही सहेलियों की दृष्टिभंगी उसी के आत्मदीप्त मुखमण्डल पर लगी हुई थीं। इसलिए अब वह फिर लौटकर अपने मूल विषय पर आ गई थीं—“मैं स्त्री-पुरुष के स्नेहिल सम्बन्धों के तो पक्ष में हूँ लेकिन विवाह के बन्धन को अस्वीकार करती हूँ।”

शारदा ने व्यंग्य किया था—“गुड़ खाएं और गुलगुलों से परहेज’ इसी को तो कहते हैं। तुम स्त्री-पुरुष के संसर्ग से मिलने वाले अमित आनन्द का तो उन्मुक्त उपभोग करना चाहती हो, लेकिन उसके लिए जो घर-गृहस्थी का दायित्व वहन करना होता है, उससे साफ-साफ बचना चाहती हो। यह तो वही बात हुई ना ‘मीठा-मीठा गड़प’ और ‘कड़वा-कड़वा थू।”

सरस्वती ने भी बहती गंगा में हाथ धोने की कोशिश की थी—“हर डाल-डाल पर घूम-घूमकर इतराती-इठलाती तितली को भला एक डाल पर बैठकर रसपान करना कब सुहाता है।” इस बार मीता उखड़ गई थी—“तो क्या मैं चरित्रहीन हूँ जो

हरजाई बनकर विचरती हूं। मैं भी किसी एक पुरुष के साथ स्नेहिल और आत्मीय सम्बन्ध रखती हूं। लेकिन उसके लिए विवाह के बन्धन में बंधना क्या अपरिहार्य है?”

“तो उसके साथ शादी-ब्याह रचाने में ही क्या हर्ज है?” यह सुषमा का स्नेहिल स्वर था।

“विवाह-संस्था नारी की स्वतन्त्रता का दमन करने के लिए ही पुरुष वर्ग ने बनाई है। इसके बन्धन में बंधते ही स्त्री अपनी सारी आजादी को पतिरूपी पुरुष के हाथों खो देती है,” यह मीता थी।

“लेकिन परिवार में ही उसे संरक्षण और सुरक्षा भी तो मिलती है, तुम यह क्यों भूलती हो शीला”—शारदा बुदबुदाई थी।

अब मीता अपने को बहुत ही असमंजस में पा रही थी। फिर भी उसने अपने तर्कतीर रूपी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर ही दिया था—“संरक्षण और सुरक्षा एवं पोषण तो एक बाड़े में बंधे हुए पशु को भी मिलता है लेकिन वह जीता तो अपने मालिक मनुष्य की इच्छा पर ही तो। ठीक वही स्थिति एक पत्नी बनी नारी की क्या नहीं होती, आप ही बताइए?” इस बार मीता की मारक मार के आगे उसकी सारी ही सहेलियां निःशस्त्र और निस्सहाय-सी प्रतीत होने लगी थी। फिर भी सरस्वती ने जैसे-तैसे मुख खोला था—“देख मीता! यदि कोई व्यक्ति अपने पालित पशु को अच्छा खिलाए-पिलाएगा, दाना-पानी डालेगा तो वह उसका दूध भी तो दुहेगा ही।”

मीता ने पानी का गिलास खाली करते हुए उत्तर दिया था—“तुम यहीं आकर तो स्वयं को पुरुष की दासी बनती हो अरे भाई! तुम पुरुष के साथ स्त्री के संसर्ग को केवल उसी के लिए क्यों मानकर चलती हो। आखिर रतिक्रिया से स्त्री-और पुरुष दोनों को ही आनन्द समान रूप से मिलता है, तभी तो उसका नाम सम्भोग है। वह पति-पत्नी दोनों के ही समायोग से समुत्पन्न होता है। हम उसको पुरुष के पक्ष में एकपक्षीय प्रक्रिया मानकर स्वयं को पुरुष वर्ग के उपभोग की ही वस्तु बनाते हैं। जबकि हम वस्तु न होकर व्यक्ति-सत्ता हैं। हमारा अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व और वजूद है, अपनी इच्छा और चुनाव है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होने और पुरुष-तन्त्र पर परनिर्भर होने के ही कारण पत्नीरूपी स्त्री ने स्वयं को पुरुष की दासी बना लिया है। फिर विवाह-संस्था स्त्री की इस दासता को और भी अधिक मजबूत बनाती है क्योंकि इसमें सम्पत्ति और सम्मान सम्बन्धी सारे ही अधिकार पुरुष-सत्ता के पक्ष में झुके हुए हैं। जिस धर्मतन्त्र को लेकर आप लोग ज्ञान गर्वित हैं, वह भी पुरुषसत्तात्मक समाज ने अपने अबाध अधिकारों को अक्षुण्ण रखने के लिए ही रचा है।”

इस बार मीता का कथन काफी लम्बा हो गया था। लेकिन वह मर्म को छूने वाला था। उसको सुनकर उसकी सारी सहपाठिनें सहम उठी थीं। विवाह के बन्धन की वास्तविकता का बोध उन्हें आज आकर ही हुआ था। लेकिन एकदम हथियार डालकर मीता के सम्मुख समर्पण करना भी उनके अपने स्वाभिमान के विरुद्ध था। इसलिए सरस्वती ने ही सुलह-समझौते का मार्ग सुझाया था—

“यह बात तो मीता तुम्हारी सही है कि विवाह या परिवार नामक संस्था आरम्भ में पुरुषतन्त्र ने नारी मात्र को अपनी चिर चरणदासी बनाने के लिए ही गढ़ी होगी। यह बात भी ठीक है कि पुरुष पुरोहितों द्वारा रचित धर्म-शास्त्रों या स्मृतियों ने भी स्त्री और शूद्रों की दासता को सुदृढ़ ही किया है। लेकिन आधुनिक युग का जो शास्त्र है, वह हमारा संविधान ही है, जिसने समाज और परिवार में नारी-मात्र को समानता और स्वतन्त्रता एवं सम्पत्ति का भी अधिकार प्रदान किया है।”

मीता ने उसको कुरेदा था—“संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का भी उचित उपयोग स्त्री विवाह के बन्धन में बंधकर कहाँ कर पाती है। यहां पर संविधान पर सामाजिक परम्पराएं और परिवार की मर्यादाएं कहीं भारी हैं। एक पुरुष कितने ही दिन बिना बताए भी घर से बाहर रह सकता है लेकिन यदि एक स्त्री एक रात भी घर से बिना पूर्व सूचना के बाहर रह जाए तो उसका घर की चौखट में पुनर्प्रवेश दुष्कर क्यों हो जाता है।”

शारदा और सुषमा ने भी सहमति प्रकट की थी—“विवाह नामक संस्था स्त्री की स्वतन्त्रता को किसी सीमा तक प्रतिबन्धित तो करती ही है।”

“तभी तो मैं कहती हूं कि हम बिना विवाह बन्धन में बंधे भी बजाय पति-पत्नी बनकर रहने के सहजीवन में रहकर मित्रवत् भी तो रह ही सकते हैं उस सम्बन्ध में हमारी स्वतन्त्रता भी सुरक्षित रह सकती है।”

इस बार सभी सहपाठिनें ने उसके कथन का बजाय प्रतिवाद करने के समर्थन ही किया था। उधर अवकाश का समय हो चला था। उधर कबूतर का एक जोड़ा कोने में बैठकर गूटर-गूं कर रहा था। इसी के साथ सभी ने यह बैठक विसर्जित की थी।

○

संपर्क : 409/1, गांधी आश्रम कॉलोनी पलवल,
हरियाणा-121102
दूरभाष:- 09991816926

लंगड़ा गांव

आज हमारे पूरे गांव में चहल-पहल है क्योंकि राजपूत बिशन सिंह की बेटी का ब्याह है। अब यदि गांव में किसी राजे या पंडित के घर ब्याह उत्सव हो तो पूरा गांव एक पांव पर खड़ा न हो जाए तो लानत है ऐसे गांव पर। अरे बड़ी जात की बेटी का ब्याह यानी पूरे गांव की बेटी का ब्याह।

बिशन सुबह से ही पगलाए कुत्ते-सा सब पर अपना रौब झाड़ता फिर रहा है। कभी कहता—“यह साईं¹ कहां मर गए, कल से दस बार बुलावा भेज चुका हूं और यह अभी तक मरे ही नहीं। अब यह गली कौन बुहारेगा इनका बाप। पर इनके बाप इतने नखरे नहीं करते थे, इशारों पर काम करते थे, जी इशारों पर। अब इनकी नई नस्ल आई है, अपने आप को पंडित समझते हैं यह चूहड़े।”

गली चमकाने के ख्याल से जहर उगलते बिशन सिंह के दिमाग में बर्तन चमकाने की बिजली भी कौंध गई—“ओ पालेआ तू सिर्फ पाले² ही लगाए जा रहा है बैठकर या फिर चीरों³ का भी पता लिया है। ऐसे काम नहीं चलेगा, आज सुबह तड़के ही चीर पहुंचने चाहिए थे और अब तक उनका कोई अता-पता ही नहीं। कैसा समय आ गया, यह अंधेर देखना भी बड़ा था। उंगलियों पर उठने-बैठने वाले आज मिन्नतें करवा रहे हैं?” दांत पीसकर रह गया बिशन सिंह। कोई घंटे डेढ़ तक चूहड़ों के आने की खबर दे गया है कोई। बिशन ने समझदारी दिखाते हुए गली में ही एक लड़का दौड़ा दिया है और यह सन्देशा भिजवा दिया है कि चूहड़ों से कहें अब मुंह उठाकर बेहड़े⁴ में मत आ जाना। वहीं से काम शुरू करें लेन-देन का हिसाब बाद में करेंगे और हां सफाई के बाद गली में चूना डालने के लिए भी कह दिया गया है।

अभी यह सब हिदायतें देकर बिशन पीछे मुड़ा ही था कि दौड़-दौड़कर काम करने वाले पाले ने आकर बताया—“राजा जी चीर भी आ गए हैं।” राजा तो आगे ही गुस्ताया था इन पर, सो तेज कदमों से आकर बरस पड़ा—

“यह कौन-सी बेला⁵ है आने का? कोई दीन-धर्म है तुम्हारा कि नहीं।”

टोली में से एक ने लाचारगी जताई—“हम तो जल्दी ही निकले थे पर रास्ते में साइ पड़ गए। बड़े ही धीरे-धीरे पांव उठा रहे थे। ऐसे जैसे मरा हुआ जानवर उठाकर चल रहे हों। अब थोड़ा तो फासला रखना ही पड़ता है।”

इस तरह की लाचारगी सुनकर तो कोर्ट का जज भी निरुत्तर हो जाए फिर बिशन चीज़ ही क्या है और फिर इन दोनों नीच जातियों के बीच के फासले से तो फैसला उसके हक में ही जाता है सो चुपचाप काम समझाकर अपने काम में व्यस्त हो गया।

उन दिनों कालू सातवीं कक्षा में पढ़ता था। मुहल्ले में नहीं जनाव मुहल्ले का ब्याह था सो उत्साह तो उसमें भी था किन्तु सिर्फ गली में आने-जाने वालों की रंगीनियों को देखने भर का। बस इससे ज्यादा कुछ नहीं। कुछ हो भी नहीं सकता था क्योंकि नीच जाति में जन्म लेने का अपराध तो उसने भी किया था। मगर ऐसी-वैसी बात नहीं न्यौता तो उसके घर भी आया था, वो भी बिशन सिंह ने खुद अपने मुंह से दिया था। शब्द कुछ इस तरह टपके थे—“ओ मंगतेया क्या बात है, कोई काम की तरफ भी नज़र डाल लिया करो। अब तुम्हें सहला-सहलाकर काम सुनाने पड़ेंगे क्या। वक्त-बेवक्त सारा सामान ढोना है तूने और अपनी मां को भी कह देना कि दो-चार दिन अन्दर-बाहर झाड़ू लगा आया करे वो भी अपना ही घर है। साथ में ब्याह वाले दिन ले जाना चावलों की मुट्ठी⁶।”

उसके जाने के बाद एक जहर कालू के परिवार ने भी उगला था—“चल कोई बात नहीं ‘फिरदियां किरदियां शांवां’⁷ हमारे नीचे भी छोटी जातियां हैं। आज यह शेर बना है तो क्या कल हमने बन जाना है।”

इस तरह यह जाति का छुप्पन-सिपाई खेल कालू की समझ से बाहर है। ऐसे नाजुक समय में वह सिर्फ यह कामना करता है कि—“काश हम भी ब्राह्मण होते तो पापा का नाम भी मंगता नहीं होता, अगर होता भी तो कोई नाम से नहीं पुकारता। फिर हमें भी न्यौता आता तो सारे कहते—पंडित जी हमारे घर ब्याह है, इतनी तारीख को और आप सपरिवार सादर आमंत्रित

हो।”

यह सब तो सिर्फ सोचने की बातें हैं पर कालू क्या जाने कि जातियां तो ईश्वर की बनाई हुई हैं। बड़ी जाति में तो सिर्फ बड़े लोग ही जन्म ले सकते हैं। हां ऐसे मौकों पर उसे एक वाक्या तो कभी नहीं भूलता। अपनी कक्षा में वह सबसे होशियार है पर इस जाति ने तो यहां भी पीछा नहीं छोड़ा। हिन्दी की कक्षा में मास्टर ने सबसे पूछा था—“अच्छा तो बताओ कि भैंस बड़ी कि अक्ल?”

कालू खुश हुआ क्योंकि उसे उत्तर पता था पर तब तक सबने एक साथ बोल दिया था—“सर भैंस।”

सर गुस्सा गए थे ऐसा उत्तर सुनकर। तब कालू ने कहा था—“सर अक्ल” पर यह क्या अब तो सर और भी ज्यादा गुस्से से देखने लगे थे—“अब तू करेगा अक्ल की बात, अबे चमार की औलाद, अक्ल बड़ी जरूर होवे है पर जाति से बड़ी न होवे क्योंकि जाति के मामले में अक्ल का इस्तेमाल नहीं होता समझाओ?”

कालू चुपचाप खड़ा रहा।

“क्या समझा जाति बड़ी कि अक्ल?”

कालू की समझ में तो कुछ आ नहीं रहा था पर सबने मिलकर एक स्वर में घोषणा की थी—“सर जाति बड़ी है” कोई कुछ भी कहे पर कालू के अपने ही तर्क हैं। उसके छोटे दिमाग में सिर्फ इतना ही आता है कि यह सिर्फ आंखें ही हैं सारी मुसीबत की जड़। इसलिए उसके पास इस मुसीबत का मासूम हल भी है। एक बात वह हमेशा सोचता है कि—“काश भगवान ने आंखें न बनाई होती तो सारे एक जैसे ही होते। अगर किसी को दिखता ही नहीं तो क्या पता चलता कि कौन बड़ी जात है और कौन छोटी। फिर सारे एक बराबर होते।”

कालू तो सारा कसूर आंखों का मान बैठा है वो क्या जाने दिल की बातें कि वह धरती पे चाहे जहां भी रहेगा उसे जाति की बदबू से पहचान ही लिया जाएगा। आज सुबह से ही अपने घर के डंगे पर चढ़ा कालू दूर से ही बिशन सिंह के ब्याह की तैयारियां देख रहा है। सभी मिलकर गांव का ब्याह सम्पन्न कराने में जी-जान से जुटे हैं। बच्चे, बूढ़े, जवान सब लगे हैं काम पर। कोई सामान ढो रहा है तो कोई बर्तन मांज रहा है। कोई बेड़ा बरामदा बुहार रहा है तो कोई गली। डंगे पर चढ़कर देखने में कितनी एकता लग रही है इन सबमें। काश अपने कामों में भी इन अछूत जातियों में इतनी ही एकता होती। बिशन का काम तो होना ही था पूरे गांव का ब्याह जो ठहरा। बारात और सगे-सम्बन्धी तो खा-पीकर निकल भी गए। अब इन अछूतों के लिए कुछ नहीं बचा न मज़दूरी न रोटी-पानी ही।

अब हर कोई थककर चूर हो चुका है। अपनी लाश को ढोते हुए बिना कोई लेन-देन किए रात के अंधेरे में निकलते जा रहे हैं चुपचाप। पर यह निपट अंधेरा भी इनके बीच के फासले को पाट नहीं पा रहा। सभी एक दूसरे से जरूरी दूरी बनाकर चल रहे हैं पर बिशन सिंह के स्पीकर पर गाने अब भी बज रहे हैं मानो कोई भरी-पूरी गाड़ी गहरी खाई में गिर गई हो किन्तु गाड़ी का स्पीकर बजता ही जा रहा हो। स्पीकर तो बजेगा ही बिशन सिंह का भी और खाई में गिरी गाड़ी का भी क्योंकि स्पीकर तो बेखबर है मौत से। एक कालू और एक कालू का डंगा। मानो इस पर चढ़कर पूरे गांव पर सवार हो जाता है। आज तो सुबह से ही चढ़ बैठा है बन्दर की तरह। कितने नज़ारे देखे आज बिशन की बेटी के ब्याह के। पर ऐसे मौकों पर वह एक नजारा देखना कभी नहीं भूलता। शाम का पहला क्षीण अंधेरा जब अलग-अलग छोटी जातियां थककर लगभग घिसट रही होती हैं तब उसका मन मचल जाता है उन्हें देखने के लिए। तब दिन के भरे-पूरे इन्सान उसे एक टांग वाले लंगड़े लगने लगते हैं। इतने सारे लंगड़े उसने इकट्ठे कभी नहीं देखे। सबसे विचित्र बात तो है कि यह लंगड़े गिरने को हो आते हैं मगर कभी भी एक दूसरे का सहारा नहीं बनते। तब उसे सोचकर हैरानी हो आती कि क्या लंगड़ों में भी जातियां होती हैं। फिर डंगे पर ही खड़ा होकर वह तालियां बजा-बजाकर कहता—“देखो देखो लंगड़ा गांव, लंगड़े लोग, लंगड़ा गांव, लंगड़े लोग।”

नोट :

¹साइ- चूहड़े

²पाले- चुहलबाजी

³चीर- बर्तन मांजने का काम करने वाला

⁴बेहड़ा- आंगन

⁵बेला- समय

⁶मुट्ठ- मुट्ठी

⁷फिरदियां-किरदियां—शांवा- आज दुख है तो कल सुख

○

सम्पर्क :- गांव व डाकघर : अगौर
तहसील व जिला : जम्मू- 181122

हस्तान्तरण

बीबीजान के बारे में सोचते-सोचते ही दोपहर ढलकर शाम हो गई। दोनों भाई सुबह से गाल पर हाथ धरे बैठे थे। ज़मीन के कागज़ात का कहीं अता-पता नहीं। कागज़ात की तलाश में भाभी बीबीजान की भी याद आती रही। मतिन मियां तो कागज़ात के बारे में कम बीबीजान के बारे में अधिक सोचता है।

अच्छे मियां पूछता है, “क्यों रे मतिन, तूने अपने घर पर अच्छी तरह देख लिया है न?”

मतिन आसमान की ओर मुंह बाए बैठा था। उसने अच्छे की बातों पर कान नहीं दिया। कभी बीबीजान के बारे में सोचता, कभी अच्छे मियां की करतूतों का ख्याल आता। क्या पता, यह काम उसका ही हो। इन सब मामलों में वह धुन्ना है। एक ही ज़मीन को दस लोगों में दस बार चुपके से बेच डालता है। कागज़ात शायद उसने ही छुपा रखे हों।

मतिन से जवाब न मिलने पर अच्छे मियां के सामने के दो पीले दांत मुंह में जाकर छुप जाते हैं। इसका मतलब है कि यह मतिन का ही करा-धराया है। उसके घर में ही कहीं न कहीं है वह कागज़ात। झोपड़ी की छत पर बांस की खपची में कहीं या फिर किसी मिट्टी के घड़े में। कागज़ात छुपाकर बेवकूफ बना रहा है। यह नहीं करेगा तो और करेगा क्या? सारा दिन जुए के अड्डे में बैठा रहता है। मूर्ख कहीं का।

अच्छे मियां ने हांक लगाई, “अरे ओ मतिन, सुन रहा है कि नहीं?”

मतिन चौंक उठा, “सुन तो रहा हूं सब।”

“तो फिर कागज़ात गए कहां?”

मतिन सोचता है, कितना चालाक है? मुझसे पूछ रहा है कागज़ात के बारे में।

अच्छे मियां और मतिन मियां दोनों एक दूसरे को भांप रहे थे। कब उनके आस-पास अंधेरा पसर गया, इसका भी अहसास नहीं हुआ उन्हें। यों भी आजकल दिन छोटे होते हैं। दोपहर कब आती है और कब चली जाती है, पता भी नहीं चलता।

दोनों भाई दालान में बैठे हुए थे। उनके पीछे बांस की झुरमुट में इसी बीच अंधकार उतर आया और उस अंधकार के साथ हल्की-हल्की ठंड भी। यहीं बांस के जंगल के पास दोनों भाइयों की टूटी झोपड़ी थी। आज दोनों सारा घर उलट-पलटकर कागज़ात ढूंढते रहे। आखिरकार हारकर बाहर आकर बैठ गए थे। पर वह कागज़ात तो उन्हें हर हाल में चाहिए। ज़मीन बेचना ही होगा। बीबीजान भाभी द्वारा बनाए गए वे कागज़ात। वह ज़मीन नहीं बेच पाने पर अगहन-पूस कटना मुकिल हो जाएगा। बीबीजान उन दोनों को जो ज़मीन बेच गई थी, वही ज़मीन अब वे बेचना चाहते थे।

“भाभी की जायदाद कितनी होगी?” मतिन ने पूछा।

अच्छे मियां सोचने लगा। बीबीजान उनके मृत बड़े भाई कालू मंडल की बीबी है। मंडल के मरने के बाद सम्पत्ति इस्लामी कानून के अनुसार उसकी बीबी की हो गई थी। उसी जायदाद को इन दोनों भाइयों को बेचकर वह निकाह करके दूसरे गांव में चली गई थी।

अच्छे ने मन-ही-मन हिसाब लगाते हुए भाई से कहा—“ठीक मालूम नहीं पर बड़े भाई के हिस्से में जो आया था, उतना ही हम दोनों के पास है यानी कि बाप की जायदाद के तीन हिस्से हुए थे। बहन हमारी थी नहीं, मां भी पहले ही मर चुकी थी।”

मतिन के दिमाग में यह हिसाब घुस नहीं पाता। फिर भी वह समझदार की तरह सिर हिलाता है। ज़मीन के बारे में उससे अधिक अच्छे को पता है। क्यों न हो? मतिन के पल्ले भी नहीं पड़ने वाला। उसने अब तक गोलाबाड़ी हाट के हैदरअली के जुए के अड्डे में पहरेदारी ही की है। मोड़ पर पुलिस की गाड़ी देखते ही सीटी बजाने लगता है। पुलिस आ गई। सीटी के बजते ही हैदरअली वहां से भाग खड़ा होता है। मतिन की सीटी बजाने पर उसे एक रुपये मिला है और अगर गलत सीटी बजायी तो पचास पैसे कट जाते हैं उसके। जिस दिन हाट बैठती है, उस दिन ज्यादा सतर्क रहना पड़ता है। बस से भी उतर सकते हैं हवलदार

और कांस्टेबल। सादे कपड़ों में वहां घूम सकता है दरोगा का चपरासी। जुए का अड्डा देखते ही चपरासी की ऊपरी कमाई हो जाती है वरना वह थाने में ले जाने की धमकी देने लगता है। सीटी बजाना ही जिसका पेशा हो, वह मतिन मियां ज़मीन के हिसाब के बारे में क्या जानेगा?

इस साल की धूप में सब सूख गया। पानी का नामोनिशान तक नहीं। धान के बदले सूखे खेत काटकर उन्होंने खल-पुआल बेच दिया पर उससे कितने दिन बसर होता। अब ज़मीन बेचना ही एकमात्र विकल्प रह गया था उनके पास।

अगहन में कोई अपनी ज़मीन बेचता है भला? दोनों भाइयों की इतनी उम्र हो गई फिर भी ऐसा कभी नहीं किया था। दस कठा के लगभग ज़मीन पर दोनों भाइयों का दखल है। वह ज़मीन कैसी है, दोनों ही नहीं जानते। जब तब ज़मीन बेची है उन लोगों ने। अब फिर से बेचने लगे हैं और इसीलिए कागज़ात चाहिए। बीबीजान भाभी से जो जायदाद उन्होंने खरीदी थी, उसे बेच डालेंगे।

अच्छे मियां समझा रहा था और मतिन मियां गर्दन हिलाए जा रहा था। उनके सर पर टंड के पक्षी ने अपने अंधेरे डैनों से परिवेश को ढंक लिया था। टंड के कारण वे अब हिल-डुल भी नहीं रहे थे। अच्छे मियां अपने शरीर के गमछे को अच्छी तरह जकड़ लेता है और मतिन अपने कई ज़माने से फटे खदूदर के चादर में सिमट गया है।

अच्छे ने फुसफुसाकर कहा, “जो ज़मीन बची है वह भाभी वाली है। उसके अलावा अब नहीं बची। सब बिक गया।”

मतिन सोच रहा था कि बड़ा भाई कालू मंडल अब तक मिट्टी के नीचे मिट्टी हो चुका होगा। उसकी बीबी ने दूसरे गांव में निकाह कर लिया और शौहर की जायदाद उन दोनों को बेच गई।

मतिन अपनी चादर के अंदर से आंखें झपकाते हुए भाई को देखे जा रहा था। फिर अचानक पूछ बैठता है, “अच्छे, क्या भाभी की बातें तुम्हें याद आती हैं?”

अच्छे हैरानी से उसे देखने लगा। क्यों, भाभी की बातें क्यों याद आएंगी भला। उसे तो सिर्फ कागज़ात याद आ रहे हैं। ज़मीन के अलावा उसे कुछ याद नहीं आता। इस मामले में वह बिल्कुल स्पष्ट है। कम उम्र में मदरसे जाता रहा और दो साल के लिए मौलवी साहब का कारकून भी बना था। जूते और बैग उठाकर चलता। अच्छे ने सोचा, मतिन चालाकी कर रहा है। कागज़ात के अलावा दूसरी बातें कैसे सोच सकता है वह? कागज़ात और औरत क्या दोनों एक हैं?

यह ख्याल आते ही अच्छे मियां की आंखें स्थिर हो गईं। दोनों आंखों से जैसे आग बरसने लगी। मुंह के अंदर जो

बचे-खुचे दांत हैं, वे ऊपर-नीचे आपस में रगड़ खा गए। हाथ दोनों फड़फड़ाने लगे। अच्छे ने सोचा कि मतिन बातों को घुमा रहा है यानी कि कागज़ात उसी के पास हैं।

“देख मतिन, मुझे बेवकूफ बनाने की कोशिश न कर।” वह फुंफकार उठा।

सुनते ही मतिन उछलकर खड़ा हो गया, जैसे सारे शरीर में आग लग गई हो। “इसमें बेवकूफ बनाने वाली क्या बात है?” मतिन मियां कसमसा उठा।

“झूठा आरोप मत लगाना, कहे देता हूं। निर्णय के लिए मैं हैदरअली को ले आऊंगा।”

अच्छे भी चीख उठा, “जा ले आ, अपने उस जुआरियों के दल को। कागज़ात छुपा रखे हैं और कह रहा है झूठा आरोप। ऐं।”

अंधेरे में दोनों उठ खड़े हुए। मतिन छलांग मारकर अच्छे की ओर दौड़ा। बोलने में कोई भी कम नहीं था। एक दूसरे को चोर कहे जा रहे थे। दोनों एक जैसे। एक जैसे हाथ, पांव, आंखें और सिर। दोनों जुड़वां हैं। बस इस तरह पहचाना जा सकता है कि मतिन के दांत नहीं हैं और अच्छे की देह पर गमछा है। मतिन की देह पर न जाने कब की फटी चादर। अच्छे की देह भी थोड़ी-सी टेढ़ी है।

दोनों घरों से दोनों की बीवियां दौड़ी आईं। सुबह से न जाने कितनी बार दोनों एक दूसरे को आंखें दिखाते आ रहे थे।

कब की बात होगी। सालों का हिसाब लगाना दोनों के लिए संभव नहीं था। अलबत्ता भीषण बाढ़ के पिछले साल की बात है। पांच साल तो हो ही गए जब उनका बड़ा भाई पेट के अल्सर से मरा था। अस्पताल तक भी नहीं पहुंच पाया, रास्ते में ही उसने दम तोड़ दिया।

कालू मियां कद में छोटे थे पर बड़े भाई जो ठहरे। दोनों जुड़वा भाइयों का ध्यान रखते थे। पेट के दर्द से कराहते हुए जब कालू की मौत हुई, उस समय बीबीजान की गोद में एक साल की बच्ची थी और दोनों भाइयों की बीवियों के भी पांव भारी थे।

कालू मंडल के इंतकाल के बाद मतिन एक दिन अच्छे मियां से कहने लगा, “भाभी से निकाह कर लेता पर एक-दो साल गुज़र जाते तो। इस वक्त नहीं कर सकता।”

दरअसल पहली संतान के आने की खुशी में वह पगलाया हुआ था। क्या करे निश्चय नहीं कर पा रहा था। कई दिनों बाद वह बाप बनने जा रहा है।

कालू के सुपुर्दे-खाक होने के बाद बीबीजान घर में उदास बैठी रहती। कितनी सुन्दर थी वह? काबिले-तारीफ। जैसे किसी बड़े घर की बहू हो। काले ने भी क्या किस्मत पाई थी। जितने दिन जीया उसका साथ मजे से रहा। कालू मियां बीबीजान के

दूसरे शौहर थे। पहले शौहर से उनकी बन नहीं पाई। कालू का उस घर में आना-जाना था। वहां बीबीजान शांत, अकेली बैठी रहती, पर असगर मंडल की बीबी के मन में कौन उतर सकता था?

असगर मंडल ही बीबीजान का पहला शौहर था। वह कसाई था। लतीफ मंडल के कसाईखाने का एक नंबर का उस्ताद। मुंह अंधेरे गाय काटना शुरू करता। सुबह का प्रकाश फैलने के पहले ही तीन जिबह कर डालता और तब कसाईखाने के चारों ओर चील-कौवे उतर आते। असगर मंडल भी हमेशा चील की तरह बना रहता। दोपहर के आस-पास बीबीजान का वह शौहर रक्तसनी लुंगी के साथ घर लौटता। ऐसे शख्स के साथ उसका मन कैसे लगता भला?

अभी तक असगर मंडल की कोई संतान बीबीजान के गर्भ में नहीं आई थी। बीबीजान को यह भी डर था कि कसाई निर्वंश होते हैं। सुना है कि कसाई के अंग-अंग में भविष्य के रोग दिखाई देते हैं। देह की चमड़ी गल-गलकर गिरती है। इसी डर से वह असगर का त्याग कर कालू मंडल के घर आ गई।

छः महीने बाद वही असगर अली सचमुच सुपुर्दे-खाक हुआ था, तीन दिन तक ज्वर में तपने के बाद। असगर के एक साथी मोतालब मियां ने ही उन तक यह खबर पहुंचाई थी।

मोतालब ने कालू को आकर बताया कि अगर छह महीने और बीबीजान इन्तजार कर लेती तो असगर की जायदाद में उसका भी हिस्सा होता। अब उसी जायदाद को दूर-पास के रिश्तेदार लूट रहे हैं।

कालू ने धीरे-धीरे सिर हिलाया, “ऊहूं, कसाई की जायदाद किस काम की। बीबीजान अगर इतने दिनों तक उसके पास रहती तो वह भी जीवित नहीं रह पाती।

कालू मंडल के कब्र में जाने के बाद बीबीजान गुमसुम हो गई। आंसू जैसे आंखों में सूख गए हों। बेवा औरत के पांव के शब्द तक सुनाई नहीं देते। उदास आंखों से वह कालू के कब्र की ओर अपलक देखती रहती। फिर धीरे-धीरे वह सामान्य होती चली गई। लोगों का आना-जाना शुरू हुआ।

अच्छे मियां ने ही सलाह दी थी, “भाभी, तुम फिर से निकाह कर लो और

“और क्या?” बीबीजान की आंखें उसकी आंखों को घूरने लगीं।

“बड़े भाई की जो जायदाद तुम्हारे नाम हुई है, उसे हम दोनों भाइयों के लिए छोड़ दो। इसके पैसे देंगे हम तुम्हें।”

पर मतिन को इस प्रस्ताव पर कष्ट हुआ था। उसकी इच्छा थी कि बीबीजान उसके घर आ जाए पर सीधे तौर पर कह नहीं पा रहा था। उसकी खुद की बीबी पेट से थी। निकाह करना

उचित होगा क्या? बड़े भाई की बड़ी प्यारी बीबी थी वह। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि उस खूबसूरत औरत के साथ वह घर बसाएगा और एक दिन उसे ही छोड़कर मिट्टी में समाना होगा। बीबीजान को यहीं रखा जाए तो मिट्टी में समाये कालू मंडल को भी सुकून मिलेगा।

पर अच्छे के दिमाग में तब भविष्य घूम रहा था। कम पैसों में अगर भाभी की ज़मीन मिल जाए तो उनकी जायदाद बढ़ जाएगी। उसे सफलता भी हासिल हुई। बीबीजान ने बहुत सस्ते में उन्हें ज़मीन बेच दी और दस्तावेज भी बनवा लिए। दोनों भाइयों ने मिलकर आधी-आधी ज़मीन खरीद ली। उन्हीं रुपयों के साथ बीबीजान ने जीवनपुर में अपना घर बसाया। वह असगर अली के साथी मोतालब मंडल के साथ वहां चली गई।

मतिन दालान में बैठा देख रहा था कि फागुन के महीने में बीबीजान अपनी बेटी को गोद में उठाए मोतालब के साथ चली जा रही है। तब आम के पेड़ पर बौर थे और नीम थी फूलों भरी। सुबह की सारी सुगंध उसके पीछे-पीछे चली जा रही है। पैदल चलते-चलते बीबीजान ने एक बार पीछे मुड़कर देखा था।

मोतालब भी उसे पसंद करता था। इसी आशा में वह असगर अली के घर जाया करता था, पर सफल नहीं हो पाया था। बीबीजान कालू मंडल की किस्मत में थी। कालू के मरने के बाद उसकी आशा पूर्ण हुई।

रात में अच्छे मियां सोच रहा था, “क्या भाभी कागज़ात अपने साथ ले गई है?”

मतिन भी ऐसा ही कुछ सोच रहा था।

अच्छे ने पुकारा, “अरे ओ मतिन, सुनना तो जरा।”

“मैं भी सोच रहा था तुझे आवाज दूं।”

दोनों भाई सोच में डूब गए। क्या बीबीजान ने कागज़ात उन्हें दिए थे? नहीं, रजिस्ट्री के बाद वह तो भाभी के ही पास था, मांग नहीं पाए थे।

हम मांग नहीं सके पर बीबीजान जब मोतालब के साथ जा रही थी, तब तो उसे कागज़ात देकर जाना चाहिए था। लोग ज़मीन खरीदते हैं, कागज नहीं। कागज़ात की जरूरत न पड़े तो उसकी तलाश भी नहीं होती, खासकर जिनका जीवन ही ज़मीन से जुड़ा हो।

दोनों भाई चुप थे। मतिन का दिल धड़क उठा। तो क्या कागज़ात बीबीजान ही ले गई है? क्या उसने सोच रखा था कि एक दिन वह कागज़ात लाने के लिए उसके पास जाएगा? मतिन के दिल में एक टीस-सी उठी। आंखों के सामने परी जैसी वह गोरी नाच उठी। बीबीजान का आकर्षक रूप सामने आ गया। वह तो जानती थी कि मतिन उससे निकाह करना चाहता है, पर हो न सका। यों ही हो न पाया। अन्त में मोतालब आकर

उसे ले गया। दूसरा कोई उपाय भी नहीं था। इस उम्र में औरत कितने दिन तक अकेली रह सकती है? उस पर मोतालब की तो उस पर आंख पहले से थी। असगर तलाक नहीं देता तो छः महीने के बाद उसके मरने पर बीबीजान मोतालब के घर ही जाती। असगर के मरने के पहले ही कालू मंडल पहुंच गया और कालू मंडल के मिट्टी में समाने के बाद मोतालब आया।

मतिन को याद आया कि आसमानी कपड़े में मोतालब मंडल चला जा रहा है। दीर्घकाय शैतान जैसी देह। चेहरे-आंखों में धूर्तता, जैसे वह भी एक कसाई हो। उसके पीछे बीबीजान फूल जैसी। गोद में एक साल का बच्चा जिसका बाप कालू मंडल है। हाथ में झूलती एक पोटली। क्या उसी पोटली में कागज़ात थे जिसे पाने के लिए मतिन उसके पास जाकर हाजिर होगा?

“भाभी को गए कितने साल हो गए?” मतिन पूछता है।

“लगभग पांच साल तो हो ही गए, समझो। मेरे और तुम्हारे बेटे की जो उम्र है। उस समय तो वे नौ महीने के लिए पेट में थे।”

सचमुच, अच्छे का दिमाग बिल्कुल साफ है। सही-सही हिसाब लगाता है। देखते-देखते कई दिन गुजर गए। मतिन को लगता है कि हैदरअली के जुए के अड्डे पर पहरा देकर उसने बहुत बड़ी भूल की है। नहीं तो कागज़ात की तलाश में बीबीजान के पास कब का पहुंच चुका होता।

मतिन बुड़बुड़ाया, “ज़मीन तो बेचनी ही पड़ेगी।”

उदास अच्छे कहता है, “बेचेंगे नहीं तो खाएंगे क्या?”

“फिर तो भाभी के पास जाना ही पड़ेगा।”

“सो तो है।”

जीवनपुर कहाँ है? उस विद्याधरी नदी के उस पार दक्षिण में। विद्याधरी के इस पार भी हड़वा नाम की जगह है और उस पार भी, मानो जुड़वा हों।

असगर अली हड़वा में ही रहता था। वहां से लगभग आठ मील नीचे की ओर जीवनपुर है। नदी से होकर जाया जा सकता है। नदी के किनारे-किनारे पैदल चल कर भी।

अलस्सुबह जुड़वां भाई निकले। एक जैसा चेहरा, एक जैसी आंखें। सिर्फ मतिन की लुंगी के ऊपर खाकी शर्ट और देह पर वही फटी चादर। अच्छे मुचड़ा हुआ एक गुलाबी रंग का कुर्ता पहने हुए जिसका रंग फीका पड़ चुका था। कंधे पर एक धारीदार गमछा। दोनों भाई कागज़ात लाने जा रहे थे। नहीं लाएंगे तो इस साल के सूखे में भूखे मर जाएंगे।

ऐसा लग रहा था जैसे सुबह की धुंध ने सारी पृथ्वी घेर रखी हो। मतिन आगे बढ़ता है तो अच्छे को उसकी धुंध में गुम हो जाने जैसा लगता है और अच्छे तो हमेशा से ही मतिन के मन

में गुम है। इस धुंध में मतिन बीबीजान का मुखमंडल तलाश करने की कोशिश कर रहा था। वे आंखें, वह चेहरा कहीं गुम न हो जाए।

पसरे धुंध में वे भीग जाते हैं। सारी देह में जैसी नमी समा गई हो। मतिन देख रहा था कि धुंध के नीलेपन में धूसर रंग मिल जाने के कारण वह अधिक प्रगाढ़ हो गया है। वे देवालय तक आ पहुंचे। यहां से पक्की सड़क सीधी विद्याधरी नदी के पास गोरचंद की मजार में जाकर खत्म होती है।

राह में मतिन एक बार पूछता है, “मोतालब मियां का घर जानते हो न?”

“वहां जाकर पूछने पर पता चल ही जाएगा।”

बसों बंद थीं। दोनों भाई आटोरिक्षा में जा बैठे। धुंध में सामने साफ नज़र आने के बावजूद दो हाथ दूर धूसर नीला पर्दा था। उन जुड़वा भाइयों को ऐसा लग रहा था कि वे बार-बार पसरे नीलेपन से धूसर रंग में प्रवेश करते जा रहे हैं। तीन पहियों वाला आटोरिक्षा तेज भागता चला जा रहा था।

मतिन सोच रहा था कि कब जीवनपुर जा पहुंचे। बीबीजान उसे देखकर हैरान हो जाएगी। उधर अच्छे मियां इस चिन्ता में डूबे हुए था कि कब कागज़ात हाथ आते हैं।

दोनों शीत के आक्रमण से कांप रहे थे। सिकुड़े पड़े थे। कांपते-कांपते मन के अंदर बीबीजान और कागज़ात का खेल खेलते-खेलते विद्याधरी के समीप आ पहुंचे। यहां धुंध साफ हो चुकी थी। नदी और धरती धूप से चमक रही थी। अगहन की पहली धूप जैसे पिघलता सोना। सोने के पानी का तालाब जिसमें पक्षी तैर रहे थे।

यहीं कुछ देर हुई। नाव नहीं थी। इंतजार में काफी वक्त बीत गया और तभी नदी में ज्वार भी आ गया। ज्वार में उतराई की ओर जाना कठिन था। मतिन पैदल जाना चाहता था, नदी के बांध के किनारे-किनारे ताकि जीवनपुर का घाट पार किया जा सके। पर ऐसा हो न सका।

नाव में नदी के स्रोत के विपरीत जीवनपुर पहुंचते हुए सूर्य आकाश से उतरने लगा। मतिन का हृदय कांप रहा था। वह और अधिक समय बर्बाद नहीं करना चाहता था। जीवन का काफी सारा हिस्सा यों ही बर्बाद हुआ है। जीवनपुर में कदम रखने के बाद अब देर नहीं। क्या उसे पता था कि बीबीजान कागज़ात के साथ जीवनपुर आकर उसे चुपचाप इतने दिनों से पुकार रही है।

नाव से उतरकर अच्छे मियां ने पूछा, “मतिन भाई, यहां खाने को कुछ मिलेगा क्या?”

जैसे मतिन को सब पता हो और वह अपने घर लौट रहा हो। उसने हंसकर कहा, “कैसे बता सकता हूं? वह क्या मेरा

घर है?”

दोनों एक साथ हंस पड़े। भूख को दबाए रखने के वे अभ्यस्त हैं। सुबह कल के बासी चावल खाकर चले थे। शाम तक के लिए काफी है।

दो कदम आगे बढ़ते ही उन्होंने एक किसान से पूछा, “मोतालब मियां का घर जानते हो भाई?”

वह अकेला शख्स कटे हुए धान का बोझा बना रहा था। इस शांत प्रकृति में चारों ओर दूर-दूर तक कोई नहीं था। वह इन्हें देखकर चौंक गया। कहीं वह गलत तो नहीं देख रहा? उसके सामने एक ही आदमी दो-दो नज़र आ रहे थे।

धीरे-धीरे उसका आश्चर्य दूर हुआ। सचमुच दो जन खड़े हैं। सिर्फ उनके कपड़ों में अंतर है। वह उन्हें कुरेदते हुए पूछता है, “किस मोतालब के बारे में पूछ रहे हो?”

वे दोनों चिंतित हो उठे। क्या कहे उससे? मोतालब के बाप का नाम तो वे जानते नहीं। फिर क्या कहें?

अच्छे मियां ने कुछ सोचकर कहा, “एक कसाई था असगर अली। उसी का साथी था।

मतिन ने आगे जोड़ा, “उसकी बीबी का नाम बीबीजान है। वही जो पहले असगर अली की बीबी थी। फिर उसके बाद हमारे बड़े भाई कालू की।”

उससे अधिक परिचय देने की जरूरत नहीं पड़ी। वह किसान मतिन को बीच में रोक देता है, “समझा। यहां से सीधे जाओ। एक पीपल का पेड़ मिलेगा। वहां से बाएं मुड़ जाना। सामने ही मोतालब का घर है।”

दोनों भाइयों के कदम तेज हो उठे। नदी को पीछे छोड़ते हुए दोनों भाई धूप से पेड़ों की छांव में आ गए। पीपल तले बहुत अंधेरा था। मानो पेड़ के जन्म से लेकर यहां की धरती पर धूप न पड़ी हो। इस छाया में खड़े होने पर उन्हें अचानक ठंड का अनुभव हुआ। शरीर के रोएं खड़े हो गए। मतिन का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा।

दोनों की निगाह मिट्टी के घर पर पड़ी। बेतरतीब से लगे मसूर और सरसों हरी-पीली एक-सी हो गई थी। दालान के एक किनारे धान का ढेर, वह भी बेतरतीब।

अच्छे मियां ने सोचा, ज़मीन होने के बावजूद इस आदमी को इसकी कद्र नहीं। अगर उसकी ऐसी ज़मीन होती, जमीन बचाए रखता तो सरसों के फूलों की बहार बिछा देता। ज़मीन बेच बेचकर अब वह खेतीबारी भी भूल गया है।

अच्छे मियां पुकार उठा, “बीबीजान भाभी, बीबीजान।”

मतिन सांस रोके खड़ा था।

अच्छे ने फिर से आवाज दी, “मोतालब भाई।”

तभी एक जीर्ण-शीर्ण व्यक्ति सिर पर धान उठाए वहां

पहुंचा। उनके आने के पहले वह घर के पिछवाड़े की ज़मीन में था। वही मोतालब मंडल था।

खेत से आते समय ही उसने दोनों भाइयों को यहां देख लिया था। उसने दालान में धान का बोझा फेंका और गमछे से देह झाड़ते हुए उनके करीब आया।

“वाह, तुम दोनों तो बिल्कुल एक से हो।” मोतालब मुंह बाए उन्हें देखे जा रहा था।

अच्छे और मतिन उस दुबले-पतले शख्स को देखे जा रहे थे जिसकी आंखें धंसी हुई थीं। बाल-दाढ़ी सब सफेद हो गए थे उसके। एक टेढ़े बांस की तरह दिख रहा था वह। जब उनकी ओर बढ़ रहा था तो ऐसा लग रहा कि अभी गिर पड़ेगा। हड्डियों का ढांचा मात्र।

“कौन हो भाई,” मोतालब उन्हें पहचान नहीं पाया था।

दोनों जुड़वा अवाक। क्या यह वही मोतालब है? बलिष्ठ देह, प्रायः लम्बे-चौड़े शैतान की तरह दिखनेवाला उस आसमानी कुर्ते में। उस व्यक्ति से वह बिल्कुल मेल नहीं खा रहा था। जैसे दोनों जुड़वां एक जैसे थे, वह व्यक्ति उस मोतालब जैसा बिल्कुल नहीं था।

“पहचान नहीं पा रहे हो? भाभी के पहले शौहर कालू मियां के भाई हैं हम।”

अच्छे मियां की बात सुनकर मोतालब अचानक उत्तेजित हो उठा। वह दालान में बैठ गया। अपनी देह को गमछे से ढंकने की कोशिश करने लगा। चेहरे पर निस्पृह भाव। उसने पूछा, “आखिर बात क्या है? तुमलोग यहां अचानक?”

“भाभी से काम था। उसे बुलाइए तो जरा। हमारे कागज़ात हैं उनके पास।”

मोतालब अच्छे मियां की बात पर कभी ध्यान देता तो कभी नहीं। तब तक मतिन आगे बढ़कर पूछता है, “मोतालब भाई, आपकी यह हालत हुई कैसे? माने सेहत इतनी कैसे गिर गई?”

मोतालब ने बहुत देर बाद उसांस छोड़ी, “बैशाख के महीने से मलेरिया बुखार ने जकड़ रखा है। साल होने को आया। बुखार कभी आता है, कभी चला जाता है। जैसे अभी कंपकंपाहट हो रही है। इस रोग ने मुझे खा लिया है।”

मतिन ने अपनी चादर उस पर डाल दी और उसे कसकर पकड़ा। वह थरथर कांप रहा था।

अच्छे ने कहा, “मियां घर के अंदर चलो। खेत में लोग तो होंगे?”

“नहीं तो हम देखते हैं, कौन-सा खेत है बताओ।” मतिन ने कहा।

मोतालब ने धीरे-धीरे कहा, “इस झोपड़ी के ठीक पीछे।”

तब मतिन ने भारी हृदय से फुसफुसाते हुए कहा, “जरा

भाभी को बुला दीजिए, बहुत प्यास लगी है। पानी पिऊंगा।”

मोतालब सिर झुकाए ज्वर से कांप रहा था। उसी हाल में संभलते-संभलते कहा, “बीबीजान की तलाश में आए हो और भी कुछ लोग आए थे, लेकिन वह यहां नहीं है।”

“नहीं है मतलब।” मतिन जैसे आर्तनाद कर उठा।

“तलाक हो चुका है हमारा। उसने फिर से निकाह कर लिया है।”

मतिन वहीं बैठ गया। उसके बगल में मोतालब कराहता रहा। अच्छे मियां उसके खेत की ओर दौड़ पड़ा।

कुछ देर बाद मतिन ने पुनः हौले से पूछा, “कब हुआ तलाक?”

“साल होने को आया। उसी बैशाख में जब रोग ने आकर मुझे धर दबोचा था।”

“बीबीजान को तलाक दे दिया मोतालब भाई आपने?” मतिन के स्वर में घोर हताशा थी।

मोतालब बहुत देर तक चुप रहा। फिर कराहते हुए कहने लगा, “क्या कहते हो, मैंने तलाक दिया उसे? ऐसी खूबसूरत औरत को घर में छुपाकर रखना चाहिए। मेले में गई थी वह। वहीं जर्मीदार मजरूल हक ने उसे देखा। कालू मियां के एक और मेरे दो बच्चों को साथ लेकर उसके पास पटकलघाटा चली गई।”

वे दोनों रात को वहीं ठहर गए। मोतालब के घर पर अभी तक दूसरी बीबी नहीं आई थी। घर में सब कुछ बिखरा पड़ा हुआ था, सब अस्त-व्यस्त।

शाम को अच्छे मियां ने अपने आने का कारण बताया। उसकी बात सुनकर ज्वर-पीड़ित मोतालब चौंक उठा। उसने भी दो बीघा जमीन बीबीजान के नाम कर दी थी। वह दस्तावेज भी कहां है? तलाकशुदा बीबी को अब वह ज़मीन क्यों देगा भला?

तलाश और तलाश। कागज़ात कहीं नहीं मिले। ज्वर से कांपते-कराहते मोतालब ने बक्सा-पिटारी सब उलट-पुलट कर रख दिया। कागज़ात कहीं भी नहीं मिला।

तब मतिन बोल पड़ा, “बीबीजान अपने साथ ले गई है। कागज़ात वापस लाने के लिए तुम उसके पास जाओगे, यही सोच रखा था उसने।”

मोतालब मुंह ढके बैठा रहा। किसी तरह कह पाया, “शायद। इस बुखार के कारण मेरा होश ठिकाने नहीं था।”

रात को दोनों जुड़वा भाइयों ने फैसला किया कि वे पटकलघाटा जाएंगे। तब ज्वर-पीड़ित मोतालब भी कह उठा, “मुझे भी अपने साथ लेकर जाना होगा तुम दोनों को।”

“पर तुम्हें तो बुखार है।” अच्छे ने कहा।

“उस वक्त रहेगा नहीं।”

सारी रात मतिन की आंखों से नींद उड़ी रही। वह सोच रहा था कि बीते चैत या बैशाख में आ पाता तो बीबीजान को अपने साथ ले जाता। अब मजरूल हक के यहां जाना पड़ेगा। कुछ दिन इंतज़ार के और बढ़ गए। देर रात को पसीने के साथ ज्वर ने मोतालब का पिंड छोड़ा। सुबह देह में शीतलता थी। वह घर में ताला लगाकर उन जुड़वा भाइयों के साथ चल पड़ा। दुर्बल शरीर हिलता-डुलता चला जा रहा था। रास्ते में मोतालब ने कहा, “बीबीजान का किसी घर में मन नहीं टिकता।”

अच्छे मियां के दिमाग में यही चल रहा था कि कब कागज़ात हाथ आएँ और वह ज़मीन बेच डाले। ज़मीन उनके भाग्य में कभी रही नहीं। आज खरीदने पर कल बेचना पड़ता है। बड़े लोग खरीद लेते हैं।

मतिन ने पूछा, “पटकलघाटा तक पहुंचते-पहुंचते क्या सूरज डूब जाएगा?”

मोतालब ने हामी भरी, “बहुत दूर है। जब तक पहुंचेंगे, शाम ढल जाएगी।”

पैदल चलते-चलते अचानक मोतालब रुक जाता है। फिर पूछने लगता है, “अच्छा, तुम दोनों में कौन-सा कौन है?”

“मतलब?” मतिन भी रुक जाता है।

“मतलब कि अच्छे मियां कौन है?”

अच्छे आगे आकर अपनी छाती पर हाथ रखते हुए बताता है, “मैं हूँ अच्छे।”

“तुम्हारे बारे में बीबीजान बहुत बातें किया करती थी।” मोतालब ने कहा।

मतिन का दिल टूटकर रह गया। एक उदासी उसे घेर लेती है। यह क्या कह रहा है मोतालब मियां? सचमुच, क्या बीबीजान यह जानती थी कि कौन अच्छे और कौन मतिन है? उसे ही कई बार गलती से उसने अच्छे कहकर पुकारा था। वह भारी कदमों से आगे बढ़ता चला जा रहा था। चलने की हिम्मत नहीं हो रही थी। घोर उदासी के बादल उसके चेहरे पर उतर आए थे।

तीनों चले जा रहे थे। दोनों तरफ दोनों जुड़वा भाई और बीच में दुबला-पतला मोतालब। बीबीजान का घर कितनी दूर रह गया होगा भला? उसी के पास कई लोगों का भोजन, वस्त्र और दिवास्वप्न गिरवी पड़े हुए हैं। किसान की जमीन, किसान का हृदय। उसी तलाश में दो से तीन जने, तीन से चार गांव-बस्ती लांघते चले जा रहे हैं।

○

संपर्क : म.नं. 1859, सेक्टर 7-सी, चंडीगढ़-160019
मोबाइल-09417573357

निक्की फिन्नी का जन्म, कोनवे, दक्षिणी कैरोलाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका में 26 अगस्त, 1957 को हुआ। निक्की फिन्नी की शिक्षा, तल्लादेगा कॉलेज और अटलांटा विश्वविद्यालय से हुई। लेखन के लिए उन्हें, 'पेन अमेरिकन ओपन बुक अवार्ड' और नेशनल बुक अवार्ड मिला। एनएए सीपी इमेज पुरस्कार कविता के क्षेत्र में शानदार काम के लिए मिला। फिन्नी की कविताओं में कैटरीना तूफान की तबाही से लेकर रोजा पार्क्स और कोडोलीजा राइस के कैरियर ग्राफ जैसे विविध विषय भी शामिल होते हैं। वर्तमान में निक्की फिन्नी, अमेरिका के केंटकी विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की प्रोफेसर हैं और लेक्सिंगटन में रहती हैं।

1. विरासत

सूर्यास्त
दिन लगभग निगल जा चुका है

मालगाड़ी ने घबरा कर आवाज धीमी कर ली है
उसकी भीतरी आंखें,
भीतर के स्थूल और कद्रू-त्वचा को धक्का दे रही हैं

मैं पिछले-आंगन के मृत प्रकाश में कदम रखती हूँ
मेरे दोनों हाथ,
तेजाबी आंधी की अंधी पहुंच और
गर्मियों की सूजी हुई हवा में चोरी हो गए

सीप की कौड़ी और छाती पर भूत फल-फूल रहे हैं
एक अटलांटान चैरोकी बैंगनी
दो छोटे रेडिएटर चार्लीज लेना होर्न बन
मेरे दाहिने हाथ की उंगलियों में लालची हो गए हैं

'लेकिन मैं सच में आपको प्रेम करती हूँ'
यह वाक्य मेरे कानों में
अच्छी तरह से एक दो से चार के नीचे घुसी हुई पीली जैकेट
के एक घोंसले की तरह प्रवेश करती है

लेकिन मुझे सच में नहीं लगता कि मैं (कभी छोड़)
कभी जमीन पर टिकने से पहले
आघात पहुंचा सकती हूँ

मैं शक्तिशाली मार की परिचित चर्चा से दूर रहती हूँ
मेरे योग्य हाथ, वृत्त-चाप और निशानी बांधते हैं

मेरी कोहनी एक ऊंची, सख्त पालने में झूलती
और अग्नि को खिंचती है

दिन के अंत में पसीने से तर हवा
एक प्याले में करती है हलचल
आने वाली परछाईयां
मेरी जरूरत से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं

एक के बाद एक कर, प्रत्येक ब्लाइंड विली
अपनी बारी में वापस आकर
पॉलॉकिंग (एक प्रकार की मछली)

बाड़, दिल में देवदार के लाल सुनहरे पत्ते और भूरी-आंखों वाले
गेरुए पत्ते
ले लेता है

इस तरह से जीवन में सभी चीजों के लिए व्यवसाय है
इस प्रकार से
आप कुछ सही से कुछ दूर फेंक सकते हो

○

मिलन

पैरों की धूल चढ़कर बैठ जाती है माथे पर
 उसे उतारता नहीं हूं
 तुमसे प्यार है तो तुम्हारी धूल भी पसंद है मुझे
 यानी प्यार में सुखी होने के लिए
 वह सब करता हूं जो पसंद भी नहीं
 पुरुष का अहंकार नहीं
 यह प्यार है
 जिसमें बन जाना होता है छोटा
 झुक जाना होता है जमीन तक
 चलना होता है लंगड़ाकर
 गिरकर, और गिरना होता है
 यह प्यार ही है
 झुकता हूं, चलता हूं, दौड़ता, हांफता हूं
 फिर गिर पड़ता हूं
 गिरकर होता हूं सुखी
 इसी क्रम में चढ़ती है धूल, थकती हैं सांसें
 कोई पड़ाव नहीं आता
 प्यार के लिए
 जाने कितने बरस, जाने कितनी सदियां
 बीत चुकी हैं
 दौड़ रहा हूं, भाग रहा हूं
 मिलन की चाह है
 अभी तक आधा-अधूरा है मिलन

प्रतिमान

कविता की कचहरी में
 हमारे लिखने से कई लोग
 संदेह से भर गए हैं कि तुम लिखने कैसे लगे हो
 कमजोर है तुम्हारी भाषा
 मटमैले हैं तुम्हारे शब्द
 अभी तो अक्षर ज्ञान लिया है तुमने
 कैसे लिख सकते हो तुम
 सुनहरी सुबह, दशरथ मांझी के हौसले-सा होता है
 मौसम,
 मेरी कौम जैसा होता है

और मिजाज
 फूलनदेवी सा
 कैसे लिख सकते हो तुम कि तराई की औरतें
 अपनी देह बेचकर जहाज लाती हैं
 भूख इलाज है धनपशुओं के लिए
 कैसे लिख सकते हो तुम
 कैसे लिख सकते हो
 सताए हुए लोग क्रांति का बीज बोते हैं
 भूख से बिलखकर
 कविता नहीं लिखी ग्वाले ने
 जब बाजार में सजी कविता
 वह नहीं था दूधिये का पैरोकार
 कैसे लिख सकते हो तुम
 परिंदे की उड़ान से बनी
 लड़ते आदमी की देहें
 बहुत घायल हैं
 कैसे लिख सकते हो तुम
 कविता हमारी पहचान है
 इस इलाके में तुम कैसे?
 अनगढ़ है भाषा
 टूटे हुए हैं शब्द
 कांप रही है इनकी भंगिमा

माई-बाप!
 लिखने दीजिए हमें
 अभी तो लिखनी है हमें अगली सदी की कविता
 हम तैयार कर रहे हैं
 संगीत की सुन्दरतम धुन
 कला के मोहक रंग
 कविता में चाहतों का इच्छित इतिहास
 आदमी के आदमखोर होते जाने की पीड़ा
 नगर से गांवों की तरफ
 लगातर बढ़ रही धुंध
 हमें लिखने दीजिए पोथी
 हमारी यही अनगढ़ता प्रतिमान बनेगी एक दिन

हमारी कविता में

साथ

पेड़ चाहता है ऊंचा उठे
धरती चाहती है फैले
सूरज चाहता है किसी भी तारे से
अधिक चमकदार और गहरा दिखाई दे उसका चेहरा
हवा चाहती है निर्झर
नदी चाहती है समुद्र से सुन्दर हो उसकी काया
सड़क चाहती है सभ्यताएं उसकी हमसफर हों
मैं मनुष्य होकर
कुछ नहीं चाहता था
सिवाय इसके कि दुनिया बच्चेदार और खूबसूरत बनी रहे
हवा चले तो गीत बजें
हाथ सलामत रहें तो रोटी का जुगाड़ रहे
सच बोलें तो दोस्त खड़े हों साथ
तरक्की हो
कसरत करें तो मोहतरमा की सेहत बढ़े

मैंने वह सब किया है जो मनुष्य होने के नाते करते हैं लोग
पर आज मुआफी मांग रहा हूँ दोस्त
मैंने अगली सदी के लिए कुछ नहीं किया
नदियों को पंगु किया
पेड़ों के तोड़ दिए पांव
खोद डाला चट्टानों का दिल
और तो और
इंस तक बेचा है मेरी सदी के लोगों ने

प्रकृति के सहारे जीने वाले मेरे दोस्त
न्याय के कटघरे में खड़े अपने इस दोस्त को बताओ
अगली सदी का मनुष्य किसके पापों की सजा पाएगा

बंत सिंह

बेटी ने आबरू खो दी
छाती पर कोयला सुलगाया 'शरीफों' ने
जालिम बुरा होता है
जुल्म सहने वाला और बुरा होता है

बेटी ने आबरू खो दी

यह सिर्फ अखबार की पंक्तियां नहीं हैं
साक्षात् मौत है
सभ्यता के मुहाने पर खड़े मनुष्य की
धरती की आखिरी चीख
मरुस्थल की आखिरी प्यास
आंखों की आखिरी नमी
सब सूख चुका है जैसे

बलकृत हुई थी पांच नदियों की जमीन
उस लड़की के साथ
सतलज, व्यास का रेतीला पथ सूख गया था
रावी एक जगह
झेलम एक जगह
चिनाव दूसरी जगह बार-बार हो रही थी हवस का शिकार

पंच प्यारे चीखते थे
मेरा पंजाब लौटा दो
बख्श दो हमारी बेटियों को
उनके आंचल में शूल नहीं फूल ही फूल हैं

2.

नदियां मर जाती हैं
भले संसार में
चुप रहते हैं मनसबदार
उनका पानी बाजार में तैरता है
टपकता है नसों में

3.

मर जाते हैं लोग
जिनकी छाती पर रखा हुआ कोयला दहकता है
खून की एक धार धरती के एक कोने से दूसरे कोने तक
जब्व होती रहती है
लोथड़े में तब्दील हो जाती है स्त्रीयोनि
चिता की आग बन जाती हैं बेटियां
एक बाप लड़ता है
कटे हुए पैरों को निहारता है बार-बार
खून की धार धरती के एक कोने से दूसरे कोने तक
जब्व होती रहती है
बंत सिंह लड़ता है

बिखरे हुए खून के धब्बों के लिए गाता है गीत
बेटी की चिता को लेकर घूमता है अपने गीतों में
सुनाता है अपना राग
बचपन के उन लाल सिंदूरी कदमों को सहलाता है
पिता के कई कदमों में
एक कदम उसका भी था
जिसे दबंगों ने राख बनाकर छोड़ दिया

**(बंत सिंह पंजाब का एक दलित सिख, जिनका अपनी बेटी
के बलात्कार के प्रतिरोध के कारण सवर्णों ने हाथ-पैर काट
दिया जो आज भी अपने न्याय के गीत गाता है)**

हमरा कहां ठिकाना

हम चमार के
हम लुहार के, नाई, लोधी, भीलवार के
जोगी, कोरी, सैनी, कश्यप
मांझी, धनगर, पासी, असगर
हमरा कहां ठिकाना भैया
बड़े हुकुम को जाना भैया

भाग्य बड़ा या बड़ा रुपैया
धर्म बड़ा या डंडा भैया
भूख बड़ी सम्मान बड़ा या
पिटती कुटती अपनी गैया

वही पहाड़ा, वही सवाल
आजादी में हम बेहाल
हम का करें पढ़ाई भैया
हमने जात गंवाई भैया

कर लेगा क्या शिक्षा-अधिकार
चमड़ी-चमड़ा रहा पुकार
नाली बोले आओ बेटा
देश को स्वर्ग बनाओ बेटा

स्वर्ग बनाया हमने भैया
खाया धक्का हमने भैया

कैसे करें हम देश सुधार
वर्ण क्रम में जब हम बेकार

हमरा कहां ठिकाना भैया
मांझी बन लुट जाना भैया

जनरल डायर

इस देश में रहकर
तुम्हारी बहुत याद आती है
जनरल डायर

किसी-किसी दिन तो हद से अधिक
सच कहूं

तुम्हारा स्मरण देशद्रोही बनाता हो
ऐसा कभी नहीं सोचता मैं
राजसत्ता के बहाने
दमन के रास्ते याद आता है तुम्हारा तेजवान चेहरा
सुशासन, सुराज्य, सुदिन

तुम्हारी भी प्राथमिकता थी
और भी कई थीं तुम्हारी प्राथमिकताएं
होती हैं जब अनगिनत हत्याएं सुशासन के लिए
सुराज्य की आकांक्षा से
तुम्हारे बहाने सत्तावाले, सुशासनवाले, सुराज्यवाले
बहुत याद आते हैं
इस देश में रहकर

तुम्हारी प्रासंगिकता बनी रहती है जनरल
तुम्हारी वर्दी

किसी पुलिसवाले की वर्दी देखकर याद आती है
यह खाकी रंग
कितना जानदार हथियार है

तुम्हारा सीना तो नहीं नापा मैंने
लेकिन प्रधानमंत्री के सीने से बिल्कुल कम नहीं होगा
तुम्हारे सीने का आयतन
तुम्हारी आंखों में झांककर तो नहीं देखा मैंने
पर डेविड कैमरून से क्या कम नीली रही होंगी तुम्हारी आंखें
वो जादूगर

तुम्हारी आंखों के जादूगर आज भी हैं देश में
हत्या और सुदिन का सपना एक साथ दिखाने वाले
तुम्हारी याद ताजा कर जाते हैं

सायरन बजाती हुई गाड़ियां

एक साथ एक दो तीन चार पांच

अस्सी-नब्बे गाड़ियों में लदे तुम्हारे घोड़ेवान सिपाही
सोचता हूं तुम्हारा होना कितना प्रासंगिक है

आज भी

जब देश के सत्तर प्रतिशत नागरिक

आजादी का हठ किए बैठे हों

वे अपनी भाषा, सभ्यता, संस्कृति की तलाश में मर रहे हों रोज़

वे चाहते हैं उनकी जंगल-जमीन बची रहे
उस समय भी तुम जब अपनी पुलिस को आदेश दे रहे हो
फायर ...
ओ जनरल डायर

वसीयत

सबने कहा
वह आकाश-सी है
मैं बादलों के पार चला गया उससे मिलने
सबने कहा वह झील-सी है
मैं पंडुकों की तरह तैर आया नदी
किसी ने कहा वह ओस की पहली बूंद की तरह है
मैं हथेलियों पर इकट्ठा करता रहा पराग
किसी ने कहा वह हार की तरह लगती है
मैंने दुलार पा लिया खुद में
किसी ने कहा धनिए के फूल की तरह जामुनी है वह
मैं भौरि की तरह खोया
किसी ने कहा वह नींद है, किसी ने कहा हंसी
किसी ने कहा वह चांद की चिकनाई है
किसी ने कहा मलहम
मैंने उसे कई बार देखा है
गरीबी में वह और भी सुन्दर दिखाई देती है

असमय नदी

कई हजार लोग थे उसके साथ
वह मुस्करा रहा था, और आगे बढ़ता जा रहा था
उसके लोगों का पेट भरा हुआ था
वे डकार मार रहे थे
ढोल और मांदर बजा रहे थे
कुछ अपनी तोंद को, फुरसत से सहला रहे थे
कुछ चलते-चलते, कर रहे थे वेद-पुराण की बातें
हर आदमी अपने में ही मस्त था
एक कह रहा था
उस आदिवासी कवयित्री की कविता में दम है
जो अपने मेमने को दूध पिला रही है
दूसरा कह रहा था
उसकी जांघें तो देखो
कोई कविता की पंक्ति लगती है
इस पर 'पाठ' का आयोजन होना चाहिए
'इसे अपना ज्ञानपीठ दे दो'

एक 'नामवर' बोल रहा था
'इसे लोक और शास्त्र का द्वंद्व समझ लो'
समझा रहा था कोई मैनेजर

हर किसी के पास काम था
हर किसी के पास तारीफ का पुल
हर कोई बिजी था

ठीक उन हजार लोगों के पीछे
कुछ हजार लोग
जो छल-छद्म का 'क' भी नहीं जानते थे
भूख को आस्वाद पर रखकर रो रहे थे
उस समय बह रही थी असमय नदी
उसी में अनवरत हो रहा था रक्तस्राव

अगली पीढ़ी लड़की

हमारी कोई ब्रांच नहीं है
हमारी कोई सीरीज नहीं है
हमारी कोई श्रृंखला नहीं है
हम इस दुनिया में बिलकुल अकेली हैं
हमसे मिलना तुम
हम लड़ती हैं तो समूह नहीं बनाती
हम दौड़ती हैं तो समूह नहीं बनाती
हम काम करती हैं तो समूह नहीं बनाती
हम असंगठित मजदूर हैं
सभा भवन की
जहां दहाड़ती हैं राजा की आवाजें
मुखबिर हैं काली मूँछे
हम चुहियाएं हैं व्यवस्था की
हम अठारह से चौबीस हैं
हमारी किताब की गिनती खत्म हो जाती है चालीस बाद
लोगों को पसंद नहीं आते हमारे सूखे स्तन
जैसे चंद्रमा उतरता है
काली अंधेरी नदी में वैसे ही उतर जाती हैं हम
वैसे उतरती है हमारी उम्र
हम सेब नहीं रह जातीं
हम अनार नहीं रह जातीं
हम कटहल हो जाती हैं भाषा में
हमें खाती जाती है हमारी चिंता
सुनो बाबू!
ये जो तुम रात भर खेलते हो हमारे साथ लुका-छिपी
करते हो मर्यादा तार-तार

बनाते हो पतनशील
 पत्नी और वेश्या को एक साथ मिला लेने का करते हो स्वांग
 प्रेमिकाओं के तलछट पर रगड़ते हो माथा
 यही वे करने लगे
 तब बताओ क्या कहोगे तुम
 क्या करोगे तुम जब बगावत की वेदी पर डाल दें वे
 गंदी सोच का कूड़ा
 जो पतनशील हैं
 वे ज्वलनशील हो गई हैं इन दिनों
 वही व्यवस्था की जंजीर तोड़कर
 जी रही हैं काठ का जीवन
 हम वही हैं हमारी कोई ब्रांच नहीं है
 नहीं है हमारा संघ
 नहीं है हमारी शाखा !!

सीपियों को नहीं चाहिए शंख

नदी को चाहिए समुद्र
 हवा को चाहिए बागान
 खुशबुओं को चाहिए स्वस्थ नाक
 आकाश चाहिए पक्षियों को
 पर सीपियों को नहीं चाहिए शंख
 शंख चाहिए पण्डितों को
 युद्धकामियों को चाहिए शंख
 दलालों, मठाधीशों को पड़ती है उसकी जरूरत
 एक ही परिवेश में
 जन्मते हैं सांप भी नेवले भी
 एक ही परिवेश में जन्मते हैं कायर और क्रोधी
 ठग-ठगहार
 दुनिया में जातियों का संजाल बिछा है
 एक परिवेश में एक दूसरे से अनभिज्ञ
 किसी को छोटा नहीं चाहिए
 छोटा होने पर जात छोटी हो जाया करती है

संपर्क : भारतीय भाषा केंद्र, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
 मगध मेडिकल कॉलेज के पीछे, विनोबा नगर,
 चंदौती, गया-823004 (बिहार)

मो. 08092330929

कविताएं

राम श्रेष्ठ दीवाना

गौतम बुद्ध

आओ, बुद्ध! एक बार फिर आओ
 समता का परचम लेकर आना
 मत तन्हा तुम आना गौतम
 सुजाता को लेकर आना
 लेकर इंकलाब को
 आम्बेडकर को पीछे नहीं छोड़ना
 लेनिन-माओ साथ में लाना
 चार्वाक से मुख न मोड़ना
 कबीर का कबीरन लाना
 और लाना तू आम-टिकोले
 कई-कई सुजाता लाना
 और बासंती मादकता लाना
 लाना फूलों का ऐसा चमन तू
 जो सदा रहे गमकता
 मैं हूँ शायर इंकलाब का
 सुजाता की खीर खिला दो
 नफरत का समन्दर तन्हा पिया
 विरहन की कोई पीर पिला दो
 जब तक तू न आएगा गौतम
 तब तक रणक्षेत्र में अड़ा रहूंगा
 चाहे गिर जाए नफरत का अणुबम
 मैं हिमालय-सा डटा रहूंगा।

दंगा

जिनके हाथ में हैं
 त्रिशूल बंदूक गोला और बारूद
 खून में नहारीं कटार और बर्छी
 मुख में रामनाम, बगल में छूरी
 संसद के भीतर/संसद के बाहर
 मंगनी में बांट रहे हैं उपदेश
 लाशों के बीच में रोता स्वदेश
 कहीं राम मारा गया, कहीं रहीम
 मारी गई गीता और कुरान
 प्यार मारा गया किसी का

किसी के गीत
हिंद की धरती पर/रोते उनके मीत
फूल मारे गए माली के संग
धर्म के नाम पर/किसने कराई जंग?

साधो किस नगरी में आयो

साधो, किस नगरी में आयो
अंधा जहां राह दिखाता
अगिआनी गीता बांचे
सत पुरुष को पत्थर मारे
झूठ के माने सांचे
कुत्ता जहां में माखन खाता
नर है आंसू खायो
साधु किस नगरी में आयो
सूरज कैद तहखाना में
अंधेरा छुट्टा धूमे
फूल को जहां कुचलकर लोग
कांटों को ही चुमें
पारस सा जिइए लेकर
टलटा के मोल गंवायो
साधु, किस नगरी में आयो

वर्ग चरित्र

राजसत्ता का वर्गीय चरित्र एक जैसा होता है
जैसा लाल झंडा वैसा भगवा झंडा
दोनों झंडे में रंग का फर्क है
दोनों का चरित्र वैदिक है
दोनों राम हैं/हनुमान हैं/काली और दुर्गा हैं
दोनों गीता हैं/दोनों पुराण हैं
दोनों का दिल काला है
गर्दन में मोटी माला हैं
दोनों के ईमान में माल हैं
दोनों सर्वहारा के काल हैं
दोनों मालपंथी के काल हैं
दोनों मालपंथी/दोनों हत्यारे हैं
सर्वणों के हरकारे हैं
दोनों के राज में
मजलूम बेहाल हैं
भूखी नंगी जनता
देखो, कंगाल ही कंगाल हैं
बहुजन का पसीना देख टपकाता लार है

जीवन की फटी धोती
हो गई तार-तार है।

परमिट

जो राजसत्ता के खिलाफ संग्राम रचेगा
लाल झंडा के खिलाफ विद्रोह करेगा
माओवादी का साथ देगा
महाश्वेता देवी की राह चलेगा
उसकी सांस लेने की परमिट रद्द कर दी जाएगी
क्योंकि सांस लेने की परमिट
कामरेड के हस्ताक्षर से मिलती है
देखा नहीं, नंदीग्राम और सिंगूर में
हजारों-लाखों शूद्रों की सांस लेने की परमिट
हमारे माननीय कामरेड ने रद्द कर दी
साले, कुत्तों की मौत मरें।



संपर्क : ग्राम - जिरौल, पोस्ट - जिरौल,
वाया - खिरहर, जिला - मधुबनी (बिहार), पिन - 847230
मो. 09801398363

1.

फिर क्या किया गर तुमने जमाना नहीं देखा ।
रस्ते में सफर तुमने सुहाना नहीं देखा ।।
महबूब की बातों को ही कहते रहे आयत ।
ऐसा भी कोई हमने दिवाना नहीं देखा ।।
दिल दे तो दिया उसने मगर जां चली गई ।
इस तरह कभी प्यार निभाना नहीं देखा ।।
कुछ बोल बोलने से ही जलती हैं बस्तियां ।
नुमायां यूं तेरा करना कराना नहीं देखा ।।
हम मान ही लेते हैं और कहते हैं है खुदा ।
अपने निशां का यूं तो छिपना नहीं देखा ।।
वो खुद ही नहीं जानते आंखों को है पता ।
मोती के यूं खैरात लुटाना नहीं देखा ।।
क्यों दे रहा है जखम नए वो तुम्हें नीरव ।
क्या उसने तेरा जखम पुराना नहीं देखा ।

2.

दिल नहीं हमने लगाया कभी जमाने में ।
हमको आता नहीं मजा फरेब खाने में ।।
ऐसे न पूछो खुशी वस्ल की मुझसे यारों ।
चन्द ही रोज गुजारे अभी मयखाने में ।।
बेवफाई का तो इल्जाम लगा है मुझपर ।
शर्म आती है उन्हें क्यों नजर मिलाने में ।।
खल्स हो जाएंगे शिकवे-गिले इस दुनिया के ।
सब हैं मसरूफ मेरी शख्सियत जलाने में ।।
इश्क करने से तुम्हें इतना तजुर्बा होगा ।
हाथ जल जाते हैं बस इक दिया जलाने में ।।
तुमसे उस दिन जो बड़ी देर गुफ्तगू की थी ।
लग गए कई जमाने उसे भुलाने में ।।
इक न इक दिन वो हमें याद करेंगे नीरव ।
जिनको हम थे लगे अपना खुदा बनाने में ।।

3.

दूर हमसे सब मोहब्बत के फसाने हो गए ।
साज पर छेड़े गए हम धुन पुराने हो गए ।।
जखम गहरे हैं दिखाऊंगा तो फिर खुल जाएंगे ।
क्या पता किसको खबर हम क्यों निशाने हो गए ।।
तुम भी कुछ बोलो तुम्हारे न बोलने का क्या सबब ।
गुफ्तगू तुमसे किए शायद जमाने हो गए ।।
तुम ही न चाहोगे तो फिर चाहने वाला नहीं ।
दोस्त-घर-रिश्ते-ओ-नाते सब बेगाने हो गए ।।
लोग जिनको जानते थे हम बड़े करीब से ।

इश्क से बीमार होकर सब दीवाने हो गए ।।
तुम परीशां क्यों हुए हमने तो कुछ भी न कहा ।
सुर्ख आंखें थीं तुम्हारे ये पते पुराने हो गए ।।
क्या पता क्यों लोग फिर आने लगे हैं मेरे घर ।
आजमाइश रिश्तों की नीरव फिर बहाने हो गए ।।

4.

इक नशा सा छा रहा है आपके आने से फिर ।
होश मेरा जा रहा है आपके आने से फिर ?
कोई गाये या ना गाये जिंदगी के गीत को ।
दिल हमारा गा रहा है आपके आने से फिर ?
आप क्यों निकले हैं घर से चौदवीं की रात को ?
चांद भी शरमा रहा है आपके आने से फिर ।।
दोस्त तो फिर दोस्त हैं दुश्मन से भी मिलते गले ।
इक सलीका आ रहा है आपके आने से फिर ।।
आ लिपटती हैं कहीं भी मुझसे खुशी की सहेलियां ।
गम यकीनन जा रहा है आपके आने से फिर ।।
कारोबार-ए-इश्क में बस आंख ही क्यों चुप रहे ।
मोतियां बरसा रहा है आपके आने से फिर ।।
कई टुकड़े शख्सियत के एक भी नीरव नहीं ।
कोई आ रहा कोई जा रहा है आपके आने से फिर ।।

5.

चांद सूरज और तारों को बनाता कौन है ।
आसमां से जोड़कर इनको सजाता कौन है ।।
आज नजरें मिल गई मयखाने में वाइज से फिर ।
कौन जाने उनको यां तक रोज लाता कौन है ।।
फिर हवा से कर लिया है इक दिए ने मशविरा ।
देखना है उस दिए को अब बुझाता कौन है ।।
एक सूनी सी गली है और उजड़ा सा है घर ।
ऐसी नाकाबिल गली से देखो आता कौन है ।।
इश्क से फेरे नजर बैठे रहे वो रात भर ।
ऐसे नासमझों को सोने दो जगाता कौन है ।।
झूठ कहना झूठ रहना और झूठ ही का कारोबार ।
अब तो मन की बात में मन की बताता कौन है ।।
हैं मिटाने पर लगे वो इंसानियत के नाम को ।
पेट की इस आग को देखो मिटाता कौन है ।।
इश्क उनसे कर लिया है तो गिला क्योंकर करो ।
खुद ही नीरव मान जाओ तुमको मनाता कौन है ।।

○

संपर्क : अभिप्राय त्रिपाठी, बी-82, दूसरी मंजिल, धीरज ब्लॉक, दक्षिणी
गणेश नगर, नई दिल्ली-110092

मैं दलित हूँ

मैं दलित हूँ
इसलिए
दबाया गया

मैं दलित हूँ
इसलिए
नंगा दौड़ाया गया

मैं दलित हूँ
इसलिए
दलदल में फंसाया गया

मैं दलित हूँ
इसलिए
गुनाहों को देवता
बनाया गया

मैं दलित हूँ इसलिए
मांस-दाल की तरह
नमक छिड़क-छिड़क कर
गलाया गया

मैं दलित हूँ
इसलिए
मेरी आह की कराह को
बंसी में बजाया गया
सारी दुनियां को
शंख में सुनाया गया

मैं दलित हूँ
इसलिए
तुम्हारे गुरुकूल का
एकलव्य बनाया गया

आगे सुनो

गुरुकूल और एकतंत्रीय
दुनियां के हिंदुओं

संविधान और जनतंत्र
की उपज हूँ मैं
अपने हकों को
पहचानता हूँ मैं
मेरे ये हाथ अब उठते हैं
मुट्ठियां बांधे हुए ये हाथ
अब न रुकते हैं

एकलव्य हूँ मैं
आम्बेडकर हूँ मैं
अपनी अस्मिता को
पहचानता हूँ मैं।

ग्लोबल देवता

मेरे देवता
तुमने अपने
सभ्यता के इतिहास में
धर्मग्रंथों के इतिहास में
मेरे जंगल के इतिहास को
कहीं कोई पहचान नहीं दिया
तुम्हारी सभ्यता के आप्त इतिहास में
हमें—हिंसक, बर्बर, असभ्य
लड़ाकू और जंगली कहा गया

कहते हैं
सभ्य लोग कम बोलते हैं
तुम्हारी सभ्यता का इतिहास भी
हम पर बहुत कम बोलता है
इसीलिए तुम्हारे इतिहास में
मेरे जंगल का कोई इतिहास नहीं है

मेरे देवता!

जब तुम
सभ्यता का पाठ पढ़ रहे थे
तब हम
दुनिया के सबसे खतरनाक
और हिंसक जानवरों से प्रेम कर रहे थे
और तुम हमें—लड़ाकू, बर्बर, हिंसक कह रहे हो

अब तक
गलत लिखा गया
तुम्हारी सभ्यता के इतिहास में
मेरे जंगल के इतिहास को
आज दुनिया की
किसी राजधानी की सफेद कोठी में बैठ
दुनिया की तीसरी हवा से
बताते हो जंगल की जमीनी हवा को
और चुपचाप निर्धारित करते हो
मेरे जंगल और नीले संसार के भूगोल को

अपने मैदान से
बाहें फैलाए बुलाते हो...
मेरे उछलते-कूदते चले जाने पर
अपनी बाहों में भर
घूम जाते हो अपनी सभ्यता की ओर
और कहते हो
देखा मेरी सभ्यता की ओर
चलो मेरी दुनिया की ओर
यहां से देखो
क्या रखा है
तुम्हारे जंगलों में
जो अपने अद्भुत सौन्दर्य को
यहां गला रही हो

मेरे देवता
तब तुम
बार-बार हर-बार
क्या देखते हो
एकटक उन जंगलों को?
क्या खोजते हो उन जंगलों में?
चुप-चाप बैठ
क्या सोचते हो उन जंगलों में?
क्या रखा है उन जंगलों में?

मैं तुमसे प्रेम करता हूं

बड़े चालाक हो
मेरे 'ग्लोबल देवता'
इतना प्रेम कैसे उमड़ आया
इस असभ्य, बर्बर, हिंसक और जंगली पर
क्या चाहते हो मेरे देवता?
क्या तुम्हारी सांसें
अब रुकने लगी हैं
जो चलते-चलते
धड़कते हुए सीने को
दोनों हाथों से पकड़
जमीं पर लेट जाते हो
या फिर नहीं रहा
तुम्हारी सभ्यता के इतिहास में
प्रेम और मनुष्यत्व।

मेरे देवता
जंगल के किसी झुरमुट से निकल
चुप-चाप किसी प्रेमिका-सी पूछती हूं
सच-सच बताना
हमें अपने ग्लोबल सभ्यता में
कहां जगह दोगे—
अपनी बाहों में, मैदान में, वीरान में
सड़क पर, संसद में या व्हाईट हाउस में
कहां?

मेरे जंगल को जलाकर
उसकी एक-एक इंच जमीन पर
सारी दुनिया में
मालिकाना पंचायत करने वाले
'ग्लोबल देवता'
सच में
सच-सच बोलो न
चुप क्यों हो गए?
जंगल जब-जब मुंह खोलता है
तब-तब तुम्हारी मैदानी सभ्यता
चुप हो जाती है
बोलो न मेरे देवता?
नहीं बोलोगे
ऐसे ही चुप हो जाता है

अब जा रही हूं
मेरे ग्लोबल देवता
तुम्हें प्रेम करना नहीं आता
मेरा जंगल
मुझे प्रेम करने के लिए
बुला रहा है
मेरे जंगल में
तुम्हारा भेजा हुआ कर्नल
अपने बैंक से रौंदते हुए
कहेगा—नक्सलवादी, मोआवादी है, आतंकवादी है

मेरे देवता
अब तुम
तब आना
जब तुम्हारी सभ्यता में कमी पड़ जाए
हवा की, पानी की, प्रेम की, मनुष्यता की।

सच में
जंगल पर रहकर है
जिंदगी जहर है
ना कोई घर है
ना कोई शहर है

संपर्क : मानसरोवर छात्रावास
कमरा नं. 412, खालसा कॉलेज के सामने, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

आशा

मेरे इस जीवन के पथ पर
केवल एक सहारा आशा
आशा ही की आशाओं से
हूं मैं आज तुम्हारी आशा

आशा ही के स्वप्न सजाकर
मन को खूब तराशा आशा
ताने-बाने बुने प्रेम के
तब इस दिल ने पाई आशा

जीवन आशा , यौवन आशा
इस मन का वन उपवन आशा
मधुमय आशा, निधिमय आशा
मन-वीणा कि रुनझुन आशा

थके हुए से परदेशी की
मन की मंजिल जैसी आशा
मरुस्थल की प्यासी धरती पर
टिपटिप बारिश जैसी आशा

दिल के पगले अरमानों की
पंख लगा उड़ने की आशा
मेरे इस सूने मन उपवन में
जैसे हवा बसंती आशा

पल-पल अहसां, क्षण-क्षण आशा
इस जग का हर कण-कण आशा
कली-कली हां फूल-फूल
इस उपवन का हर तृण-तृण आशा

बच्चे की मासूम निगाहों
जैसी तुम भोली आशा
जगमग करती दीवाली-सी
रंग भरी होली आशा

और तोतली नन्ही बोली
सी प्याली -प्याली आशा
बचपन सी निर्दोष जवानी
जैसी मतवाली आशा

मेरे इस जीवन के पथ पर
केवल एक सहारा आशा

“मैं खामोश नहीं हूँ”
अन्धों की नगरी में
बेचना चाहता हूँ
एक चश्मा तिलिस्मी
गूंगों को बातें करना
सिखा रहा हूँ।।।।
मैं खामोश नहीं हूँ
मैं चिल्ला रहा हूँ।।

मेरी चिल्लाहट की
ऐसी गूँज है कि
खोल दे दुनियां के
बहरों के परदे कान के
छंट जाए तिमिर
इस जहाँ से
मैं ऐसा एक दीपक
जला रहा हूँ
मैं खामोश नहीं हूँ
मैं चिल्ला रहा हूँ।

बेचकर खुशियां खरीदूँ
गम सभी के
पोंछकर आंसू
मैं बांटू प्यार को
तोड़ दूँ दीवार
सारी नफरतों की
एक धागे में
रखूँ संसार को
एक घरौंदा ऐसा ही
मैं बना रहा हूँ
मैं खामोश नहीं हूँ
मैं प्रेम का एक दीपक

जला रहा हूँ, जला रहा हूँ।

(बस पांच साल)

सही सवाल...
नहीं बवाल...
नहीं भूचाल...
ओवैसी हो या रामलाल
सबको चाहिए
बस पांच साल...
फिर हों चाहे
कितने ही हलाल।

है जाल
बहुत जंजाल
रोते कितने
नर-नारी कंकाल
फिर किसको
इनका खयाल
श्याम हो या जमाल
सबको चाहिए बस पांच साल।

टोपी लगा
टोपी पहनाई
सबने झगडे की
बात बताई
किसने मारा
कब किसको
घूम रहा है
संसद में सवाल।
महबूबा हो या
कोई बेनीवाल
सबको चाहिए बस पांच साल।

संपर्क :

○

स्त्री

स्त्री क्यों होती है स्त्री
 उसका जीवन तरल और सरल क्यों होता है
 क्यों वह निर्मल जल सी बहती है
 सबकी बातों को सुनती
 सबके मन की करती
 दुख और तकलीफें सहती।

बड़े से बड़े लोगों से मिलती
 छोटे से छोटे लोगों के साथ काम करती।

सबका प्यार पाती स्त्री
 सामाजिक और नैतिक
 दुराचार पाती स्त्री।

दूसरों के जीवन को संभाल पाती स्त्री
 जीवन में फटकार पाती स्त्री।

बड़े से बड़े और छोटे से छोटे घर में
 आम का अचार बनती स्त्री।

मानव जीवन में आरंभ से अंत तक
 जब रहती है स्त्री
 तो,
 बनती है सृष्टि सृष्टि और सृष्टि!!!

बंधन मुक्ति

उड़ना चाहती हूं
 उस पक्षी की तरह खुले आसमान में
 सारे बंधनों को तोड़ना चाहती हूं।
 इंसान को इंसान से जोड़ना चाहती हूं।

अक्सर उन्मुक्त गगन में
 आजाद रहने का
 एक छोटा-सा स्वप्न पाले रहती हूं।

परन्तु,
 आजाद रहने कोई देता ही नहीं
 परिवार, समाज और ये संस्कृति
 सब अपने बंधनों में जकड़ कर रखना चाहते हैं।

सबसे मुक्त होना चाहती हूं
 उन्मुक्त होना चाहती हूं
 और
 इंसान को इंसान से जोड़ना चाहती हूं

शायद इस कविता की आवाज
 उन बंधनों को तोड़ना चाहती है।
 और
 अपने दम पर अपने अस्तित्व को पाना चाहती है।
 इंसान को इंसान से जोड़ना चाहती है।

दौड़ती जिंदगी

इस भागती-दौड़ती जिंदगी में
 कुछ मिल जाने की खुशी
 कुछ खो जाने का गम
 बराबर बना रहता है।

जिंदगी की उबड़-खाबड़ राहों पर
 आज एक समतल राह की चाह में
 निकल जाने की कोशिश
 कशिश में बदल जाती है
 और
 बाजार की दुनिया वहीं छूट जाती है

एक शून्य सी जिंदगी
 अपने अस्तित्व की चाह में
 अपने कदमों के बल पर
 ऊंचाईयों को छूने की राह में

दौड़ती है, बार-बार, बार-बार
 वहीं भागती दौड़ती जिंदगी के मध्य।

डर

किसी को इतना, अपना न समझ
 कि, उससे अपने सारे राज खोल दे
 और इसी डर से कि
 वे तेरे राज किसी और से ना बोल दे
 ये सोचकर अपने हृदय में डर बैठा ले,
 कहीं ऐसा ना हो

यही डर तुझको पल-पल
दीमक की तरह खा जाए
और एक दिन,
अपने खोने का एहसास करा जाए।

मीरा

आज हर वह स्त्री मीरा है
जो किसी के प्रेम में पागल है
मीरा का प्रेम अनन्य और अनंत रहा

किन्तु आज स्त्री का प्रेम तब तक प्रेम है
जब तक वह उस पुरुष के हाथों की कठपुतली है
ये कठपुतली जिस दिन आवाज उठाई
उस दिन न प्रेम रहा न वह रिश्ता

मीरा ने उस सामंती व्यवस्था में विद्रोह किया, निर्णय लिया
अपना रास्ता स्वयं चुना
विष का प्याला पिया
किन्तु आज आधुनिक, भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिक युग
में
जो स्त्री विद्रोह कर, निर्णय लेकर, निकल गई
वह कुछ तो सफल हो पाई और कुछ विफल रहीं

मीरा, मीरा तो बन गई
परन्तु,
क्या,
आज भी कोई मीरा, मीरा बन पाएगी।

गुमराह

किसी की नादानियों को
माफ ना कर,
इस माफी ने सैकड़ों को गुमराह किया
गुमनामी की इस राह में
ना जाने कितने बरबाद हुए।

सफर है अनजाना

किसी को अपने ख्वाब इतने ना दिखा कि
अपने ही ख्वाब में वो आने लगे,
हर पल अपनी मौजूदगी का एहसास दिलाने लगे

ना कोई रिश्ता है
ना रिश्ता बनाना है कोई
फिर भी साथ चलना है
क्योंकि एक ही रास्ता है
परन्तु,

सफर है अनजाना
निकल पड़े हैं इस कंक्रीट के जंगलों में
कहीं तो कोई गुफा मिले
जहां शेर अपनों का शिकार ना करे
राह दिखाएं,
जीने का तरीका समझाएं और
साहसी बनने का सबब दे जाएं।

उम्र की दहजिल पर कदम रखते हुए,
किसी ने आवाज लगाई,
क्यों खुश होती हो,
अपनी खुशी में खुश होती तो जाने

ये चोट बड़ी गहरी लगी,
कि,
रात भर नींद ना आ सकी
विचार मंथन हुए और
निष्कर्ष पर पहुंची,

क्यों वो खुशी अपने पास नहीं
क्या वो खुशी नहीं, जो दूसरे की हो
खुशी से 2-4 पल खुश हो लिए तो क्या
मिल जाए क्या वो खुशी नहीं!!

दर्द

याद है मुझे
उनका सिने के दर्द से कराहना
ये दर्द सिने का नहीं
बल्कि सामाजिक दबावों का है
बेरोजगारी का है
उम्र निकलने का है
जीवन ना जी पाने का है
और किसी को समय ना दे पाने का है
इस दर्द की कोई दवा नहीं

ये तो है हृदय की ज्वालामुखी
जो हर रात सोने से पहले गर्म होती और
सुबह फट जाती है
न जाने ये तूफान कब ठहरेगा
ये समय का बवंडर कब थमेगा,
औ
ये दर्द कब खत्म हो जाएगा?

○

संपर्क : रुम न. 40ए, ब्लॉक-एफ, स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज,
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-110068
मो. 08595054673

डाईन

जून का महीना होने के कारण पोखर का पानी सूख कर आधा हो गया था। यही कोई पुरसा भर रहा होगा। नहीं तो बस गले या छाती तक। पोखर के किनारे एक छायादार करंज का वृक्ष है। वृक्ष की जड़ तक एक चबूतरा समतल पत्थर को घेरे हुए है। उस समतल चबूतरे पर दो व्यक्ति विराजमान हैं। उनकी पैनी नजर मछली मार रहे लोगों की तत्परता से निगरानी कर रही है। उनमें एक मरद है, दूसरी औरत। चबूतरे के करीब तीन बड़े-बड़े बांस के खांचे पड़े हैं, एक में से कुछ जीव-जंतुओं की छटपटाहट, सुगबुगाहट, रंग पगाहट सुनाई पड़ रही है। मछलियों से एक खांचा भरा है।

इसी गहमागहमी में वह आदमी छाया पर विराजमान व्यक्तियों के समीप जाता हुआ दिखाई पड़ता है। एक अपरिचित आदमी अपनी ओर आता हुआ दिखा। मरद चौंक उठता है। औरत भी मरद के चौंकने का कारण भरसक जानने को प्रयत्नशील रहती है।

‘सलाम हुजूर’—उस आदमी ने मरद का अभिवादन किया।

मरद कोई उत्तर नहीं देता है। मानो कुछ हुआ ही नहीं। औरत भी मरद की आड़ में चुप ही रही कि जब मरद है तो मुझे क्या लेना-देना।

‘हुजूर गोड़ लागि’—वह फिर अपनी उपस्थिति का आभास दिलाता है। तब भी मरद में कुछ हरकत नहीं आती है।

‘हुजूर... मुझे रबू ने...

हुं, रबू... वह फिर चौंकता है।

तू... तू कौन

‘हुजूर, मैं कदला गांव का रहने वाला हूं। रबू ने मुझे आपके पास भेजा है।’

‘क्या कहा, रबू ने तुझे मेरे पास...

‘हां हुजूर!’

‘कौन रबू, मैं नहीं जानता!’

‘हां हुजूर!’

इतने में वह औरत मामले को भांप लेती है। वह मरद को आहिस्ते से चुप रहने का इशारा करने लगती है।

आदमी आगे कहने लगता है—हुजूर, मैं आपके गांव की टोटकी वाली के पास आया था। घर में उसके पति ने कहा कि वह यहां मछली पकड़ने आई हुई है। मेरी विनती है कि उसे जरा बुला देना, बहुत जरूरी काम है मालिक।

अच्छा, हम उसे बुला देता है। पर इस बखत वह कहाँ है, हम नहीं जानता। बहुत-सी औरतों को हम पत्ता तोड़ने जंगल भेज दिया है। आज शाम को हमारे घर में मछली-भोज होने वाला है। शाम को वह आ जाएगी तो हम बोल देगा, पर तू क्या बोलना चाहता है, बोल—मरद अपनी धोती के खूंट से काले मोटे ऐनक को पोंछते हुए कहता है।

‘हुजूर रबू भैया का एक जवान लड़का एक सप्ताह से बीमार था। यही टोटकी वाली की देख-रेख में दवा-दारू चला रहा था। अभी दो दिन पहले ही वह दो दिन की खुराक छोड़ कर चली आई थी। पर कल रात वह भगवान को प्यारा हो गया। सुना जाता है कि हमारे गांव की एक नरभक्षी डाईन के भूत ने उसका खून चूस लिया।

हैं, दुर्गा मर गया। दुर्गा अब मन ही मन आश्चर्य प्रकट करने लगती है।

‘हां’, बड़े मालिक, दुर्गा अब इस दुनिया में नहीं रहा। दोनों और मरद इत्मीनान हो उसे आश्वस्त करते हैं। मरद फिर ऐनक को नाक पर चढ़ा लेता है। फिर भी तसल्ली मार लेती है। वह आदमी वापस अपने गांव लौट जाता है।

उसके जाने के तुरंत बाद/मरद, दमकते हुए औरत की ओर पलटता है। मुंह में विजयोल्लास की विषैली मुस्कुराहट तैरी। पिफर गोगल्स को नाक पर से उतारते हुए कहने लगता है—टोटकी बाई, महीनों पहले हमने जो विष के बीज बोए थे। वे

अब फल देने लगे हैं, हा... हा... हा... चाहो तो तोड़-तोड़ कर अपनी झोली भर लो, हा.. हा.. हा...

मतलब...

अरे टोटकी बाई, तू बहुत जल्दी बात को भूल जाती है। जरूरी काम को भी भूल जाती है... और जरूरी दाम लेने को भी... अरे, जरा याद तो करो सप्ताह भर पहले मेरे मार्फत ही तो तू रब्बू के घर हो आई थी। अगर हम तुझे जाने को न कहते, तो ये फोकट का माल हाथ लगता? जोड़े भर तांत की साड़ी। पांच सौ नकद। किलो भर पठारी गाय की घी। दस-दस किलो पहाड़ी बाजरा तथा ढाई किलो अरहर की दाल। फिर से सोने की टिकिया तो मानो तुम्हारी गृहलक्ष्मी की सजीव मूर्ति है। लेकिन मालिक, यह सब कब तक चलेगा। कभी मन करता है कि इन धंधों से बाज आऊं।

अरे, टोटकी बाई, तू तो भगवान की असली औलाद बन गई। लगता है तुम्हारे मां-बाप बहुत ही असभ्य रहे हैं। वे तुम्हें नीति-निदान की बात बिल्कुल ही नहीं सिखा पाए। अरे सुन, हम तुझे ज्ञान के दो शब्द बता देते हैं। अब तू इनकी गांठ बना ले।

सूअर कभी भगवान से प्रार्थना करे कि मालिक की फसल हष्ट-पुष्ट हो, वीजयुक्त हो। इससे भूसा-चोकर की मात्रा घटने लगती है। बनिस्वत वह भूखा मरने लगता है। धोबी तथा कुम्हार कभी वर्षा की आशा न लगाएं, ताकि उनकी आमदनी आती रहे। इसी प्रकार जमींदार, कविराज, टोना टोटका वालों को कभी जनता की खुशहाली की कामना नहीं करनी चाहिए ताकि उनकी दैनिक आमदनी के स्रोत बंद न हो। लगता है, तुम्हें कुशल राजनीतियों के नुस्खे सीखने होंगे। और भी सीखना चाहती हो, काम की बातें?

देखो देश-दुनिया के राजकाज कैसे चलते हैं। सामने खांचे में से एक कंकड़ा को उठाते हुए वह कहता है। यह एक खतरनाक जल-जंतु है। है न?

‘हां मालिक’

पहले यह अपने राज्य में स्वेच्छा से विचरण करता रहा था। रहा था न?

‘हां, बड़े मालिक’

अब यह महाशय हमारे राज्य में हमारी प्रजा बन के आए हैं। जाहिर है कि हम उस पर मनचाहा शासन करेंगे। इससे अपने मतलब का काम निकालेंगे। निकालेंगे न?

“हां”, हुजूर

तो जाहिर है यह भी हमारे जुल्म का प्रतिरोध करेगा। मारेगा। काटेगा। आंदोलन करेगा... हड़ताल... करेगा। हमारा हुकूम बजाने से कतराएगा। कतराएगा न?

‘हां सरकार’

तो हमारा उल्लू कैसे सीधा होगा?

यही तो समझने की बात है, रामधन बाबू

तो तुम ऐसा करो कि इसकी एक अंगुल को यों तोड़ कर उसकी ही छाती में यों घुसेड़ दो यानी अपने आसामियों को अपनी कुल्हाड़ी आप पर मारने को मजबूर कर दो। हा... हा.. हा...

ऐ आह, यह कैसा तड़प-तड़प कर मर रहा है। टोटकीबाई ने तड़प कर मर रहे कंकड़े को देख कर कहा।

पश्चाताप, नहीं पुण्य कमाओ टोटकीबाई, पुण्य कमाओ। यह लो, घर जा कर इसका सुरूवा बनाओ-रामधन बाबू पूरे एक खांचे को टोटकीबाई के हवाले करते हुए कहता है।

वाह रामधन बाबू वाह, आपने तो गजब की बात कही। जब मैं लाईन में आ गई हूं। आखिर हम तो हमारे आसामियों के सूअर ठहरे। है न सूअर हम उनके?

बिल्कुल सच, बिल्कुल सच, टोटकीबाई।

यदि हमारे पास पर्याप्त भूसे-चोकर न रहे तो हम भूखे मर जाएंगे मर जाएंगे न?

निश्चय मर जाएंगे-टोटकीबाई। तू भी अब खूब पानी में उतर आई हो। अब तरकीब की बात सोची जानी चाहिए। कल पौ फटते रब्बू दौड़े न आया तो मेरा नाम टोटकीबाई न होगा।

‘तरकीब’ रामधन बाबू आश्चर्य प्रकट करता है।

वाह टोटकीबाई, वाह। क्या जानदार तरकीब सुझाई है तुने। हजारी लक्ष्मी जी से लाख भले। तुम तो हमसे भी आगे निकल गई हो। अहं, रामधन बाबू, देखो एक मोटी मांगुर कैसे छलांग मार कर जान बचा लिया, स्साला..हि... हि... टोटकीबाई एक चुहल भरी हंसी हंसती है।

पोखर काफी लंबा है। उस छोर तक पहुंचने में मजदूरों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। फिर जाल के भारीपन के कारण भी उन्हें कापफी थकावट महसूस होने लगी थी। लटकम... लुटकुम... की आवाज जोर पकड़ रही थी। अब जाल एकदम किनारे आ गया है। मालिक तथा टोटकीबाई माल का निरीक्षण कर रहे हैं। खाली खोंचे सामने लाए जा रहे हैं। जाल के इर्द-गिर्द भीड़ जमा हो रही है। सबों में उत्साह, उल्लास, उमंग की लहर दौड़ रही है। पर हाय। नियति को कुछ और ही बदना था। जब जाल बाहर निकाला गया तो सबों के कलेजे ‘धक्’ हो गए। जाल खाली, सिवाय कुछ कंकड़ों के।

“हैं, कहां गए सब” सबों के केरेजे पर बर्फ पड़ी मानो। सबों के अधर में यही प्रश्न तैर रहा है। किसी का मन

विश्वास करने से कतराने लगा कि ऐसा भी हो सकता है। यह कभी नहीं हो सकता। बड़े मालिक आश्चर्य जतलाते हैं। भीड़ रामधन बाबू को घेर लेती है। बीरू का पड़ोसी पुरता कहने लगता है—यह तो अच्छी बात नहीं, बड़े मालिक मुंह का कौर भी कोई छिन के ले जाए, भला। मुझे तो इसमें कोई भारी प्रपंच का संदेह हो रहा है। बुरा न मानें तो सरकार को एकांत में ले जाकर दो शब्द कहूं।

नहीं बंदे नहीं, काहे का बुरा मानें। चलो, एकांत में जरा मामला तो जानूं। दोनों छाया में बैठ जाते हैं। दोनों में बातचीत हो रही है।

“मालिक”

बोलो बंदे

सरकार वो आदमी को कौन बुलाया, यहां?

कौन आदमी?

वो जो कानों में काली-काली और मोटी चांदी की भारी मुंदरी (रिंग) पहने हुए हैं। सिर के बाल लाल रूमाल से बंधे हुए हैं।

ओहो, बीरू

सरकार वह मेरे ही गांव का आदमी है। मेरा पड़ोसी। अरे भई, मैंने ही बुलाया है उसे। मेरा नौकर जो रहा है। पुराना संबंध है। वर्षों तक मेरा नमक खाया है। इन मछलियों को उसी ने पाल-पोसकर बड़ा किया है। ऋषि-मुनियों की अमर वाणी है कि गरीब जनों का दिल दुखाना पाप कर्म होता है। अतः सोचा कि मुंह के कौर में एक दिन मछली की गंध तो लगा ले। ऊपर से गरीबों की सेवा का मेवा भी मिलें सो उसे भी बुला लाया।

“न मालिक न, आपने अच्छा नहीं किया।”

“क्या बंदे”

“अस्स.. आस्ते, मालिक आस्ते, वो न! बहुत खतरनाक आदमी है।”

“ऐसी बात! बोलो जरा कैसा आदमी है वह।”

“आस्ते मालिक कान इधर लाइए। मुझे डर लगता है कहीं वो सुन लेगा तो गजब हो जाएगा।”

हां.. हां... बोलो बंदे इस बार रामधन बाबू के मटमैले काले मोटे होठों और भरे चेहरे पर कुछ ज्यादा ही रौनक उतर आई है। आंखों के कोरों से कुटिल दृष्टि फेंकते हुए चौंक उठते हैं। मन उमंग से फूला न समा रहा है। उनकी व्यंग्यात्मक भंगिमा कह रही है मानो, ऊपर वाले की महिमा बड़ी, घर बैठे ही मन की मुराद मिल रही है।

बात सच ही तो है, खांचे में बंद सैकड़ों का अपने दुश्मनों (इंसानों) के प्रति क्षोभ प्रदर्शन का अंदाजा कौन लगा सकता

है पर अपनी बिरादरी में से ही कोई अपनी राम कहानी दुश्मन को बता दे तो बात फायदे की ही होगी। रामधन बाबू सारे आसामियों को केकड़े मानते हैं और अन्याय, शोषण और अधर्म जैसे खांचों में बंद हुआ देखना चाहते हैं, तो उन्हीं में से एक बिरादर पुरता कैंकड़ा बन कह रहा है।

हुजूर, उसकी स्त्री डाईन है। वो खाने वाला भूत पालती है। इसकी वजह से हमारे गांव में कोहराम मचा हुआ है। गांव के सभी आदमी इसके सारे परिवार वालों को अच्छा नहीं मानते हैं। सभा-मंडप, शादी-विवाह में कोई उनके घर नहीं बैठता। डाड़ी-पानी (पनघट) में स्त्रियां उससे दूर हटकर पानी उठाती हैं। खेती-किसानी में कोई सहयोग नहीं देता। हुजूर, मुझे लगता है कि आज के इस दुर्भाग्यपूर्ण कांड के लिए कहीं इसी मुआ का हाथ तो नहीं है?

दोनों वहां से उठ कर भीड़ में मिले जो हैं। हातिम घासिन कनखियों से उन्हें देख लेती है।

पांव लगी हुजूर। मालिक को बुरा न लगे तो मुझ घसियारिन जाति की भी कुछ सुन लें।

ऐ, क्या बात है हातिम पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ रहा, लेकिन आज...? मछलियां जाने कहां उड़ गईं।

हुजूर, उस छाया में चलो। बात बहुत गड़बड़ लगती है। वे दोनों पुटुस की झाड़ी के पीछे हो लिए। हातिम कहने लगता है—मैं कह रही थी कि इस कलमुंहे, मरजानी निगोड़े पुराना काड़ा को कौन बुलाया, यहां?

“कौन अरना काड़ा—रामधन बाबू चौंक पड़ते हैं।”

हुजूर, वो जो सबई घास-सरीखे बाल को उरमाल (रूमाल) से बंधे रखा है।

ओ हो, वह तो बीरू है। हमारा पुराना नौकर। ऊहूं उसे बुलाकर आप अच्छा नहीं किया। हुजूर, इसके पेट में झांकर देख तो नहीं, पर इसकी स्त्री तो है, एक बदनाम औरत, इलाके भर में बदनाम डाईन है, हुजूर हम मछुआ, मछुआरिन हैं। माछ का धंधा करने वाली हैं। हम जानते हैं कि सुबेरे-सुबेरे अगर इन लोगों से मुंह बोलना हुआ, तो एक भी शिकार हाथ लगने को नहीं। देखो ई आदमी आने के पहिले कितना माछ निकाला था। निकाला था न, बड़े मालिक।

“हां, हातिम, मछली तो बहुत थी”

और इस बखत। बिल्कुल खाली। हुजूर को आगे ही आगाह करती है कि इस आदमी से दूर रहें।

रामधन बाबू हातिम की बात सुनकर फिर भीड़ में मिल जाते हैं। तब तक सूर्य अपनी किरणों को समेट कर अस्ताचल की ओर चला था। सभी मजदूरों को अपनी-अपनी मजूरी लेने का आदेश होता है। मजदूर लाईन में आकर खड़े हो जाते हैं।

रामधन बाबू के पुण्य हाथ सेवाकार्य के निमित्त क्रियाशील हो उठते हैं। मजूरी कोई डुभा में ले रहा है, कोई बाल्टी में। कोई डुंटी में। कोई धोती की खोंट में और क्या मिला उन्हें? बस तीन-तीन बिजिर बलंग (पोठी), दो-दो कुबा-कुबी (चिंगड़ी), चार-चार कैंकड़े। चर्बीदार मांगुर तथा भाकुर किसी के नसीब में लिखे न थे, सो किसी को नसीब नहीं हुआ।

बीरू ने इन नन्हीं मछलियों की रात-रात भर चोर-उचक्कों, शरारती लड़कों तथा चील-झपटों से रक्षा किया था, तो क्या हुआ? वह अपनी ड्यूटी के तहत किया था। सामूहिक वितरण से बाहर उसे कैसे दिया जा सकता था, मजूरी। वह एक पोठी तथा चार बूढ़े कैंकड़े भीगे अंगोछा की खूंट में बांध कर घर लौट गया।

भीड़ छंटने के उपरांत रामधन बाबू टोटकीबाई की तरफ नजर फेरते हैं। वे एक खांचे की ओर सिर डोलाकर उसे यह जतलाना चाहते हैं कि पूरा खांचा तुम ले लो। टोटकीबाई के होंठ पर एक चंचल मुस्कराहट तैर जाती है। नया नौकर लालू को हुक्म होता है कि वह टोटकीबाई के घर खांचा को रखे। पूरा खांचा भर मछली। शायद सत्य-असत्य को मिलाकर उसमें पांच किलो मांगुर, दो किलो भाकुर तथा अन्य किस्म के एक किलो जरूर रहे होंगे। यही नहीं, एक मोछदार मांगुर थमाते हुए रामधन बाबू कहते हैं—‘और यह मेरी तरफ से बख्शीश। पर हां, याद रखना, कल बिन चोएंट मछली मेरे सूखे समंदर से छटपटा कर निकल जाए। जाल की डोरी मजबूती से पकड़ना। कहीं खुद फंसा न लेना। सरकार के बंदे बहुत चतुर जीव होते हैं। तुमसे कैफियत मांगेंगे वे हा... हा... हा...’

मोटे मांगुर की लसदार पीठ सहलाते हुए टोटकीबाई आश्वासन देती कोई फिकर न कीजिए, रामधन बाबू पत्ता का पलटना इतना सीधा नहीं।

हालांकि अब सुगीया पटना उच्च न्यायालय में बैरिस्टर है, पर घर वालों से हमेशा संपर्क साधे हुए है। ऐसा नहीं कि लाट साहिब बन अपनी मां वैया को भूल गई। असल में वही तो उसकी असली मां है। उसकी जन्मदात्री तो आज से बीस साल पहले उसे दूधमुंही में ही छोड़ गई थी। बूढ़ी मां जरगी से उसका भरण-पोषण कैसे हो पाता। ऊपर से गरीबी की कमरतोड़ मार। पापी पेट का सवाल था। रामधन बाबू के कठोर शासन में उसे आदेश पालन करना पड़ता था बीरू को। तब वह भी क्या कर पाता था।

इस बार सुगीया पटने से घर आई हुई है। सुगीया का घर आना कोई अकस्मात नहीं है। सुलोचना के विवाह का निमंत्रण भी मिला हुआ था। सो समय निकाल कर आज पटने से घर आई हुई है।

चीत्कार साहू की बेटी सुलोचना। सुगीया के बचपन की सहेली। सारे गांव में और है भी ठौर उसका? वैया के निर्मल हृदय, उसके कर्मठ व्यक्तित्व और सारे समाज में व्याप्त कूपमंडूकता को कोई भांप-परख पाया है, तो बस यही चीत्कार साहू का परिवार, बेटी की शादी में उन्हें भी निमंत्रण तो देना ही था। साहू जी उन्हें कुछ बता रहे थे।

देखो बेटी, तू यहां के हाल-खबर से बेखबर पटना रहती हो। गांव मं करैला पर नीम चढ़ा हुआ है। मूर्खों का कोई गुरु नहीं हुआ करता, जाने कब अनर्थ कर बैठे। सुना है कुछ लोग तेरी मां वैया की जान लेने पर तुले हुए हैं। अच्छा हो कोई दुर्घटना घटे, इसके पहले तू थाने में जाकर मामला दर्ज करवा दो। दारोगा बाबू जब किसी की चमड़ी उधेड़ देगा, तो इन मुओं की अक्ल फिर जाएगी। हूं, डाईन के बच्चे, कामचोर कहीं के ससाला का धंधा ही क्या? आषाढ़-सावन में दो-चार बीज बाबापुरखों के नाम खेत में छितरा देंगे और दस महीने तक उन्हें ही घर बैठे-बैठे कुतरते रहेंगे। कोई खट-मर के दो पैसा बनाया, तो वह डाईन, चुड़ैल हो गई। एक पागल सरकार जो है कि इन मुआके पीछे लाखों रुपये फूँके जा रही है। भांड में जाए इनका घर-द्वार, धर्म-कर्म, नौकरी-चाकरी-चीत्कार साहू आपे से बाहर हुए जा रहा था। सुगीया सहज भाव से इन बातों का समर्थन करती थी। पर उसकी मनःस्थिति मानो कहना चाहती हो कि-साहू जी थाने में दर्ज करके क्या होगा? अब कचहरी, पुलिस वाले भी डंडी मारना सीख गए हैं। इस बंदरबांट में पुलिस की पवित्रता भी अब कितनी बची है? फिर मुखिया-सरपंच तो उन्हीं गुमराह हुए में से एक है। ‘आई नो दि पब्लिक स्टैंड्स बिकम्स ए डेनजरस वीपन’ में जानती हूं कि अब जनता का हौवा एक खतरनाक हथियार बन गया है।

हाय मां साहू जी और सुलोचना तुम्हारा नाम बार-बार लेते रहे। तू न गई। तू तो बस... सुलोचना की शादी में न जा पाने पर सुगीया, मां से नाराजगी जाहिर कर रही है। मां कहती है—नहीं बेटी, नहीं, तू नहीं जानती। मेरे लिए सारे गांव का वातावरण दूषित हो गया है। मैं जाऊं कैसे? तू तो पटने रहती है। यहां का हाल-खबर से बेखबर रहती है। देखो—सभी ग्रामवासी हमसे नजरें चुराने लगे हैं। बड़े-बूढ़े, जवान-युवतियां सभी हमारी खेती-किसानी में हाथ बंटाने से कतरा रहे हैं। हमारे गाय-बैल एक में चरने नहीं देते। सभा-सोसायटी में हमें न बुलाते। शादी-विवाह में शरीक न होने देते साहू जी के घर जाकर क्या होता? वे केवल हमारे तो नहीं, बिटिया आज तू घर आई है, बता मैं क्या करूं कहां जाऊं? बिटिया धैर्य रखने की भी एक सीमा होती है। जब घर-आंगन में ही नरभक्षी बाघिन जरगी छिपी रहे तो। मां भी वास्तविकता को समझ

पाने में असमर्थ रही। इस दुनिया में मेरा कोई है तो बस तेरे पिता। मैं उन्हीं के बल पर जीती रही इत्ते दिनों तक। लेकिन लगता है उनसे भी अब न निभ पाएगी। सोचती हूँ यह संबंध विच्छेद कर मायके चली जाऊंगी। कम से कम ऐसा करके तेरी नानी की सुख-समृद्धि के दिन तो लौट आएंगे।

वास्तव में वैया का मन-महल धराशायी हो गया था। गांव के लोगों की कूपमंडूकता से तबाह हो गया था। कोई अगर सहारा था, तो पति परमेश्वर बीरू और आंगन पर का वह तुलसी मंडप।

रोज की तरह आज भी वह तुलसी मंडप के चारों ओर तीन फेरे लगा चुकी थी। ज्यों ही वह पौधे पर लोटे से जल ढालने लगी, देखा कि रबू के आंगन पर तीन जने खड़े हैं। तीन के तीनों जन परिचित से लग रहे हैं—पड़ोसी रबू, रामधन के गांव की टोटकीबाई तथा रबू की बड़ी दीदी की बेटी चिरपी। वैया ने तिरछी निगाहों से सबों को देखा। सब के सब रहस्यमय नजरों से इधर ही घूर रहे हैं। मानो उनकी आंखें कहना चाहती हो कि यही तो उस चुड़ैल का घर है, जिसने हमारे लाड़ले का खात्मा कर दिया है। आज डलिया बैठेगी तो कहां जाएगी स्साली।

वैया ने चट पूजा समाप्त कर दी और इस आशंका के समाधान हेतु मां जरगी से मंत्रणा करने लगी, 'क्या बात है मां वह सब (रबू, टोटकी बाई आदि) तो मुझे ही घूर-घूर कर देख रही थीं। क्या मुझसे कोई भूल हो गई है? कुछ अनर्थ तो वे नहीं करने जा रहे?

जवाब में मां जरगी, उखड़े स्वर में तुनक बैठती है और क्या होने वाला है, सारे गांव को आग लगा चुकी है और कहती है कि क्या होने वाला है। अरे क्या होने वाला है, जरगी घृणा से आंखें बड़ी-बड़ी और निगाहें तिरछी करते हुए कहना जारी रखती है, आज तक तो सबूत-अबूत के अभाव में हम बचते रहे हैं। आज रबू हम पर कहर बरपाने वाला है। उसके घर में डलिया जो बैठने जा रही है। हमें अब भगवान ही बचा सकता है। सच-सच बोल तू मायके चली जाएगी या नरभक्षी भूत पालने से बाज आएगी। तेरी बदौलत हम अपनी जान न देने को हैं... हां.. देखती नहीं वह टोटकीबाई है और वह लड़की रबू की बड़ी दीदी की बेटी चिरपी है। सुना है आज उसके घर में 'डलिया' बैठने वाली है। हाय राम! हम तो मर गए...

डलिया क्या होता है, मां? वैया एक अबोध बालिका की भांति पूछती है। जरगी जल-भुन कर बोलती है—हूँ बड़ी बन आई है सीता-सावित्री, बीसियों जानें चट कर गईं और डलिया का मतलब पूछती है? अरे पगली लोग कांटा से कांटा

निकालते हैं। टोटकीबाई रबू की संबंधी चिरपी को डलिया पर बिठाएगी। उसे तीन दिन तक भूखा रखा गया है। उसे मंत्र से बंधे काठ के आसन पर पूरब दिशा में मुंह करके बिठा दिया जाएगा। तब टोटकीबाई उसे मंत्रों से रूम (वशीभूत) करेगी। तब उसे डाईन का पता लगाने का हुकूम दिया जाएगा। वह दौड़ी-दौड़ी डाईन के पास चिपक जाएगी। यह सब होते ही सारे गांव की भीड़ उस पर उमड़ पड़ेगी। उसे सार्वजनिक रूप से 'डाईन' घोषित कर दिया जाएगा। अतः मेरी बात मान मेरे बेटे की जान बचा। अभी भी समय है, तू मायके चली जा।

कुछ क्षण बाद रबू के घर से धुआं उठने लगता है। हवा में धुएं की गंध लहराने लगती है। यह धुआं नहीं, सरसों के कच्चे बीज के आग में भस्म होने की गंध है। घर में पूर्ण सन्नाटा है। बाहर-भीतर सभी खिड़की दरवाजे बंद हैं। वैया की तुलसी मंडप वाली खिड़की से धुआं निकलना जारी है।

अब धुआं धीरे-धीरे बढ़ रहा है। सुगंध, दुर्गंध मिली हवा नाक में घुस रही है। तत्क्षण रबू के घर के भीतर से चट-चट, चर-चर चर की आवाज आने लगी है। जैसे सुदूर पहाड़ की ढलान पर सूखे पत्तों के ढेर में आग लगी हो। आवाज के साथ बीच-बीच में किसी नारी की आवाज में मंत्रोच्चारण-सी वाणी भी आने लगी है।

जय मां-काली कलकते वाली, गौरी शंकर भूतनाथ, रंगरूढ़ी महादेव महादेव, बुचा महादेव-बचा महादेव...डाईन कुदरा बेसाई कुदरा...साला जमिये तब दो, पिति नमिये तबुदो...जय गोबर्धन, कपील मुनि...हरि औ...ओम... (जय महाकाली कलकते वाली, रंगरूढ़ी महादेव, बूढ़ा महादेव, बुचा महादेव, अगर कोई डाईन हो तो उसे खोज निकाल कर हमारे सामने पेश करो)।

वैया के घर में कोई न था। मां जरगी गांव के बाहर चुआं (कुआं) से पानी लाने गई हुई थी। सुगीया पटना जाने की तैयारी में सुलोचना से मिलने गई हुई थी।

अहं, जरा खिड़की के छिद्र से देख लूं, भीतर माजरा क्या है—वैया मन ही मन कुलबुलायी। सो वह खिड़की से जा लगी.

.. वह भीतर क्या देखती है कि जहां दुर्गा की लाश पड़ी थी, वहां गोबर से लिपायी की हुई है। बीच में कुछ धान का 'कुदहा' रखा हुआ है। उसके ऊपर काठ का एक आसन बिछा है। आसन के ऊपर 'अरवा' चावल के सादे 'घोल' सी रेखाएं खींची गई हैं।

अर...र...र... हाय, ये रेखाएं नहीं। यह तो नरमुंड का चित्र है। चिस्पी आसन के ऊपर स्थिर मुद्रा में बैठी है। मुख पूरब की ओर है। सिर के बाल खुले एवं गीले हैं। सामने

पीतल का एक लोटा रखा हुआ है। लोटे पर भी रेखाएं खींची गई हैं। उसके मुंह में आम का डंठल खोंसा हुआ है। फिर एक खपड़े में दहकते अंगारे रखे हुए हैं। इसके इर्द-गिर्द साल पत्ते के दोने में कुछ चीजें यत्र-तत्र रखी हुई हैं।

एक दोने के दीये को टकटकी लगाकर देख रही है। हथेली की दरार में एक गोलीन का फूल तथा बेल-आंवले का पत्ता खोंसा हुआ है। कमर पर गोलाकार सिंदूर का चांद बना है। गले पर बिना धोए सूत के कपड़े लाट बंधे हैं। टोटकीबाई तथा रबू सामने बैठे हैं। अगल-बगल गांव के गणमान्य जन और उसके हितैषी खड़े हैं। रबू दोने पर से कुछ सरसों के बीज आग के हवाले किए जा रहा है। साथ ही तेज धुआं से चटपट की आवाज निकलती है। टोटकीबाई के हाथ में एक पुरानी बेंत की छड़ी है। माथे पर सिंदूर का गोलाकार टीका है। दोनों ओर कान में बेल तथा आंवले के पत्ते दबे हुए हैं।

अब विचित्र विधि से कार्य आरंभ हो रहा है। टोटकीबाई ने तीन बार बेंत की छड़ी को चिरमी के चारों ओर घुमाया और महाकाली का नाम चीखते हुए तीन बार आम की डाली से लोटे का जल उस पर छिड़का। ऐ मां, यह क्या हुआ। जल के छिड़कते ही चिरपी का जोड़ा हाथ कांपने लगा। झर...झर...

..

और अब तो झर...र...र... बहुत ही जोर से। अरे अब सारा शरीर कांपने लगा है। अरे... यह तो कहीं धक्का खा के गिर पड़ेगी। पकड़ो...पकड़ो... हे शिव शंकर अब क्या होने वाला है? अब तू ही मुझे इस संकट से उबार सकेगा। ये मूर्ख-अपढ़ कूप-मंडूकता की गर्त में पड़े लोग अनजाने में क्या न कर बैठे? अरे वह तो भागना चाहती है। अरे वह क्या अपुष्ट आवाज आ रही है... बया...ब...ब... या...ब...ड... डाई...न, है... अरे मर गई, मर गई मैं, हे शिव हे शिवशंकर महादेव गणेश... पार्वती मेरी जान बचा...हे संकटमोचन गंगा... सरस्वती... यह तो मेरा नाम ले रही है.. शंभू... आगे वैया कहती है कि तब तक रबू के घर में कुहराम मच गया था। मेरा नाम पुकारते ही सबों की चमकती आंखें हमारे मकान की ओर इंगित होने लगीं। जैसे तत्काल यदि कहीं दीख जाऊं तो वे जिंदा ही नोंच खा लें।

चिरमी के मुंह से अपना नाम सुनकर मेरे पैरों तले की जमीन खिसक गई। मैं सोच रही थी कि अब अंधविश्वास का अणुबम हवा में फूट चुका है। टोटकीबाई और जोर से मंत्रोच्चारण करने लगी है। रबू भी और सरसों के दाने आग के हवाले किए जा रहा है। चिरपी का कांपना भी अब तीव्रतर होने लगा है। ऐ मां गो। चिरपी भागी-भागी हमारे दरवाजे पर आ धमकी। वैया डाईन...वैया डाईन। दुर्गा दादा... तुम्हें बुला

रहा है।... वैया डाईन ब... ब... या.. ड...डाई...न... लगी चिल्लाने। हूं, वह सीधे मेरे पास आई और पैरों पर चिपक गई। पलक भरते गांव भर का हुजूम हमारे घर को घेर लिया। भीड़ में से किस्म-किस्म की आवाजें आने लगीं-कोई कहता डाईन वैया को मार डालो...डाईन को मायके भेज दो...डाईन को जिंदा गाड़ दो...

दो क्षण बाद, टोटकीबाई फिर लोटे का जल चिरमी पर छिड़कती है। जल पड़ने के साथ ही वह साधारण अवस्था में लौट आती है।

ऐ मां! यह फिर क्या मुसीबत। बड़ी ही धृष्टता से रबू ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बाहर खींच लिया। सारी भीड़ मेरे पीछे-पीछे लगी हुई है। भीड़ में वही चिल्लाहट... वैया डाईन को... इतने में मां जरगी कुआं से पानी लेकर आ गई, पति बीरू भी जंगल से लौटकर घर आ गए थे। पर किंकर्तव्यविमूढ़ हालत में वह खामोश है। मां भी चुप है। शायद मन ही मन मुझे कोसती रही होगी। मैं भी क्या कहती। एक कुत्ता और सो कुत्ते वाली बात हो रही थी। अंतःकरण में द्वंद्व की आग धधक रही थी। पर मन मसोस कर दुबक पड़ी हूं। सारा का सारा गांव जो हमारे खिलाफ मुहिम छेड़ रहा है।

मन कहता-पुलिस का सहारा लूं? नहीं, नहीं, पुलिस आकर क्या करती, खाक? अधिक से अधिक यही न होता कि दारोगा बाबू किसी गंवार से खाट बाहर करवाते और सुर्ती मलते रहे होते। गांव वालों को कुछ हंकार बता देते कि आइंदा ऐसी लड़ाई-भिड़ाई मत करना। चैन से मिलजुल कर रहो। और नहीं, तो पंचायत के मुखिया को बुला-बैठाकर कुछ आम हिदायतें दे जाते, बस।

मुखिया तो वही आदमखोर रामधन का ही आदमी है। नहीं, नहीं पुलिस-उलिस नहीं चाहिए मुझे। अगर मेरा दाना-पानी अभी शेष बचा है, तो ऊपर वाला पलट कर मुझे देखेगा ही। आगे क्या हुआ?

भरी भीड़ में, मेरे चारों ओर चक्कर लगाते हुए रबू चिल्ला-चिल्ला कर गांव वालों को आगाह किए जा रहा है-गांव के सभी भाइयों और बहनो! अब घर-घर जाकर बात जतलाने की कतई जरूरत नहीं रही। गांव में किसका करेजा काला तथा किसका लाल, सब आपने देख लिया। टोटकीबाई की किरण से अगहन मास के तेल चुपड़ पीठा के अंदर उड़द का छिपा दाना देख लिया है आपने। गांव में कौन रक्षक तथा कौन भक्षक, यह भी जान लिया है। आज टोटकी के परम सौभाग्य से हमें पता चला कि किस वजह से किसी की गोद खाली होती रही। सुहाग लुटता रहा। घर-आंगन से धन की लक्ष्मी भागती-फिरती होती रही। तो भाई अब भी किसी को शक है

कि वैया डार्इन नहीं है, चुड़ैल नहीं है?

तत्क्षण भीड़ में से समवेत स्वर में गगनभेदी आवाज सुनाई पड़ती है—हां...हां... वैया डार्इन है, चुड़ैल है। उसे मार डालो। जला डालो जान का बदला जान और... नहीं, सिर मुड़ा कर गांव में घुमाओ... नहीं-नहीं उसे जिंदा ही गाड़ डालो...

हाय, अगहन मास के ठिठुरन में ये उमस भरे क्षण मैं मन ही मन सिसकने लगी। पश्चिम में सूरज ढल रहा था। वायुमंडल में शीतलता बढ़ रही थी। ठंड पाकर आंगन पर के तुलसी का पौधा उल्लसित हुआ जा रहा था। पर वैया और बीरू के चेहरे की रौनकता, क्षितिज पर उतर ही लालिमा के साथ उतरने लगी थी।

बीरू ने किसी तरह भीड़ को समझा-बुझा कर इस बखेड़े से पिंड छुड़ा लिया था। निश्चय ही उसके अपाहिज और सूखे होठों से कोई स्वीकारात्मक एवं समर्पण की भावना फूट पड़ी होगी। तभी तो भीड़ खुशी में पागल हुए चिल्लाते जा रही थी-टोटकीबाई की जै... रब्बू काका की जै... वैया डार्इन मुर्दाबाद... बाबू अमर हो वो वो दो।

वैया तथा बीरू के प्रसंग को लेकर कोई पांच-छह साल तक थू-थू चलती रही। गांव-पाड़ा के सभी बूढ़े-बच्चे, स्त्री-पुरुष, भला-बुरा मानस का मन इस इस कुचक्र के साथ घूम रहा था, जैसे फूलों की घाटी में कोई लाश पड़ी हो और सारे वातावरण को दूषित किए जा रही हो, मानो।

पर हां, यहां गांव-घाटियों की ही तो बात कर रहे हैं। दिल्ली, पटना की नहीं। दिल्ली, पटना तो इन अंधेरी घाटियों से कोसों दूर हैं। फिर वे तो सतरंगे प्रकाश की किरणों से जगमगाते शहर हैं। चारों तरफ सपाट मैदान-मैदान के बीचों-बीच तेल चुपड़े, झिल-झिल करते सड़क हैं। उन पर चमचमाती गाड़ियां दौड़ती हैं। सड़क के किनारे आलीशान मकान के आंगन-आंगन में फूलों की बगिया सजी है। उन बगिया में मालिक-मालकिनों के जच्चे-बच्चे फूलझरी लिए उछल-कुद मचा रहे हैं।

और इधर गांव में?

कहां तेल से चुपड़ी सड़क। कहां आलीशान मकान। कहां सतरंगी प्रकाश की मनोरम किरणें।

इस तरह अपने स्वजनों, परिजनों के मुख से अपमान के शब्द सुनते-सुनते वैया का तीसरा साल निकल गया। अब चौथा चल रहा है। इन तीन सालों की अवधि में कितनी ही तलवार उसका गला धड़ से अलग करने को तरसती रहीं।

वैया और बीरू यह सब जानकर भी अनजान बने रहे। वे तो अपना सारा हाल तुलसी मंडप पर बात करने वाले शिव शक्ति के हाथों ही छोड़ गए हैं। सुख की घड़ी में दुख के बादल

गरजे, दोनों हालत में शिव का वरदान समझ हलाहल भी पी जाना है।

एक दिन मिसर जी ने अपने धंधे की आड़ में टोटकीबाई को वैया के घर भेजा। उसे भेजने का असली मकसद गांव की स्थिति का जायजा लेना था कि वहीं वैया के प्रति लोगों के मन में घृणा की भावना में कमी तो नहीं आ रही है।

टोटकीबाई ने आकर मिसर जी को बताया कि गांव के भीतर ज्वालामुखी का लावा पक कर तैयार हो चुका है। बहुत संभव है सुराग पाते ही फूट पड़े।

यह सब सुनकर अपने मोटे सूखे ओठों के कोने पर एक मलिन मुस्कराहट लाते हुए रामधन ने उसे चुप कर दिया। उस समय रामधन की भंगिमा में मौन का पुट था, जो कहना चाहता था कि इस नाजुक और लाभदायक परिस्थिति का भरपूर लाभ उठाओ। वह इन सारे अवसर पर निरर्थक भाव दर्शाते हुए ग्रामीण संवाद की मोटी सुर्खियों पर नजर गड़ाए रखा।

अगहन मास की आखिरी तथा पूस की शुरुआत थी। मौसम सुहावना था। पूस की काली रात में बहने वाली ठंडी हवा का झोंका चल रहा था। पहाड़ी पगडंडियों के किनारे खड़े अमलतास, सीसम तथा शहतूत के पत्ते इस मौके में सरसरा के झर रहे थे। बिरसी गा रही है—

आटा माटा विरको-ताला रे

ओकोए गो रूतू सड़िया!

पीड़ी कुंटड़ी मरचा बादी रे,

चिमय गो बनम रूपबू ले!

ओकोए गो रूतू सड़िया

सेनो: गे मोने ई आ

चिमय गो बनम रूपबू ले,

विरिद् गे साना जा

सेनो गे मोनेई आ

जी रटि अलय बलाया,

विरिदगे सानांग:

कुड़म रटि दो पोल दो पोला

(इस) अखंड जंगल के बीच कौन बांसुरी बजा रहा है

(इस) सपाट मैदान में कौन 'केंदरा' छेड़ रहा है।

कौन बांसुरी बजा रहा है।

जाने को जी मचल रहा है।

(उससे) मिलने को बेताब हो रही हूं

जाने को जी मचल रहा है

मन दुलमुल हो उठा है।

मिलने को बेताब हो रही हूं

छाती तक धड़कने लगी है
अहं, देखो कईरी भी बिरसी से स्वर मिलाने लगी है
आटा-माटा विरको ताला...

और! ये सिर पर साठ-साठ किलो की लकड़ी की
गठरियां! अहं, नहीं ये तो रूई के ढेर मानो।

दर्इया रे दर्इया... कल मेले से क्या-क्या लाओगी? हे..
. हे... हे... उस एक आंख वाली बुढ़िया से चूड़िया! रघु
मोसाई के यहां से साखा? कईरी विरसी से ठिठोल मारती है।
नहीं रे नहीं, वह सब न मैं तो... मैं तो... अहं... अं...।

हां दीदी बोल-बोल क्या लेगी, हां मैं तो, ... अहं... मैं
तो... मैं तो समझ ली ई... ई..., अह... कईरी जिद्द पकड़ी
हुई है।

धत् पगली, चुप भी रह। अर... र... र... नहीं रे बोल तू
क्या समझी है? बिरसी चहक उठती है।

ईश... श... तुम्हें उनके लिए मुंदम (रिंग) नहीं लाना है?
कईरी दीदी का मतलब जान लेती है।

चुप भी रहो कईरी, चुप... वह कुल्हन तो कब का मर
चुका होगा। सोने-चांदी तो दूर, पांच पैसे का पकौड़ा भी नहीं
खरीद देता है। उसके लिए भला मुंदम कैसे खरीद लाती। हूं,
मरजानी-खुसट उसकी आंखें कोवा नोच फोड़े। देखो कल मेले
में नजर आया, तो उसकी खाल खींच लूंगी! मुझे तो उस
ददियल के पास जाना ही होगा। कईरी... बिरसी एक बनावटी
गुस्सा कईरी पर उतारती है।

हैं, क्या नेना खोपा! झुर... झुर... कईरी उत्सुकता से
पूछती है। नहीं रे, नहीं दो पीस ब्लोज-बिरसी कहती है।

ऊई, मार्के की बात कही है दीदी। जर्सीदार वाला बांह
काटा! पीछे बटन वाला! किसके लिए? अपने लिए? कईरी
की उत्सुकता और बढ़ जाती है।

नहीं रे, नहीं, वैया भाभी ने कह रखा है कि... बिरसी पोल
खोल लेती है।

हे राम! बुरा न कहे, मैं तो वैया भाभी को एकदम भूल
ही गई, भला। हां बहुत फबेगा उसके शरीर में कटी बांह और
जरीदार ब्लाऊज जरूर लाना। अहं... हं... हं... कईरी खुशी
से बेताब हो जाती है।

घर पहुंचने के बाद लकड़ी की गठरी डींग में रख दिया
उसने वे दौड़ती-भागती भाभी जी से उलझ गई-भाभी...ई...ई...
..जी...ई...ई... अरे कहां हो भाभी ई...ई, जी... ई... ई...?

क्या रे वीर... रे... सि... ई... मैं तो इधर हूं... ऊ...
तुलसी मंडप की तरफ...

चुलबुल कईरी ने भाभी को देखते ही जवाब-तलब करना
शुरू कर दिया। कल हम लोग सुकन मेले जा रही हैं। हां

भाभी जी हमारे बड़े मालिक ने हमें तीस रुपये दिए हैं।

हां भाभी जी, साहू जी ने हमें तीस रुपये दिए हैं। हम
मेला अवश्य चलेगी। चलो आपको भी... बिरसी ने कईरी का
समर्थन करते हुए कहा।

वे दोनों मिलकर वैया से आग्रहपूर्वक कहती हैं-हां भाभी
जी, कल हम अवश्य चलेंगी, मेले, आप चलेंगी न। आप कह
रही थीं कि एक जरीदार ब्लाऊज... रबड़ की गुड़िया... हम
भैया से...

ऐं, तेरे भैया को गोली मारो। बोल उनके द्वारा भेजी जाऊं
तो तुम लोग क्या-क्या खिलाओगी वहां? मैं तो बहुत सा
रसदार मिठाई वाली हूं-अहं... हा... हा...

वे भी नहले पे दहला दे मारती है-अरे भाभी जी खाने-पीने
की कोई फिकर न करना। खट्टा, मीठा, चटपटा... अहं,
खट्टा चाहोगी तो जल से आए पके बेर। नमकीन चाहो तो
अरवा चावल के गुलगुले... और बद्री के रसदार, गर्म जलेबी।

वैया कहती-ईश... श... रसदार जलेबियां? पठारी जंगल
के पीछे क्यों। बालुई मैदानी भाग के चटपट बेर! तो मैं अवश्य
चलूंगी मेला हां... हां... अवश्य।

दूसरे दिन वे सब मेले गईं। पर यह मुसीबत। आह, मुझे
चक्कर-सा लग रहा है। आह मैं गिर पडूंगी। हाय भगवान!
क्या आफत आ गई। चलो जल्दी घर लौट चलें। कईरी, जरा
नस पकड़ो, सिर धुनो। हाय, जी मचला जा रहा है। बिरसी
भैया को बुलाओ... हाय... मैं तो मर गई... बद्री हलवाई को
पकड़ो... उसने मुझे वि... वि... ष.. दि... दि... दिया है।

वे मेले से किसी तरह घर लौट आई थीं। घर आते ही वैया
खाट पर निढाल पड़ गई। वीरू के बहुत खुशामद करने पर
कुछ आखिरी शब्दों के साथ पलकें खुलीं। वि... वि... स्स..

. बद्री ने मुजजझे... जलेबबी में वि... व... ष.. दिद या.
.. इसके साथ ही वैया की आंखें सदा के लिए बंद हो गईं।
कान और तलवे ठंडे पड़ गए। मुंह से फेन निकलने लगी।

सारा शरीर जैसे जला हुआ काठ बन गया। उसी दिन गोधूलि
के समय पेट का धौंका भी बंद हो गया। चारों ओर अंधकार
का राज्य फैलने लगा। दूसरे दिन प्रातः नया सूरज नई उम्मीदों
को लेकर प्रकट हुआ। सूरज, आशा, उमंग, उम्मीदों का स्रोत
सूरज! वह अपनी राह पर शनैः शनैः बढ़ता जा रहा था। इसके

साथ ही वायुमंडल पर छाया कुहासा छंटने लगा था। तपिश
बढ़ रही थी सूरज की गर्मी की तपिश रोजमर्रा के काम पर
जाने वाले मनुष्य के जोश-खरोश की तपिश! न्याय-अन्याय
के क्षेत्र में पदार्पण करने की तपिश! रामधन मिसर के
हृदयांगन में यह नया सूरज महान प्रेरणादायक और शुभसंदेश

वाहक के रूप में प्रस्तुत है। वह कह रहा है मानो-हे मानव,

अब तुम्हारे रास्ते साफ हो गए हैं। तुम निर्बाध गति से अपनी राह पर बढ़े जा। तुम्हारे हाथों बिठायी गोटी अब ठीक जगह पर जा लगी है। वैया अब मर चुकी है। बीरू का दाहिना हाथ अब टूट चुका है। जरगी के मगज में घुन लग चुके हैं। तुम जनता के बीच घड़ियाली आंसू बहा कर उनकी नब्ज को कैद किए रखो। जनता के दिल को जीतो। लोगों के बीच आदर्शवाद की वाहवाही लूटो। जाओ अब इलेक्शन सन्निकट है। ग्राम प्रधान बनकर देश-सेवा में जुट जाओ।

वैया की मृत्यु की खबर सुनकर रामधन ने अपनी धर्मपत्नी से संदूकची की चाबी मांगी। फिर उसे मुट्ठी में कसकर पूरब की ओर मौन मुद्रा में खड़े होकर सूर्य भगवान का नाम लिया। फिर संदूकची को उतनी ही श्रद्धा से प्रणाम किया और खोला। वहां से हजार रुपये की कुछ गठरियां निकाल कर टोटकीबाई के घर जा पहुंचा।

ईश... श... बख्शीश। काहे ले बख्शीश मालिक रहने भी दो, इसे! रामधन के हाथ में रुपये की गठरी को गिद्ध दृष्टि से देखते हुए टोटकीबाई ने पूछा।

लो तोहार पांच सौ रुपये, ले ले। गिन ये हजार के करीब रबू को दे आ। बाकी हजार हातिम घासिन का है। अं आ, जल्दी जा जल्दी।

लेकिन बड़े मालिक, यह क्यों?—टोटकीबाई पशोपेश में पूछती है।

धत्, चूप भी रह पगली। तू क्या समझेगी। लाखों रुपये क्या यों ही फूंक डालता। तुम्हें पता नहीं। तुम लोगों ने मेरे स्वर्ण संसार का निर्माण किया है। जहां मैं सोना उगाऊंगा, सोना हां... हा... हा... अरे सुन पगली, सुन.. रामधन अपनी पोल् खोलता है।

तुलसीवाले आंगन पर वार्तालाप करते समय रबू ने सुन रखा था कि गांव वालों के साथ वैया भी मेला जा रही है। वह बंदी हलवाई के यहां गर्म जलेबी खाने जाएगी रसिया के यहां रसदार पान खाएगी। अमुख... अमुख... बस और क्या था। हातिम घासिन ने वह संजीवनी बूटी तैयार करवाया। इसे बंदी के पास आम हिदायत के साथ दे आया कि जब वैया दुकान में आए, तो इस बूटी को जलेबी के खोल में प्रविष्ट करा दे। बंदी मेरी योजना को कार्यान्वित करने में कामयाब हो गया था। संजीवनी बूटी अचूक दवा थी। वैया के पेट में अंदर होने के कुछ पहर बाद वह टन बोल गई, हा... हा... हा... तुम रबू तथा हातिम यदि मेरी मदद न कर रहे होते, तो यह शुभ कार्य संपन्न होता? इसीलिए बस, यह कुछ बख्शीश।

आज का अस्ताचलगामी सूरज क्षितिज पर छिप जाने की तैयारी में है। गोधूलि की घायल किरणें आम जनता को

सूचित कर रही हैं कि अगले पांच-छह महीने के बाद ग्राम प्रधान के लिए रामधन बाबू भी दावेदारों में से एक होंगे। यही नहीं, दया और धर्म के रक्षक के रूप में जनता उन्हें चाहेगी। उनकी पूजा करेगी। गले में विजय और सम्मान की माला पहनाएगी। कोर्ट बाबू, दारोगा बाबू, हकीम, जमाल सभी उनके नेहछोह से पिघल जाएंगे। उसकी परिधि पर घूमने वाले अन्य ग्रह-रबू बनेगा। हातिम घासिन, ग्राम रक्षा वाहिनी के बावर्चीखाने का संचालन करेगी। उसके पति एक अनन्य सहपाठी ग्राम रक्षा दल में शामिल हो जाएंगे। रामधन बाबू की तूती बोलेगी, हर तरफ।

इधर वैया का निष्प्राण शरीर खाट पर निश्चल पड़ा हुआ है। उसके मुखमंडल से निकलने वाली अमर ज्योति की आभा मानो कह रही हो कि जो कुछ भी मेरे साथ हुआ, वह धोखा है। कपट है। अन्याय है। असत्य है। कूपमंडूकता है। वैया मर कर भी अमर है। उसका नाम, यश, कीर्ति अमर है।

सूर्यास्त हो गया।

चारों तरफ अंधकार, घुप्प अंधकार फैल रहा है। महाकाश छोटे-छोटे काले घने बादलों में घिर रहा है। पूर्णिमा के चांद का दमकता चेहरा कभी दीख जाता, तो कभी छिप जाता। तारे, नक्षत्र, ग्रह सबके सब गायब हो रहे हैं।

घर के अंदर बीरू की मां जरगी कुकुर खांसी से तबाह है। आंगन पर तुलसी का पौधा हफ्तों से जलाभाव के कारण झुलस गया है।

बीरू कभी अपनी प्राणप्रिय वैया के बिछुड़े हुए शरीर को देखता है, तो कभी बाहर आकर चांद, तारों को देखने का प्रयत्न करता। छत के ऊपर वैया द्वारा रोपे गए गोल्लीन के पत्ते हवा के झोंके से सर-सर की आवाज दे रहे हैं।

और इस सरसराहट को सुनते-सुनते बीरू की न जाने कब आंख लग गई।

○

समाप्त

संपर्क : सावित्री विला, गांव-तीरला, पोस्ट-अनिगारा, वाया-खूंटी, जिला-खूंटी, पिन 835210 (झारखंड) मो. 09931100911

बिहार की राजनीति में अति पिछड़ों की भागीदारी : एक विश्लेषण

स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक के बावजूद बिहार की राजनीति पर जब हम विहंगम दृष्टि डालते हैं तो जातिवादी राजनीति की एक तस्वीर नजरों के सामने प्रकट होती है। बिहार की राजनीति में एक बहुत बड़ी आबादी आज भी हाशिए पर है। मेरा इशारा अतिपिछड़ा वर्ग की ओर है। बिहार की कुल जनसंख्या में अति पिछड़ा वर्ग की आबादी लगभग 35 प्रतिशत है।

वर्तमान में 105 जातियां अति पिछड़ा वर्ग में शामिल हैं, जिसमें 27 जातियां इस्लाम धर्म मानने वाली हैं। इतनी बड़ी संख्या के बावजूद राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व नाममात्र ही है। यह बात आश्चर्यजनक एवं अफसोसजनक इसलिए है कि बिहार में पिछड़ा वर्ग आंदोलन का लंबा इतिहास है। साथ ही पिछले 27-28 वर्षों से लगातार वहां सामाजिक न्याय के नाम पर गठित सरकारों का शासन रहा है, जिसके अगुआ पिछड़े वर्ग की राजनीतिक भागीदारी के नारे पर ही राजनीति में आए हैं। किन्तु पिछड़े वर्ग की राजनीति भी जातिवाद की भेंट चढ़ गई, जिनके विषय में डॉ. राम मनोहर लोहिया ने कहा था कि यदि इस आन्दोलन को सही नेतृत्व नहीं प्राप्त होता है, तो यह संभव है कि इस आंदोलन से प्राप्त अधिकारों का अपहरण पिछड़े वर्ग की कुछ खास जातियां कर लेंगी, जो संख्या बल में जातीय लिहाज से अधिक होंगी।

डॉ. लोहिया ने यह भी आशंका जाहिर की थी कि यदि ऐसा हुआ तो पिछड़ी जातियों की बहुत बड़ी आबादी अपने राजनीतिक अधिकारों से वंचित रह जाएगी। डॉ. लोहिया का कथन वर्तमान परिदृश्य में बिल्कुल सत्य प्रतीत होता है। बिहार का राजनीतिक नेतृत्व पिछड़े वर्ग के नेताओं के ही हाथ में है, किन्तु वह कुछेक खास जाति तक सिमट गई है। अधिकांश जातियां अभी भी अपने अधिकारों को प्राप्त नहीं कर पाई हैं। खासकर अति पिछड़ी जातियों की स्थिति में अभी भी सुधार नहीं हो पाया है। संसद एवं विधान मंडलों में अति पिछड़े वर्गों की संख्या से यह स्पष्ट हो जाती है। वर्ष 1950 से अब तक के आंकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि 1967 से पहले तक अति पिछड़ों का एक भी प्रतिनिधि लोकसभा में नहीं पहुंच पाया था।

1950 से 1999 तक बिहार से लोकसभा के लिए निर्वाचित सदस्यों की संख्या निम्न हैं:

वर्ष	उच्च वर्ग	पिछड़ा वर्ग	अति पि. वर्ग	अ.जा.	अ.ज.जा.	मुम./बंगाली/क्रिश्च अन्य
1950	13	2	-	4	3	5
1952	31	3	-	8	6	3
1957	33	2	-	10	4	2
1962	28	9	-	9	5	2
1967	27	8	1	11	5	2
1971	22	15	-	7	5	4
1977	27	8	3	8	5	3
1980	23	11	1	7	6	5
1984	26	8	1	8	6	5
1989	21	14	1	8	5	4
1991	13	18	-	8	6	7
1996	15	18	2	8	5	5

1998	13	19	2	8	5	7
1999	19	11	3	6	6	5

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि जहां पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व 5 से 25 प्रतिशत हो गया, वहीं अति पिछड़ों को इसका लाभ बिल्कुल भी नहीं मिला।

इसी प्रकार बिहार से राज्यसभा में 16 सदस्य चुने जाते हैं। अब तक अति पिछड़े वर्ग से राज्यसभा के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है :

वर्ष	सदस्य
1992	1
1996	1
1998	1
2002	1
2004	3

वर्तमान में राज्यसभा में अतिपिछड़ा वर्ग से मात्र 2 सदस्य हैं। इसी प्रकार वर्तमान लोकसभा की 40 सदस्यों में मात्र 4 सदस्य अति पिछड़े वर्ग के हैं।

बिहार विधान सभा के 1967 से 2005 तक के आंकड़ों के अनुसार :

वर्ष	उच्च वर्ग	पिछड़ा वर्ग	अति पिछड़ावर्ग
1967	133	76	6
1969	122	88	6
1972	136	71	5
1977	124	87	5
1980	120	90	6
1989	198	87	6
1990	105	101	8
1995	56	147	14
2000	157	84	14
फरवरी 2005	62	128	14
अक्टूबर 2005	70	115	19

वर्तमान विधानसभा में अति पिछड़ावर्ग से मात्र 14 सदस्य हैं।

वर्तमान विधानसभा में जबकि पिछड़ा वर्ग का प्रतिनिधित्व 55 प्रतिशत है। बिहार में गठित मंत्रिमंडल में भी अति पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधित्व का अभाव रहा है। कुछ मंत्रिमंडलों का विवरण निम्न प्रकार है:

मंत्रिमंडल	वर्ष	उच्चवर्ग	पिछड़ावर्ग	अति पिछड़ावर्ग	मुस्लिम	अजा/अजजा
बी.एन.झा	62	58	8	-	8	24
के.बी.सहाय	63	40	20	-	20	20
महामाया प्र. सिंह	67	67	20	7	7	-
दरोगा प्र. राय	70	33	20	-	13	33
केदार पांडेय	72	38	23	-	15	23
अब्दुल गफूर	73	38	25	5	10	24
जगन्नाथ मिश्र	75	40	20	-	13	27

कपूरी ठाकुर	77	29	38	4	13	17
रामसुन्दर दास	79	50	20	-	15	15

(आंकड़े प्रतिशत में हैं)

वस्तुतः राजनीतिक पार्टियां अति पिछड़ों को समुचित टिकट ही नहीं देतीं। यह इन दलों द्वारा दिए गए टिकटों से स्पष्ट होता है। फरवरी 2005 एवं अक्टूबर 2005 में सम्पन्न बिहार विधान सभा चुनाव में विभिन्न दलों द्वारा दिए गए टिकटों से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी राजनीतिक दल अति पिछड़े वर्ग को समुचित प्रतिनिधित्व देने के प्रति सजग एवं गंभीर नहीं है। फरवरी 2005 में विभिन्न दलों द्वारा दिए गए टिकट के आंकड़े इस प्रकार हैं :

पार्टी उम्मीदवार संख्या

जदयू	10
भाजपा	9
राजद	7
लोजपा	11
कांग्रेस	3
सीपीआई	3
सीपीएम	2
बसपा	19
भाकपा	14
सपा	4

इसी प्रकार अक्टूबर 2005 के आंकड़ों के अनुसार

पार्टी उम्मीदवार संख्या

जदयू	12
भाजपा	8
राजद	8
सीपीआई	3
सीपीएम	2
बसपा	17
लोजपा	17
माले	12

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि कोई भी राजनीतिक दल अति पिछड़ों के प्रति ईमानदार नहीं है। ऐसे में यह यक्ष प्रश्न खड़ा होता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 6 दशक के बावजूद यदि समाज के एक-तिहाई से अधिक वर्ग को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं प्रदान किया जा सका तो उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति क्या है? किसी भी समाज के लिए उसकी जनसंख्या की इतनी बड़ी आबादी का इस प्रकार उपेक्षित स्थान स्वतंत्रता, नैतिकता एवं सामाजिक न्याय की दृष्टि से उचित नहीं है। खासकर लोकतान्त्रिक व्यवस्था में समुचित प्रतिनिधित्व का न होना राजनीतिक व्यवस्था पर कई सवाल खड़ा करता है। यह देश और समाज के विकास के लिए भी उचित नहीं है। मंडल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में रखा था—“किसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को उस देश के शासन में भाग लेने के लिए वैध अधिकार एवं आकांक्षाएं प्राप्त हैं।”

बिहार में अति पिछड़ों की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए मंडल कमीशन की उपर्युक्त उक्ति अक्षरशः लागू होती है।

○

संपर्क : पोस्ट डॉक्टरल फेलो
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

लिम्बाले की कहानियों में दलित चेतना

आज के समाज में जाति की समस्या दलित के सामने कठिन रूप में आती है। जाति के नाम पर दलितों का अपमान करना, उनकी हंसी उड़ाना भारत के इतिहास से हम जानते हैं। वर्तमान में दलित साहित्य ने अपनी एक अलग पहचान, अस्तित्व और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इस युग के प्रमुख दलित साहित्यकार हैं—ओमप्रकाश वात्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, सूरजपाल चौहान, शरणकुमार लिंबाले, श्यौराज सिंह बेचैन, कुसुम वियोगी, कंवल भारती आदि। इन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा दलित समाज को एक नया जीवन दिया है और अपना एक अस्तित्व प्राप्त किया है।

पीड़ाओं की तीव्रता शरणकुमार लिंबाले की रचनाओं में सटीक मिलती है क्योंकि उनका अनुभव ही उनका साहित्य है। सवर्णों द्वारा वे घने रूप में पीड़ित हैं। इस प्रकार के अनुभवों को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्पष्ट दिखाया है। नैमिशराय के शब्दों में 'छुआछूत' कहानी संग्रह में न सिर्फ शरणकुमार के अनुभवों की गूँज उभरती है बल्कि भारत जैसे देश में सदियों से सवर्णों के जुल्मों का शिकार हुए दलितों-महिलाओं और बच्चों के दुख-दर्दों को बयां करते हुए वे नायक की तरह मिलते हैं। लिंबाले की सभी रचनाओं को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि उनकी रचनाएं सवर्ण समाज के अन्याय के विरोध में लिखी हुई हैं।

दलित लेखन का प्रमुख स्वर है गुस्सा या आक्रोश। ये आक्रोश कभी-कभी सवर्णों के अन्याय या अत्याचार के विरुद्ध हैं, तो कभी-कभी अपनी नियति, लाचारी आदि के विरुद्ध। अपनी कहानियों में उन्होंने दलित चेतना और संघर्ष के विभिन्न पहलुओं को जीवंत अनुभव के रूप में दिया है। "लिंबाले का सारा लेखन सवर्ण समाज के खिलाफ टुकड़ों-टुकड़ों में दिया गया ऐसा आरोप पत्र है जो स्वयं हमसे ही पूछता है कि बता तेरी सजा क्या है? ये बेचैन कर देनेवाली और आत्मदर्शन के लिए मजबूर करनेवाली कहानियां हैं।"²

हरेक दलित जीवन का हर एक क्षण सवर्णों के लिए अर्पित रहता है। सदियों से सवर्णों के गुलाम बनकर दलित लोग उन लोगों के लिए काम करते हैं। 'युद्ध' नामक कहानी में सवर्णों के लिए काम करने वाले सदाशिव का चित्रण मिलता है। सदाशिव सालों से महार का काम करता है। लेकिन उसका बेटा भगवान शिक्षित है, जो फौजी का काम करता है। इसलिए भगवान अपने पिता को महार का काम करने से मना करता है। इस संदर्भ में गांव के देशमुख से भगवान कहता है "देशमुख मेरे पिता अब महार का काम नहीं करेंगे। सरकार ने मुझे जमीन दे दी है। नौकरी भी दे दी है। अब हमें गांव के काम की जरूरत नहीं है। मेरे पिता ऐसा हल्का-गंदा काम करें, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं फौजी हूँ।"³ अपने पिता की अच्छाई के लिए ही भगवान ने ऐसा कहा। एक कर्मठ बेटे के रहते हुए पिता को इस प्रकार का काम करने की कोई जरूरत नहीं है। गांव में और भी लोग हैं जो महार भी हैं। लेकिन देशमुख भगवान के पिता को काम करने के लिए मजबूर करते हैं। वह अपनी जिद पर अडिग रहता है—“महार अगर अपने काम नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा। तुम जरा गांव के बारे में भी सोचो।"⁴ देशमुख की इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि सदियों से दलित लोग ही इस प्रकार के काम करते हैं। देशमुख जैसे सवर्ण जाति के लोगों का यही विश्वास है कि इस प्रकार का काम करने के लिए ही दलितों का जीवन है। कोई भी महार का काम करने के लिए तैयार होंगे, जिन्हें पैसे की जरूरत है वे अवश्य काम करने के लिए आएंगे। "देशमुख गांव में मेरे पिता जी तो नहीं है। और भी लोग हैं। पैसा फेंको, कोई भी काम करेगा। ये काम महारों को ही करने चाहिए, ऐसा कोई कानून नहीं है।"⁵ ठीक है यह। इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। ये जाति, वर्ण आदि सब मनुष्य निर्मित हैं। अब दलित लोग शिक्षक हो गए हैं। अच्छे-अच्छे काम कर रहे हैं। जीविकोपार्जन के लिए अब गंदे काम करने की जरूरत नहीं है। उन्होंने आत्मनिर्भरता से युक्त नायक के माध्यम से दलितों की पीड़ा को व्यक्त किया है और उनकी यह कहानी शिक्षा

को भी महत्व देनेवाली है। जो लोग शिक्षित हैं, उन लोगों को सवर्णों का गुलाम बनकर काम करने की आवश्यकता नहीं। इस कहानी के द्वारा लिंबाले जनता से यही संदेश देना चाहते हैं।

वास्तव में लिंबाले एक विद्रोही लेखक हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से वे इस विद्रोहात्मकता को प्रकट करते हैं। यह विद्रोह मूल रूप में सवर्ण जाति के प्रति है। 'सरकार का जमाईराजा' कहानी में उन्होंने यह विद्रोहात्मकता स्पष्ट रूप से प्रकट की है। हिंदू धर्म में लक्ष्मी की पूजा करने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। प्रस्तुत कहानी में लिंबाले ऑफिस में काम करते हैं। उनके साथ सवर्ण जाति के लोग भी थे। हर रविवार ऑफिस में लक्ष्मीपूजा होती थी। दलितों को इसमें भाग लेने की अनुमति नहीं है। इन्हें छोड़कर बाकी सवर्ण जाति के लोग लक्ष्मीपूजा करते हैं। इसलिए इस प्रकार की पूजा का विरोध दलित करते हैं। लिंबाले को धर्म, जाति, रीति-रिवाज आदि पर कोई विश्वास नहीं है। इसलिए लक्ष्मीपूजा उन्हें पसंद नहीं थी। उन्होंने इसका विरोध किया। वे गुस्से से कहते हैं—“मैं देवी-देवता नहीं मानता।” इसी कारण सब लोग इनके खिलाफ हो गए। इसलिए लिंबाले ने दूसरे दिन डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर की तस्वीर ऑफिस में लगाने की कोशिश की। लक्ष्मीपूजा को लेकर ऑफिस में वाद-विवाद हो रहा था और तनाव पैदा हो गया। लक्ष्मी पूजा का विरोध करनेवालों के साथ ऑफिस में अन्याय हो रहा था। दलित होने के कारण बुरा व्यवहार किया जा रहा था। लिंबाले कहते हैं अगर आप लोग लक्ष्मीपूजा करते हैं तो हम दलित लोग आम्बेडकर की तस्वीर ऑफिस में लगाएंगे और पूजा भी करेंगे।

अपने अधिकारों से वंचित दलितों को वे अपनी कहानियों के माध्यम से जगाना चाहते हैं और पीड़ित दलितों को ऊर्जा भी देना चाहते हैं। राजेंद्र यादव के शब्दों में “ये उन लोगों की कहानियां हैं जिन्हें हमने हजारों सालों से सिर्फ जानवर बनाकर रखा है और जिन्होंने स्वयं इस नियति को स्वीकार कर लिया है कि वे जानवर ही हैं और उनका जीवन-मरण मालिकों के हाथों में है।”⁷

'हरिजन' कहानी में दलितों के विशेषकर महारों के जीवन को व्यक्त किया गया है। छुआछूत पर तीखा व्यंग्य इस कहानी के माध्यम से लिंबाले ने किया है। एक कुत्ता और एक महार कोंड्या को जोड़कर कहा “हमारे घर में दो ही ईमानदार प्राणी हैं, एक हमारा कुत्ता और दूसरा कोंड्या महार। खाए हुए अन्न के प्रति निष्ठावान। कोंड्या की अपेक्षा हम कुत्ते पर लाड़ जताते थे। कुत्ता घर भर में घूम सकता था,

लेकिन कोंड्या को सीढ़ी तक ही आने की इजाजत थी। हम लोग कुत्ते को गले लगाकर उसके साथ खेलते थे, कुत्ते के साथ हमारा मेल-जोल था, लेकिन कोंड्या से हमें हमेशा दूर रखा जाता था।”⁹ इसमें तीखे व्यंग्य का स्वर छिपा हुआ है। जो स्नेह या वात्सल्य एक कुत्ता या जानवर को दिया है उनका एक अंश भी दलितों को नहीं मिला। छुआछूत से ये लोग क्या समझते हैं इसमें कौन-सी बुराई है इसके बारे में ये सवर्ण जाति के लोगों को कोई जानकारी नहीं। छोटे-छोटे बच्चों पर भी ये लोग विष बीज बोते हैं। वे घर के बाल-बच्चों के सामने से ही दलितों को गाली सुनाते हैं। और बच्चों को उनसे दूर रखते हैं—“घर में छोटे-छोटे बच्चे हैं। उनको कुछ समझ नहीं। लेकिन तुझे तो समझना चाहिए था। बदन को संभालकर काम करना चाहिए। आंखें तो नहीं फूट गई तेरी।”¹⁰ इसी घटना के बाद घर के बाल-बच्चे भी बड़े लोगों की तरह दलितों पर व्यवहार करने लगे। एक स्थान पर कहते हैं, “चल दूर हट, मुझे मत छूना।” घर का नौकर उग्र में बड़े होते हुए भी बच्चे उसका नाम ही पुकारते थे उसे गालियां देते थे, मानवता को कोई मूल्य नहीं देते। अगर मनुष्यता का कोई अंश इन सवर्ण लोगों में है तो वे कभी ऐसा व्यवहार नहीं करते। इस संदर्भ में लिंबाले कहते हैं—“मुझे उसकी और कुत्ते की प्रकृति में लाचारी का एक जैसा भाव दिखाई देता था।”¹¹ फिर भी जोहार कहकर सवर्णों को सलाम करते हैं। गाली सुनकर चुपचाप बैठते हैं। इन लोगों के लिए गुलाम की तरह काम करते हैं। जवाब के रूप में एक शब्द भी मुंह से नहीं निकलता। सब सहकर कुत्ते की तरह मालिकों के पीछे भागता है। “कुत्ते की पूंछ की तरह वह हमेशा दादाजी के शब्दों के पीछे झूलता रहता था।”¹² हाड़-तोड़ मरोड़कर दलित इन सवर्ण जाति के लिए काम करते हैं, फिर भी वे लोग अपमानित हैं, पीड़ित हैं, शोषित हैं और अपने अधिकारों से वंचित भी हैं।

'जवाब नहीं है मेरे पास' नामक कहानी, जैसा कि शीर्षक से ही पता चलता है कि यह जो सवाल सालों पहले ही दलित पूछता है उसका जवाब उन्हें अभी तक नहीं मिला है अपने अधिकारों के बारे में, अपने हक के बारे में ये लोग प्रश्न पूछते हैं। लेकिन उसके लिए उचित उत्तर नहीं मिला। वे हमेशा अधिकारों से वंचित रहते हैं। कहानी में रमेश के माध्यम से पूरे दलितों की कथा को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि “हजार वर्षों तक हम लाचार थे, गुलाम थे। किसी ने हम पर दया दिखाई, गधे को गंगा पिला दी, लेकिन हमें अंजुली भर पानी से महरूम रखा। गोमूत्र को पवित्र माना, लेकिन हमारे स्पर्श को अपवित्र कहा। चींटियों को शक्कर खिलाई, लेकिन हमें भीख तक नहीं दी। उनके मंदिरों में कुत्ते और बिल्लियां

जा सकती हैं, लेकिन हमें सीढ़ी के पास भी पहुंचने नहीं दिया। इनके पानी भरने के स्थान पर जानवर पानी पी सकते हैं, लेकिन समान अधिकार से पानी पीने के लिए हमें अपनी जान गंवानी पड़ती है। यह है इस संस्कृति का बड़प्पन। हमें गांव की सीमा के बाहर रखकर सारे विश्व भर को अपना घर कहना इनकी कुटिल नीति है। अब हम अपने अधिकारों की बात करने लगे हैं तो इन्हें मिच लगती है। बुनियादी तौर पर वे हमारे अधिकार मानते ही नहीं। आरक्षण और योजनाओं के टुकड़े डाले जाते हैं। इससे समस्या सुलझ नहीं सकती।”¹³

सदियों से हमारे देश भारत में कौन-सी परंपरा चली आ रही है इसका संपूर्ण चित्र उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट हुआ है। केवल जाति के कारण सभी से उपेक्षित लोगों की पीड़ा, वेदना, आक्रोश आदि को इन्होंने अपने अनुभवों के जरिए कहानियों में अभिव्यक्त किया है। इन्हें विश्वास है क्रांति के द्वारा ही दलित जीवन में बदलाव आ पाएगा। उन्हें एक सुखपूर्ण जीवन मिल जाएगा।

○

संपर्क : असिस्टेंट प्रोफेसर,
कन्नूर यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेंट ऑफ
हिंदी
डॉ. पीके राजन मेमोरियल कैम्पस,
नीलेश्वर, केरला-
मो. 09656859989

आलोचना

सुरेश कुमार निराला

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में स्त्री जीवन का यथार्थ

कथा-साहित्य पर बात करते हुए अनायास प्रेमचंद याद आ जाते हैं और उनके द्वारा लिखे गए ‘साहित्य का उद्देश्य’ की कुछ पंक्तियां—“हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाएं नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।”

मैत्रेयी पुष्पा की चार कहानियां—‘बेटी’, ‘मन नाही दस बीस’, ‘चिन्हार और ‘अपना अपना आकाश’ को पढ़ते हुए मन में प्रेमचंद वाली ‘गति और बेचैनी’ का बोध होता है। यही गति और बेचैनी पैदा करने की क्षमता, मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों को श्रेष्ठ बनाती है। ये चारों कहानियां, कहानी संग्रह—‘चिन्हार’ में संकलित हैं। इन चारों कहानियों में स्त्री-जीवन की चार अवस्थाएं—बाल्या-अवस्था ‘बेटी’ कहानी में, यौवना-अवस्था ‘मन नाही दस बीस’ कहानी में, युवा-अवस्था ‘चिन्हार’ में और वृद्धा अवस्था ‘अपना-अपना आकाश’ में स्त्री जीवन की पीड़ा और समस्याओं को सामाजिक स्तर पर रेखांकित करने का प्रयास है। कहानी संग्रह—‘चिन्हार’ में संग्रहित दूसरी कहानी है ‘बेटी’, जहां ‘अपना-अपना आकाश’, ग्रामीण परिवेश से होती हुई पूरी तरह से शहर की कहानी है। वहीं पर ‘बेटी’ कहानी ग्रामीण परिवेश की है जहां बेटियों को पराया धन समझा जाता है, अक्सर आपको सुनने को मिलेगा कि ‘अरे यह तो पराया धन है।’ और यही ‘पराया’ शब्द लोगों के दिमाग में घर कर जाता है और बेटियों की पराए धन की तरह परवरिश किया जाता है। उनसे जितना हो सकता है काम लेता है। अगर किसी के घर में चार बेटे हैं और एक भी बेटी है तो चारों बेटों की पढ़ाई-लिखाई होगी और बेटी की नहीं होगी। उन बेटियों के लिए उनके मां-बाप के पास एक ही चिंता रहती है कि उसके हाथ पीले कैसे होंगे? और शादी होते ही अपने आपको ही जिम्मेदारी से मुक्त समझते हैं। हालांकि आज के दौर में ग्रामीण परिवेश में भी ये बातें अप्रासंगिक हो चुकी हैं। और जो शिक्षित हैं या शिक्षित नहीं भी हैं और यदि उन्हें पता है कि शिक्षा सबके लिए जरूरी है, तो वे बेटी को स्कूल जरूर भेजते हैं। आज सरकार की तरफ से चलाए जा रहे योजनाओं से भी गरीब से गरीब लोगों को भी बल मिला है। इसके बावजूद भी ग्रामीण परिवेश में आज भी ऐसी स्थिति है जहां बेटियों को अभी भी नहीं पढ़ाया जाता है।

‘बेटी’ कहानी, मूल रूप से इन्हीं समस्याओं को सामने लाती है। बेटी कहानी में वसुधा, मुन्नी की दोस्त रहती है। एक दूसरे का घर सटा हुआ है। पड़ोसी हैं। वसुधा के घर वाले उसे स्कूल भेजते हैं। वहीं मुन्नी अपने मम्मी-पापा के प्रत्येक काम में हाथ बंटती है। खेत में काम करती है। खाना पकाती है। मुन्नी के पांच भाई पढ़ाई-लिखाई करते हैं। मुन्नी जब अपनी मम्मी से कहती है कि “अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रही। तुम पांच-पांच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे

घर अकाल है...मेरी किताब-कापी के पैसे तुम्हें भारी है अम्मा! . क्यों नहीं अम्मा, मुझे क्यों नहीं?" इस पर जो मुन्नी की अम्मा बोलती है उससे पूरी की पूरी बातें साफ हो जाती हैं कि इसके पीछे की क्या मानसिकता है—“चुप होती है कि नहीं? बहुत जबान चल गई है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है! बेटे तो बुद्धपे की लाठी है हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराया घर का दलिद्वर। तेरी कमाई नहीं खानी हमें... कह दिया, कान खोलकर सुन ले। मुन्नी इसके आगे क्या कहती? एक ही हांक में चुप हो गई।”

वहीं वसुधा मानती है कि—“मैं इतना तो अवश्य समझती थी कि मुन्नी बड़ी चतुर और बुद्धिमान लड़की थी। अगर उसे पढ़ाया जाता तो वह अति प्रतिभाशाली छात्र साबित होती”, इस तरह से यह कहानी समाज में फैले अंधविश्वास और स्वार्थ का गंगा स्वरूप सबके शामने रखती है और बताती है कि किस तरह से शिकार होती हैं बेटियां।

‘मन नाहि दस बीस’ कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने जातीय परिधि को सामने लाया है और दिखाया है कि किस तरह से समाज में जातीय व्यवस्था की आड़ में एक प्रेमी-प्रेमिका के साथ ही दो परिवार ही नहीं तीन परिवार उजड़ जाते हैं। महिलाएं किस तरह बेबस और लाचार हैं। पहले तो ये परिवार, दो हंसते-खेलते बच्चों को साथ-साथ रहने के लिए मजबूर करते हैं, फिर दोनों बड़े हो जाते हैं और बड़े होते ही एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं, फिर वही सामाजिक व्यवस्था एक दूसरे को अलग कर देते हैं। चन्दना की शादी कर दी जाती है। अब चंदना जहां एक तरफ अपने प्रेमी से दूर कर दिए जाते हैं वहीं पर ससुराल में प्रताड़ित होती है। इस बात को लेकर कि ये पहले किसी से प्रेम करती थी और अनेक लांछना लगाए जाते हैं। अब तीसरी मुसीबत चंदना तब झेलने लगती है जब चंदना बच्चे की मां नहीं बन पाती है, जबकि इसमें चंदना नहीं, चंदना के पति दोषी होते हैं क्योंकि चंदना के पति में कमी होती है। ये बातें उनकी सास और परिवारवाले सभी जानते हैं। फिर भी उसे प्रताड़ित किया जाता है। अब उसकी सास और देवर की मिली-भगत से, देवर उनके साथ ऐय्याशी करना चाहता है। इस बात को चंदना पति से कहती है। पर चंदना का पति कोई हस्तक्षेप नहीं करता है, क्योंकि उसे खुद की कमजोरी का पता होता है। यहां पर एक सास ही यानी एक महिला ही महिला को प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रताड़ित करती है। अब देखा जाए तो चंदना का प्यार जातिवाद के कारण बिखर गया। अब चंदना कहीं की नहीं रह जाती है। वो खुद को जहर खाने वाली होती है और एकाएक मन में आता है कि ये जहर खाना में क्यों ना मिला दी जाए और मिला देती है। देवर आता है ऐन वक्त पर पति भी उसी थाली में बैठ जाता है। लाख मना करने पर भी नहीं रुकता। दोनों को जब आधी रात में धतूरा का नशा चढ़ता है तब हलचल मच

जाती है। चन्दना सच्चाई उगल देती है। छुपाने की कोशिश भी नहीं करती। चन्दना को पुलिस ले जाती है। इस प्रकार चंदना एक जगह नहीं कई जगह प्रताड़ित होती है। एक नारी की पीड़ा को कई स्तरों पर इस कहानी में दिखाने का प्रयास है। “लाला के कानों में प्रतिवादी स्वर पड़ने लगे... चमार का लड़का है। लाला ने ज्यादा ही मुंह लगा लिया... जवान लड़की उसके साथ लगी रहती है... बिटिया तुम अब सयानी हो गई। स्वराज का संग छोड़ो, सहेलियों के साथ रहा करो फिर तुम कहां? और वह गयादीन चमार का लड़का? चंदना को क्या-क्या नहीं समझाया सेठानी ने, इन सब बातों को सुन चंदना सवाल करती है कि “बचपन का साथ रहना जवानी में आकर गुनाह क्यों हो गया? जाति की दीवार पहले क्यों नहीं थी?” इसका जवाब किसी के पास नहीं होता। वहीं पर स्वराज का पिता उसे समझाता है—“बापू विनती करने लगे न तू चंदना के पास रहेगा और न उसकी बदनामी होगी। वैश्य परिवार की बेटी हरिजन लड़के के साथ, कुछ तो समझ-सोच स्वराज” इस तरह से साजिश रच स्वराज को घर से दूर ग्वालियर भेज दिया जाता है और चंदना की शादी कर दी जाती है। इसी के साथ चंदना के जीवन में एक नहीं कई पीड़ादायक अध्यायों का आरम्भ हो जाता है। चंदना तब और घुटने लगती है जब वह अपने स्वाभिमान और इज्जत नहीं बचा पाती है—“सास को पोता चाहिए था और देवर को अय्याशी। दोनों की मिली-भगत से जो खेल चल रहा था वह कितना वीभत्स! कैसा भयानक!” तो इस प्रकार से मैत्रेयी पुष्पा ने इस कहानी में महिलाओं की पीड़ा का गंगा रूप दिखाने का प्रयास किया है।

कहानी ‘चिन्हार’ में एक स्त्री एक दूसरी स्त्री जिसका संबंध ननद-भौजाई से है उनकी पीड़ा को सामने लाई गई है। सरजू का पति चन्द्रप्रकाश की मृत्यु हो जाती है। अब सरजू बेसहारा है। तब चंद्रप्रकाश की बहन उनके घर आती है जो सरजू की ननद है। ननद का नाम विद्या है। उनके पास किसी भी चीज की कमी नहीं है परन्तु एक कमी है। कितने भी कबूला-पाती और मन्तत मांगने के बाद भी मां नहीं बन पाई है। बांझ है विद्या। भाई के घर आकर उन्हें दिखा की सरजू पेट से है, उसे अपने घर ले जाती है। सरजू मां बनती है। अस्पताल में एक बच्ची को जन्म देती है लेकिन विद्या जिज्जी ने उसे बच्ची को हाथ भी नहीं लगाने दिया, नर्स ने जैसे ही सरजू के पास शिशु को लिटाया तुरंत विद्या जिज्जी ने नर्स के कान में कुछ कहकर बच्ची को नर्सरी वार्ड में रखवा दिया—“प्री-मैच्योर शिशुओं के साथ। अस्पताल से आकर सरजू को पहुंचा दी गई कोठी के पीछे बनी कोठारी में और बच्ची का पालना विद्या जिज्जी के कमरे में रखा गया”, एक तरफ तो घर की पूरी जिम्मेदारी सरजू के जिम्मे थी, तो दूसरी तरफ उस बच्ची ‘कनक’ के लिए आया रख ली गई। उस बच्ची की मां होती हुई सरजू उसे

अपना दूध नहीं पिला सकती। बच्ची धीरे-धीरे बड़ी होती है। उसकी शादी तय हो जाती है पर अब घर की नौकरानी कहीं जाने वाली कनक की मां सरजू को, शादी में जाने की अनुमति नहीं है। अंत में कनक को विश्वास हो जाता है कि सरजू ही उसकी मां है फिर शादी से सीधे कनक अपनी मां के कमरे में आती है और जी भर कर मां के गले लग कर रोती है और सारा समाज और आए हुए मेहमानों को पता चल जाता है कि कनक सरजू की बेटी है और 'चिन्हार' हो जाती है एक महिला की फरेब। तो इस प्रकार से इस कहानी में अपने ही परिवार द्वारा दिए गए यातनाओं को, उनकी पीड़ा को मैत्रेयी पुष्पा ने बहुत ही सहज तरीके से व्यक्त किया है।

'अपना-अपना आकाश' एक ऐसी कहानी है जो स्त्री जीवन के उन पहलुओं को सामने लाती है जहां स्त्री अपनों द्वारा जीवन के लगभग अंतिम पड़ाव में शोषित होती है। वहां ऐसी स्थिति है कि वैसी महिलाएं या बूढ़ी होती माएं ना ही अपने बेटे का विरोध कर सकती हैं और ना ही प्रतिकार। कर सकती है, तो सिर्फ और सिर्फ स्वीकार। इसके अलावे उनके पास और कोई भी साधन नहीं है। उस उम्र में अपनी संवेदना को विष की तरह पी जाती है। इस कहानी में बेटे द्वारा मां को कहीं दूर वृद्धा आश्रम में बिना कहे-सुने, बिना बताए पराये की तरह भेज दिया जाता है। जहां से वो बूढ़ी मां कभी लौट न सके। यहां पर मैत्रेयी पुष्पा एक तरफ पुत्रों की मरती हुई संवेदना को सामने दिखा रही हैं तो दूसरी तरफ बूढ़ी मां की संवेदना को अन्दर ही अन्दर घूटते हुए। सवाल उठता है कि क्या समाज इतना संवेदनहीन हो गया है? जिंदगी भर जिन मांओं ने अपने को उन बच्चों के लिए अपना जीवन खपा दिया उनके साथ ये व्यवहार? आखिर क्या हुआ इस समाज को? कहां चली गई इनकी संवेदनाएं? आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? इन सवालों को ढूंढती यह कहानी मरी हुई संवेदना को फिर से जगाने का प्रयास करती है। 'अपना-अपना आकाश' कहानी के माध्यम से हम समझ सकते हैं कि एक परिवार अपने स्वार्थ के चलते अपनी मां को अपने से अलग कर देता है जबकि वे यह सब भूल जाते हैं कि इस तरह के संस्कारों का निर्माण, आनेवाले समय में उन्हें खुद को भी भुगतने के लिए विवश कर देगा। जब मां 'कैलाशो देवी' से बिना पूछे कागजात पर—“बड़े ने मंझले से कहा था 'मां लगाओ अंगूठा' मंझले ने अंगूठे पर स्याही लगाने की तैयारी कर ली। लेकिन उन्होंने चिंकू से पैन मांगकर टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में बड़े मनोयोग से लिख दिया—'कैलाशो देवी'। उन्हें क्या पता था कि यह लिखावट उनके नाम चढ़ी दस बीघे जमीन को भी छीन ले जाएगी और आज से उनका बुढ़ापा रेहन चढ़ जाएगा। अपने ही बेटों के घर किलस-किलसकर चुकने को!” मां की ममता ऐसे होती है कि बेटों के साथ रहकर हर दुख को भी सहकर मां हमेशा

खुश रहती है। चाहे उसे समय पर खाना मिले या ना मिले उनका ख्याल कोई रखे या ना रखे। फिर भी सब ठीक ही रहता है। कम से कम अपनों का साथ तो होता है। मां समझौता कर लेती है और भूखे पेट भी गुनगुनाती है—ठाकुर जी के गीत “जा विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए।” पर इतना के बाद भी उन्हें घर से दूर, और बहुत दूर भेज देना समाज में खो रही संवेदना का प्रतीक है—“भेजने को तो उन्हें वृन्दावन भी भेज सकते थे, लेकिन वृन्दावन पास है। वे लौट सकती थी। इसी कारण सबने मिलकर बेंगलुरु का चुनाव किया था। कोई पूछेगा तो कह सकेंगे उनका मन भगवद्-भक्ति में रम गया था सो गृहस्थ का मोह त्याग गई। कितना आसान तरीका... मुक्ति का, उनकी और परिवार की.. दोनों की।” यह कहानी मुख्य रूप से भारतीय-संस्कृति और पश्चिमी-संस्कृति की मानसिकता को सामने लाती है। भारतीय-संस्कृति का प्रतीक वो वृद्ध मां है तो वहीं पर वैश्विक-संस्कृति से प्रभावित उसका बेटा। यह कहानी भारतीय-संस्कृति में मिश्रित हो रहे पश्चिमी-संस्कृति से उपजे विकार को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से सामने रखती है। इस तरह से मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित ये चारों कहानियां स्त्री जीवन की बाल्या-अवस्था, यौवना-अवस्था, युवा-अवस्था और वृद्धा-अवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनकी कहानी समाज में या परिवार में घट रही ऐसी घटनाओं को उजागर करती है जो हमेशा से सामाजिक-संस्कृति की तरह घटित होती रही है। साथ ही उनकी कहानी स्त्री-जीवन की पीड़ा और संवेदना को रेखांकित करते हुए उनका यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत करती है। ये कहानियां स्त्री-जीवन की सच्चाइयों की गहरी पड़ताल कर समाज को नई दिशा देती हैं।

संदर्भ-

1. 'चिन्हार', मैत्रेयी पुष्पा, (कहानी संग्रह), आर्य प्रकाशन मंडल, सरस्वती भंडार, गांधीनगर, दिल्ली। संस्करण- 2014.
2. 'समकालीन हिंदी कहानी', संपादक- एन. मोहन, प्रकाशक- शिल्पायन, वेस्ट गोरखपार्क, शाहदरा दिल्ली। संस्करण- 2007।
3. 'हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान', रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई, दिल्ली। संस्करण- 2007।
4. 'कहानी: नई कहानी', नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। संस्करण- 2009।
5. 'कहानी का लोकतंत्र', पल्लव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा। प्रथम संस्करण- 2011।

○

संपर्क- कमरा न. 18, बसौर मेन्स हॉस्टल, इफ्लू,
तारनाका-500007, हैदराबाद
Gmail: niralae@flu@gmail.com
मो. न. 8978238147.

प्रवासी यानी विस्थापन की कहानियां

बदलते समय के परिदृश्य में हिंदी कथा साहित्य का क्षेत्र भी बदला है और आज हम सभी कहीं न कहीं इस बदलाव को पूरी तरह से न सही परंतु आंशिक रूप से थोड़ा और अधिक हिस्से को स्वीकार कर चुके हैं। या यूं कहें कि हम स्वीकार कर रहे हैं।

प्रश्न है कि किस स्वीकारोक्ति की बात हो रही है? तो उत्तर है भारत से इतर रचे जानेवाले साहित्य की।

प्रत्येक देश और उस देश में स्थित समाज का अपना कोई न कोई महत्व होता है, वह महत्व सामाजिक क्षेत्र का भी हो सकता है और आर्थिक क्षेत्र का भी, राजनीतिक क्षेत्र का भी हो सकता है और सांस्कृतिक क्षेत्र का भी।

परंतु हर वह देश प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण एवं सुखद अनुभूति प्रदान करनेवाला होता है, जहां उसके नागरिक सुखी एवं स्वतंत्र रूप से निवास कर सकें। वह देश एवं उसका समाज तभी अपने नागरिकों के लिए गौरव का विषय बन सकता है, जब वहां के नागरिकों को प्रवासी होने का तनिक भी आभास न हो, या उसके साथ कोई सौतेला व्यवहार न करें।

परंतु वास्तविकता क्या वाकई में ऐसी है? उत्तर मिलेगा नहीं।

इस प्रश्न का उत्तर केवल और केवल वही दे सकता है, जो अपने मुल्क की सौंधी मिट्टी की खुशबू को छोड़कर प्रवासी हो गए हैं।

आज के दौर में प्रवासी साहित्य के क्षेत्र में तेजी से उभरकर सामने आनेवाला नाम है तेजेंद्र शर्मा का, जिन्होंने अपनी कहानियों में इस दर्द को बहुत ही मार्मिकता एवं कारुणिक शब्दों के साथ उभारा है। जिन्हें पढ़ने के बाद एक बेचैनी और छटपटाहट का रेशा मन-मस्तिष्क में कौंधने लगता है। साथ ही इसका प्रभाव काफी लम्बे समय तक पाठक-वर्ग के जेहन में बना रहता है।

इससे पहले मैंने विस्थापन शब्द को केवल पढ़ा था, किंतु उसका सही मायने में अर्थ क्या होता है और विस्थापन किसे कहते हैं, इसकी पुष्टि मुझे तेजेंद्र शर्मा की कहानियों को पढ़ने के बाद हुई।

विस्थापन का दंश क्या होता है? विस्थापन का दर्द कैसा होता है? इसे आप उनकी प्रत्येक कहानी को पढ़कर समझ सकते हैं।

कहानी भले ही अपने कलेवर में अन्य विधाओं से छोटी होती हो परंतु थोड़े में ज्यादा कहने की इसकी प्रवृत्ति आद्योपांत बनी रहती है। अर्थात् 'गागर में सागर भरने' की कला में निपुण होती है कहानियां।

प्रायः हम किसी लेखक को पढ़ते हुए पाते हैं कि उनमें कथा कहते-कहते भटकवाव आ जाता है परंतु तेजेंद्र शर्मा को कहानियों में इस स्थिति से बचते हुए देखा जा सकता है।

हर वो कहानी—चाहे वह 'काला सागर' हो या 'कब्र का मुनाफा' या 'देह की कीमत' 'मुझे मार डाल बेटा' हो या फिर 'टेलीफोन-लाइन'। इन कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे पाठक स्वयं उस स्थान पर खड़ा हो और वे सारी घटनाएं स्वयं पाठक वर्ग के साथ घटित हो रही हैं।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में आज मनुष्य भले ही स्वतंत्र हो, कहीं भी आने-जाने एवं कहीं भी जाकर रहने के लिए परंतु स्थाई रूप से कहीं जाकर रहने एवं वहां जाकर अपना रोजगार शुरू करने की कल्पना उतनी ही भयावह है जैसे चट्टान को काट-काट कर मूर्ति बनाने की चेष्टा।

यदि आप स्थितियों का सही-सही मूल्यांकन करेंगे तो देखेंगे कि आज प्रवास में जाकर रहना एवं वहां की नागरिकता को प्राप्त कर लेना मात्र एक शौक नहीं रह गया है, यह कहीं न कहीं मनुष्य के भटकाव की स्थिति को भी दर्शाता है। आप प्रश्न करेंगे कि कैसे? हां! इससे इनकार नहीं किया जा सकता है शिक्षा का विस्तार हुआ है, शिक्षित वर्गों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है और इस नाते उनमें अपनी प्रतिभा का सही मूल्यांकन करने की क्षमता भी बढ़ी है!

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'देह की कीमत' से तो यही स्थिति स्पष्ट होती है कि किस तरह एक नव-विवाहित युवक जापान जाने की चाह में गैर कानूनी तरीके को अपनाता है और ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं होने के कारण लेबर का काम करने को विवश हो जाता है और अंततः काल के गाल में समा जाता है।

इसे विस्थापन का दर्द कहेंगे या कहेंगे मनुष्य की कभी न पूरी होने वाली लालसा! अथवा कहेंगे इसे सो-कॉलड, शो-ऑफ, जिसका खोल मनुष्य ताउम्र ओढ़े रहना चाहता है। उदाहरण के तौर पर कहानी 'देह की कीमत' का अंश देखें—

“फरीदाबाद का वैध नागरिक खाते-पीते घर का 'काका' जापान में अवैध काम करने को अभिशप्त था... वहां वो कुली भी बन जाता था, तो कभी रेस्टोरेंट में बर्तन भी मांज लेता था... हर वो काम जो हरदीप अपने देश में किसी भी कीमत पर नहीं करता, जापान में सहर्ष कर लेता था... कारण? झूठी शान के अतिरिक्त और क्या हो सकता है... कि लड़का जापान में काम करता है।” (पृष्ठ - 28)

उपर्युक्त गद्यांश से यह स्वतः ज्ञात हो जाता है कि मनुष्य में दिखावा करने की चाह किस हद तक हावी रहती है, जिसके लिए वह कोई भी कीमत चुकाने को तैयार है। और इस दिखावे एवं इम्पोर्टेड चीजों की चाह हरदीप को कहां पहुंचा देता है, इसकी कल्पना भी उसने कभी नहीं की होगी।

सवाल है कि हरदीप की ऐसी स्थिति आखिर हुई क्यों? क्या उसकी इस आकांक्षा को रोका नहीं जा सकता था? बिल्कुल रोका जा सकता था परंतु रोकेगा कौन? जाहिर सी बात है घर के गार्जियन! लेकिन जब घर के बड़े-बुजुर्गों में ही इम्पोर्टेड चीजों के प्रति तीव्र लालसा हो तो यकीनन बच्चों में लालच का बीज-अंकुरित होगा ही।

भारत के दिवंगत पूर्व राष्ट्रपति अबुल पकीर जैनुलआब्दीन अबुल कलाम ने बहुत ही मूल्यवान वाक्य कहे थे कि—

“बच्चों के भविष्य का निर्माण तीन ही लोग बेहतर तरीके से कर सकते हैं—माता-पिता और प्राइमरी टीचर्स।”

इन तीनों के ऊपर ही पूरा दारोमदार रहता है बच्चों की सही परवरिश और भविष्य निर्माण का।

ठीक इसी प्रकार हम विस्थापन की स्थिति में जी रहे लोगों की मनःस्थिति का भी जायजा ले सकते हैं। इसका उदाहरण हमें उनकी कहानी 'मुझे मार डाल बेटा' में मिलता है, जहां—बाऊजी (चार्टर्ड एकाउंटेंट) अपनी मातृभूमि का दर्शन कर लेना चाहते हैं, परंतु विस्थापन का दंश उन्हें इसकी इजाजत नहीं देता—

“शरणार्थी! अपने ही देश में शरणार्थी! पीड़ा... विस्थापन की पीड़ा! अपनी मर्जी से विदेश में बसने जाना एक अलग बात है, परंतु तलवार के जोर पर अपने ही देश में विस्थापित हो जाना? (पृष्ठ-52)

एक तिलमिलाहट, एक छटपटाहट और कुछ न कर पाने की बेबसी तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में आघोषांत देखने को मिलती है। और यही उनकी कहानियों को अन्य कहानियों से पृथक करती है। इनकी कहानियों को पढ़ने के बाद जो—प्रभाव पाठक मन पर पड़ता है उसे परिभाषित करने के लिए एक ही पद सटीक बैठता है, जो कि इसका शीर्षक है—“बेचैन करती कहानियां।”

प्रवास में जाकर रहने का जो अनुभव है वह जितना सुखद है और उससे कहीं अधिक वहां रहने का जो दुखद अनुभव है उसको समझने के लिए ये कहानियां एक सच्चे मार्ग-दर्शक की भूमिका निभाने में समर्थ हैं।

लोग भले ही विदेश में जाकर रहने का दम्भ भरते हों, परंतु उन्हें ये नहीं पता कि उनकी अपनी पहचान, उन्हें केवल अपनी ही सरजमीं से मिल सकती है। न कि प्रवासी रह रहे विदेश की मिट्टी से।

'प्रवासी' शब्द अपने-आपमें भिन्नता को, विस्थापन को दर्शाता है—प्र + वासी 'प्र' अर्थात् अन्य, दूसरा, भिन्न 'वासी' अर्थात् निवास करनेवाला, बसेरा 'करनेवाला'।

कुल मिलाकर इसका अर्थ हुआ—अन्य स्थान पर या दूसरे स्थान पर जाकर निवास करने वाला/बसर करनेवाला।

जो अपने-आपमें परिपूर्ण न हो, जो अपने आपसे ही भिन्नता को दर्शाता हो, वह कैसे किसी के लिए संपूर्णता का परिचायक हो सकता है। सभी साधनों एवं सुविधाओं

से लैस होने के बावजूद एक अलगाव तथा अजनबीपन की स्थिति सदैव बनी रहती है प्रवासियों के जीवन में।

तेजेंद्र शर्मा की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति यही है कि वे कब किस मोड़ पे कहानी को पहुंचा देंगे इसका कयास लगाना भी पाठक वर्ग के लिए दूर की कौड़ी मालूम होती है। प्रत्येक कहानी का टर्निंग पॉइंट एक हैरान कर देने वाला वाक्य प्रतीत होता है।

प्रत्येक कहानी का अंत पाठकों को आश्चर्यचकित कर देने के साथ-साथ उसकी अपेक्षा से अलग हटकर जा खड़ी होती है। पाठक-वर्ग की एक्सपेक्टेडेशन से बिल्कुल अलग नतीजे घोषित करती है सभी कहानियां। उदाहरण के लिए उनकी कहानी—

“कब्र का मुनाफा” को देख सकते हैं, जिसमें मनुष्य की झूठी शान हावी रहती हुई दिखाई गई है। मरने के बाद भी मनुष्य नेम-फेम कमाना चाहता है और अपनी आन-बान और शान में कोई कमी नहीं आने देना चाहता। आय से भी अधिक पैसा कमाने जिसे मुनाफा कहते हैं की चाह में इस कहानी के पात्र अंततः एक ऐसा रोजगार ढूँढ निकालते हैं, जो मनुष्य की सोच के बाहर की चीज है। अर्थात् कब्र के लिए तय की हुई जमीन को समय के साथ दोगुनी कीमत पर बेचना और उससे डबल मुनाफा कमाना।

इंसानी दिमाग में उपजने वाला एक अनैतिक रोजगार, जहां दया, करुणा, स्नेह, ममता एवं संवेदना के लिए कोई स्थान नहीं। संवेदनहीन होकर ही यह बिजनेस किया जा सकता है संवेदनशील होकर नहीं।

“अरे भाभी, आपको खलील भाई ने बताया नहीं कि अगर आप किसी एक्सीडेंट या हादसे का शिकार हो जाएं, जैसे आग से जल मरें तो वो लाश का ऐसा मेकअप करेंगे कि लाश एकदम जवान और खूबसूरत दिखाई दे।”

अंतिम पृष्ठ पर निम्नलिखित पंक्तियां देखें—

“और अब इन्फ्लेशन की वजह से उन कब्रों की कीमत हो गई है ग्यारह सौ पाउण्ड, यानी कि आपको कुल चार सौ पाउण्ड का लाभ।”

“क्या चार सौ पाउण्ड का फायदा बस साल भर में।” उसने नजम की तरफ देखा। नजम की आंखों में भी वही चमक थी।

नया धंधा मिल गया था।

इसी तरह कहानी का अंत चौंकाने वाली प्रवृत्ति को लिए हमारे सामने उपस्थित होता है—‘टेलीफोन लाइन’

जिसका अंत पाठकों की सोच से परे साबित होता है

जब सोफिया अवतार सिंह से कहती है—

“तुम मेरी बात सुन... तुम मेरे दोस्त हो... तुम तो मुझसे प्यार भी करते थे... तुम आजकल हो भी अकेले.. . भला तुम... तुम खुद ही मेरी बेटी से शादी क्यों नहीं कर लेते? तुम्हारा घर भी बस जाएगा और मेरी बेटी की जिंदगी भी सैटल हो जाएगी।... तुम सुन रहे हो...”

ये जो अंतिम पंक्ति है—मेरी बेटी की जिंदगी भी सैटल हो जाएगी। एक बहुत बड़ा सवाल खड़ा करती है कि सैटलमेंट! आखिर किस सैटलमेंट की बात हो रही है? तो विदेश में रहकर वहां की नागरिकता प्राप्त करने का सैटलमेंट? वहां के अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सैटलमेंट? या वहां स्थायी रूप से बस जाने के लिए सैटलमेंट!

इस प्रवासी होने के मोह में इन्सानियत किस कदर मर जाती है एवं इंसान किस कदर विवेकशून्य हो जाता है इसका एक यथार्थ उदाहरण है यह कहानी। सैटलमेंट के चक्कर में सोफिया अपनी बेटी की जिंदगी की बागडोर एक ऐसे बूढ़े आदमी के हाथों सौंप देना चाहती है जिससे कभी वह खुद प्यार करती थी, सिर्फ इसलिए क्योंकि वह बंदा (अवतार सिंह) लंदन का स्थायी नागरिक है, वह वहां की नागरिकता को हासिल कर चुका है। इस सैटलमेंट की महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति के कारण वह इतनी अंधी हो चुकी है कि उसे अपनी बेटी और अवतार सिंह की उम्र का फासला भी नजर नहीं आया। न उसे अनमेल विवाह का ख्याल आया और न ही अपनी बेटी की खुशी का! और न ही बेटी को मिलने वाले शारीरिक सुख का जो कि युवा व्यक्तित्व में निहित होता है। इन तमाम बातों एवं यथार्थों से बेफिक्र सोफिया को केवल सैटलमेंट ही दिखाई दिया। आश्चर्य है।

क्या आज मनुष्य की इच्छाओं ने इतना छद्म रूप धारण कर लिया है कि वह अपनी सारी नैतिकताओं को ताख पर रखकर केवल एक अंधी दौड़ के पीछे भागते रहना ही अपना परम कर्तव्य मान लिया है।

नैतिकता...! अच्छा शब्द है, किसी को उनका कर्तव्यबोध एवं इंसानी फितरत को याद दिलाने के लिए। इसी शब्द से जुड़ी उनकी एक और महत्वपूर्ण कहानी है—‘काला सागर’।

जहां सारी नैतिकताओं के तार को तार-तार होते हुए दिखाया है तेजेंद्र शर्मा ने। यह कहानी न केवल मनुष्य की संवेदनहीनता को दिखाती है बल्कि मनुष्य किस हद तक स्वार्थी, निर्दयी, क्रूर एवं लालची हो सकते हैं, इसका भी खुलासा करती है।

मनुष्य का एक अन्य रूप उस गिद्ध के समान भी होता है, जो लाशों की चींटी-चींटी हुई बोटियों को भी नॉच-नॉच कर खा जाने को तैयार रहता है।

एक तरफ मनुष्य की संवेदना उनके साथ इस बात के लिए रहती है कि जिन्होंने अपनों को खोया, उसका दुख कितना अधिक और गहरा होगा, तो वहीं दूसरी ओर उनके मरणोपरांत उनकी चीजों के प्रति लोभ और मोह मनुष्य की खोखली एवं दिखावटी आंख का भंडाफोड़ करती नजर आती है। इसका परिचय इन्हीं पंक्तियों से प्राप्त हो जाता है—“मिस्टर महाजन।”

“जी।” उन्होंने आंखें मूंदे ही पूछा।

“आपसे एक सलाह चाहिए।”

“कहिए।” नेत्र खुले।

“जिस काम के लिए आए थे, वो तो हो गया। जरा बताएंगे, यदि शॉपिंग वगैरह करनी हो तो कहां सस्ती रहेगी? नए है न...” (पृष्ठ - 46)

किस कदर संवेदनहीनता अपनी चरमसीमा को पार कर जाती है। इंसान किस कदर लालच का चादर ओढ़ सकता है, इस कहानी से बेहतर उदाहरण और कोई हो नहीं सकता।

कुछ यात्री गम गलत करने के लिए पैग पर पैग चढ़ा रहे थे—

“यार, पी ले आज जी भरके। हमें कौन से पैसे देने हैं। यह काम अच्छा किया है एयरलाइन ने।”

विमल महाजन थोड़ा और आगे बढ़े।

“क्यों ब्रदर, आपने कौन-सा वीसीआर लिया?”

“मुझे तो एनवी-450 मिल गया।”

“बड़ी अच्छी किस्मत है आपकी। मैंने तो कई जगह ढूंढा।”

आखिर में जो भी मिला, ले लिया।

हमें कौन-सा बेचना है।

“....”

“.....”

“आपने सोनी का टीवी ढूंढ ही लिया। कितने इंच का लिया?”

“27 इंच का। और आपने?”

“हमारे भाग्य में कहां जी! जेवीसी का लिया है।

पर देखने में अच्छा लगता है। फिर च्वाइस कहां थी।”

लोभ मनुष्य के भीतर छिपा-बैठा सबसे बड़ा दैत्य है जो एक दिन स्वयं उसी को ही निगल जाता है। तृष्णा एवं

भोग की पराकाष्ठा मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है जो उसके चरित्र और व्यक्तित्व दोनों का पतन करने के प्रमुख औजार हैं।

इसी संदर्भ में घटित होने वाली कई ऐसी घटनाएं हमारे समक्ष स्वतः ही उपस्थित हो जाती हैं जो हमें अपने दैनिक जीवन में प्रायः सुनने को मिल जाता है।

तेजेंद्र शर्मा की ये कहानियां महज कहानी नहीं हैं बल्कि आज के यथार्थ जीवन में घटित होनेवाली वह सारी घटनाएं हैं जो किसी न किसी रूप में प्रत्येक मनुष्य के साथ जुड़ी हुई दिखाई देती हैं और प्रत्येक मनुष्य को वह अपनी ही कहानी-सी प्रतीत होती है।

पाठकों का साधारणीकरण एवं आत्मसातीकरण होते हुए पाया जाना यह एक सफल रचना की विशेषता है। साथ ही मानव मन की परतों को उकेर कर उसका सामान्यीकरण कर देना यह एक रचनाकार की विशेषता है जिसमें तेजेंद्र शर्मा खरे उतरते हैं।

अपनी कहानियों में उन्होंने ऐसे ज्वलंत एवं महत्वपूर्ण मुद्दों का समावेश किया है, जिनसे आज की युवा पीढ़ी सबसे अधिक जूझ रही है और वह है बेरोजगारी।

कहानियों में तेजेंद्र शर्मा की भाषा अत्यंत सरल, स्पष्ट एवं प्रवाहपूर्ण है, जिसमें पंजाबी में उद्भूत छोटे-छोटे वाक्य कहानी के प्रभाव को और अधिक रुचिकर एवं उत्सुकतापूर्ण बनाते हुए नजर आते हैं। भाषा में चुटीलापन, भाषा को और अधिक आकर्षक एवं ग्राह्य बनाने में कारगर सिद्ध हुए हैं।

○

संपर्क : शोधार्थी

सी/ओ साधना वर्मा, रूम न.-21,

गोदावरी हॉस्टल, जेएनयू-110067

मो. 09643353110

समकालीन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श

स्त्री एवं पुरुष संसार के दो महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं और साहित्य उनके कलात्मक लेखन की अभिव्यक्ति। परन्तु पुरुष समाज ने हमेशा स्त्री समाज को हाशिए पर धकेलने का कुचक्र रचा है। पुरुष की इस कुचक्री चेतना से साहित्य जगत भी अछूता नहीं रहा, यहां भी पुरुष साहित्य एवं साहित्यकारों ने स्त्री साहित्य व साहित्यकारों को निरंतर हाशिए पर रखने का प्रयास किया। इसके बावजूद स्त्रियों ने न केवल अपनी अस्मिता बनाए रखी अपितु समय-समय पर समाज को भी अपनी अस्मिता का बोध कराया।

वर्तमान समय का दौर विमर्शों का दौर है। आज ऐसा समय है जब सदियों से हाशिए पर रखे गए वर्गों के लोगों ने तथाकथित मुख्यधारा पर प्रश्न खड़े करने शुरू किए हैं, इन्हीं प्रश्नों को हम दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और स्त्री विमर्श में देखते हैं। समाज और संस्कृति, सत्ता और स्वाधीनता आदि विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के साथ ही साथ एक विस्तृत राजनीतिक और सामाजिक फलक लेकर स्त्री विमर्श हमारे समकक्ष आता है।

हमारे समाज में सदियों से चली आ रही परम्परा में औरत को उपभोक्तावादी वस्तु से ज्यादा अहमियत ही नहीं दी जाती है। पुरुष किसी भी रास्ते चल सकता है लेकिन स्त्री के रास्ते में रुकावटें ही हैं क्यों? क्योंकि पुरुष ने अपने आपको बन्धनों से मुक्त कर लिया जबकि स्त्री को धर्म, संस्कार, मान-मर्यादा, घर, परिवार और न जाने कितने तरह के बन्धनों में जकड़ दिया है जिससे कि वह चाहकर भी इतने बंधन कई शताब्दियों तक न तोड़ सके और पराधीन होकर जीने को विवश रहे। लेकिन आज की स्त्रियां इन सभी बन्धनों में बंधकर नहीं रहना चाहतीं वह स्वाधीनता की मांग कर रही हैं, और इन्हीं सवालियों को लेकर स्त्री-विमर्श जोर-शोर से चल रहा है और स्त्रियां अपनी मांग के लिए खुद ही लड़ रही हैं? यह सब लोग जानते हैं कि समाज की परिकल्पना स्त्री के बिना अधूरी है लेकिन समाज के इस ताने-बाने में स्त्री ही जकड़ी हुई है जो उसके जन्म लेने से शुरू होता है और मृत्युपर्यंत बना रहता है। भारतीय सामाजिक परम्परा के अनुसार स्त्री को गुलाम बने रहने के पुरस्कारों, तमगों से सम्मानित किया जाता है। लेकिन आज की स्त्री उन पुरस्कारों और तमगों की नहीं बल्कि स्वतंत्रता और स्वाधीनता की मांग कर रही है क्योंकि जिस तरह पुरुष प्रकृति की देन है उसी तरह स्त्री भी, लेकिन पुरुष होना 'स्वतंत्रता' का प्रतीक माना जाता है और स्त्री 'पराधीनता' का। पुरुष समाज ने स्त्री के स्वत्वों का अपहरण करके सही मायने में उसे पैरों की जूती बना रखा है लेकिन हम पूछते हैं कि आखिर आज की स्त्री किस मायने में पुरुष से पीछे है जो पराधीन होकर जीने को मजबूर हो इसीलिए आज की स्त्री स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रही है।

मुक्ति या स्वतंत्रता एक बहुत बड़ा मूल्य है, जिसे पराधीन रहकर ही शायद बेहतर तरीके से महसूस किया जा सकता है। स्त्रीमुक्ति के सन्दर्भ में यह पराधीनता बहुआयामी है। भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियों की गरिमा उनके अनुगता होने में है, न कि उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में। यह अवधारणा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की बनाई हुई है, जिसके पीछे सम्पूर्ण पुरुष जाति नहीं बल्कि पुरुषवादी विचारधारा है, जो इस समाज की मानसिक संरचना में ऐसे रच-बस गई है कि सामान्य सी प्रतीत होने लगी है, स्त्री चेतना को उसी से मुक्ति की आवश्यकता है, और उसी व्यवस्था से वह संघर्षरत भी है, न कि उसे पुरुष जाति से कोई गुरेज है—

“मेरा युद्ध पुरुष जाति से नहीं
उस सोच से है जिसमें फिट होना बना दी गई है
स्त्री की नियति
में मनुष्य हूं
और इसी रूप में व्याकुल हूं।”

हमारे समाज में स्त्री को स्त्री बनाने की शिक्षा उसके जन्म से ही दी जाने लगती है। जहां बच्ची थोड़ी समझदार हुई

उसे यह शिक्षा दी जाने लगती है कि लड़की को तेज बोलना नहीं चाहिए, लड़की को तेज हंसना नहीं चाहिए, और बड़े लोग जो कहें उसे आज्ञापूर्वक मानना चाहिए, उसके विरोध में नहीं बोलना चाहिए चाहे वह गलत ही क्यों न हो। और शादी के समय स्त्री को बता दिया जाता है कि परिवार और बच्चे उसके कार्यक्षेत्र हैं। वह बच्चे संभाले, चौका संभाले, और पति की जरूरतों का साधन बन बिछती रहे। उसे और क्या चाहिए? तो हम पूछते हैं क्या पति और बच्चों के सिवा औरत की कोई जिंदगी नहीं होती? क्या विवाह कर लेने के बाद स्त्री का अपना कोई भविष्य नहीं रह जाता, उसका कोई वजूद नहीं बचता? क्या वह अपना सम्पूर्ण भविष्य पति और उसके परिवार के लिए नौछावर कर दे? नहीं, आवश्यकता है सतत् प्रतिरोध की, तभी निरंतर बनी रहने वाली व्यवस्था को बदला जा सकता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में दबाव के चलते व्यवस्था में अनिवार्य न्यूनतम बदलाव कर दिए जाते हैं पर तब भी सत्ता का मूल स्वरूप बना रहता है। स्त्री विमर्श स्त्री की इन सारी समस्याओं से मुक्ति की मांग करता है और किसी के पराधीन रहने की अपेक्षा स्वाधीनता की भी मांग करता है।

आज की स्त्री सामाजिक, आर्थिक और मूल रूप से स्त्री देह की स्वाधीनता की बात कर रही है। वह अपनी देह, अपनी आत्मा पर अपने अधिकारों की बात कर रही है। परंपरागत पारिवारिक संस्कारों के खिलाफ इस तरह के अधिकार की मांग एक क्रांतिकारी घोषणा है। भावनात्मक रूप से स्त्री परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उन लैंगिक पूर्वाग्रहों व संरचनाओं को समझा जाए, जो विरासत के रूप में स्त्री व पुरुष दोनों को मिलते हैं। तभी निर्मला पुतुल अपनी एक कविता में कहती हैं—

“तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गांठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास
अगर नहीं
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित के परे
एक स्त्री के बारे में...।”

स्त्री-पुरुष के वैवाहिक झगड़े अगर घर से बाहर आ जाएं तो आज भी समाज के लिए तमाशा बन जाते हैं और यदि कानूनी दांव-पेंच में फंस जाए तो उसका सबसे ज्यादा खामियाजा स्त्री उठाती रही है। विवाह विच्छेद स्त्री को

मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाली, सामाजिक-पारिवारिक नैतिकताओं को तोड़ने वाली, त्याग, बलिदान और ममता के गुणों से वंचित और उसकी देह को अपवित्र बना देता है। जब तक वह पुरुष के साथ है, उसकी संपत्ति है, इसलिए उसकी अधीनस्थता को स्वीकार करना ही स्त्रियोचित गुण व धर्म है। इस तरह की शिक्षा जाने-अनजाने आज भी लड़कियों को अपने घरों में दी जाती है। और उन्हें ऐसा जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है। निर्दोष औरत दण्ड देने के लिए मोहरे की तरह इस्तेमाल की जाए ये कहां का न्याय है? वैसे भी उन्हें नीची नजर से देखा जाता है। उन्हें संपत्ति पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। धार्मिक मामलों में उन्हें बाहर रखा जाता है। किसी भी प्रकार का निर्णय लेने में उनकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है, जैसी परिवार में पुरुषों की होती है। हालांकि आज स्त्रियां अपने अधिकार के लिए आवाज उठा रही हैं, जो उनकी जागरूकता का ही संकेत है।

अगर हम सत्ता और स्वाधीनता के लिए संघर्ष की बात करते हैं तो देखते हैं आज स्त्रियां हर क्षेत्र में बढ़-चढ़ कर भाग ले रही हैं चाहे सामाजिक क्षेत्र हो या राजनीतिक या फिर आर्थिक, हर जगह अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। जैसे-जैसे समाज में नारी की निरीह स्थिति में बदलाव आया है और वह अबला से सबला बनने की तरफ अग्रसर हुई है, वैसे- वैसे वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत भी हुई है। परिणामस्वरूप पुरुष प्रधान समाज के बन्धनों के खिलाफ उसने विद्रोह भी किया है। स्त्री के क्रांतिकारी तेवरों से परिवार की बुनियादें हिल गई हैं और पारिवारिक विघटन भिन्न-भिन्न रूपों में समाज में पसरता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि पुरुष का परंपरागत मध्ययुगीन मानस स्त्री के मौलिक अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता। वह उसे दबाना चाहता है और स्त्री अपनी गुलाम मानसिकता वाली सती-साध्वी, प्रेयसी या पति-परमेश्वरी छवि को तोड़कर अपना स्वतंत्र वजूद बनाना चाहती है। आज की नारी यह मानती है कि वह पुरुषों से किसी भी मायने में कम नहीं है।

अगर आज हम साहित्य की बात करें तो देखते हैं लेखकों एवं लेखिकाओं ने भी स्त्री सवाल को बखूबी उठाया है। उनके उपन्यास, उनकी कहानियां, स्त्री के दर्द और पीड़ा की दास्तां बयां करती हैं और कई जगह तो सारी नैतिकताओं का खंडन भी करती दिखती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि इन रचनाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से न केवल स्त्री की दशा का चित्रण किया है, बल्कि उनकी अस्मिता, स्वतंत्रता, जागरूकता एवं चेतना को भी जगाया है। सभी रचनाकारों ने स्त्री-शोषण, उत्पीड़न, पीड़ा और इन सबके परिणामस्वरूप

आए जागरुकता को ही अपनी रचना के केन्द्र में रखा है। समाज के प्रत्येक वर्ग की स्त्री, चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण, सभी ने शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ अपनी आवाज को बुलन्द किया है। स्त्री के प्रति होने वाले अत्याचारों को इन्होंने गहरी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। ये आधुनिक नारी की विद्रोही प्रवृत्ति ही है कि वह पुरुष के प्रत्येक अत्याचार को चुनौती देती हुई उन सभी मान्यताओं को अस्वीकार कर देती है, जो पुरुष के वर्चस्व के लिए बनाई गई हैं? महिलाएं पारंपरिक रुढ़िवादी सोच को चुनौती देती हुई पूरे साहस के साथ खुलकर अपनी बात कह रही हैं। सत्ता और स्वाधीनता के लिए ही मात्र संघर्ष नहीं कर रही हैं स्त्रियां, बल्कि समाज में उपस्थित हर एक चुनौती से टकरा रही हैं। अतः हम कह सकते हैं कि स्त्रियां आज हर क्षेत्र में संघर्ष करते हुए नज़र आ रही हैं चाहे वह सामाजिक क्षेत्र हो या राजनीतिक, सत्ता का सवाल हो या स्वाधीनता का, स्त्रियों ने हर क्षेत्र में अपनी प्रबल दावेदारी प्रस्तुत की है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. अतीत होती सदी और सदी का भविष्य, संपादक-राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन
2. कथा संकलनों की भूमिका-निर्मला जैन
3. नगाड़े की तरह बजते शब्द-निर्मला पुतुल

संपर्क : शोधाथी- जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
मो. 9013048895

ई मेल-kmshashirana@gmail.com

आलोचना

रेश्मा खान

साहित्य, मीडिया एवं समाजशास्त्र का अंतःसंबंध

साहित्य का प्रवाह युगानुरूप धारणाओं, साहित्यिक निष्कर्ष और जीवनमूल्यों के उपादान ग्रहण करता हुआ गतिमान रहता है। अंतः किसी युग के साहित्य को तत्कालीन साहित्यिक धारणा, निकष और जीवनमूल्यों के संदर्भ में मूल्यांकित करना उचित कहा जा सकता है। साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि साहित्यकार परंपरागत रुढ़ियों में बंधकर साहित्य रचना नहीं करता। समय के साथ उपमान, बिंब, प्रतीक बदलते रहते हैं। अज्ञेय ने कहा भी है—

ये उपमान मैले हो गए हैं

देवता इन प्रतीकों से कर गए हैं कूच,

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छुट जाता है।

साहित्य का उदय तो यथार्थ के प्रति जिज्ञासा और उसकी जांच-पड़ताल से होता है, उस यथार्थ की जांच-पड़ताल से जो विशिष्ट समूह में रहने वाले विशिष्ट व्यक्तियों को अपने समय की महत्वपूर्ण मानवीय, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के प्रति जटिल अनुक्रिया है।

साहित्य दर्पण बिंब

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य का दर्पण बिंब वाला दृष्टिकोण साहित्य को दस्तावेज के रूप में देखता-समझता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य, सामाजिक संरचना के विभिन्न पक्षों, संबंधों, प्रवृत्तियों, संघर्षों यानी समाज की पूरी बनावट का सीधा प्रतिबिंब है। साहित्य समाज का सतही प्रतिबिंब भर प्रस्तुत न करके लेखकीय आशय के रूप में मूल्यों को भी प्रतिबिंबित करता है। समाज के प्रतिबिंब के रूप में साहित्य का अध्ययन और लेखक के सामाजिक संदर्भ की दृष्टि से साहित्य का अध्ययन यह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की मुख्य पद्धतियां हैं।

सामाजिक यथार्थ एवं साहित्य में नए युग का सूत्रपात

साहित्य की महानता तो इसी में होती है कि महान साहित्य तो वह है जो जीवित रहता है। जिसे समाज सदैव स्वीकार करता है, जैसे संत साहित्य, कबीर, तुलसी, सुर जैसे साहित्य का आलोचक साहित्य का अध्ययन किस दृष्टि से करता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह रचना को किस रूप में ग्रहण करता है। तुलसीदास द्वारा लिखित 'रामचरितमानस' तुलसी की कीर्ति का अमर स्तंभ है। भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट एवं अमर काव्य है। यह एक युग में रचा गया किंतु युगों की रचना बन गया। कोरे श्रृंगारिकता तथा नीरे मनोरंजन की परिस्थितियों को लांघकर साहित्य हमें देशभक्ति एवं राष्ट्रीय जागरण, देश के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन, मानवतावादी विचारधारा, नारी स्वातंत्र्य एवं समानता की भावना, सत्य और न्याय का समर्थन, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, मानव सेवा ही ईश्वर सेवा आदि उच्च मानवीय मूल्यों से परिचित कराता है। मनुष्य सामाजिक

प्राणी है समाज के बिना उसका अस्तित्व शून्य है। प्रेमचंद ने भी अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय आंदोलन, कृषक समस्या, मानवतावाद, भारतीय संस्कृति, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि विविध विषयों को केंद्रित किया है। उनके उपन्यास निर्मला, गोदान, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि इसके प्रमाण हैं। साहित्य में ऐतिहासिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करते उपन्यास चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा (पाप-पुण्य की समस्या प्रस्तुत), अमृतलाल नागर का 'शतरंज के मोहरे' भारत की आंचलिकता पर आधारित साहित्य का निर्माण फणीश्वरनाथ रेणु 'मैला आंचल', नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, रांगेय राघव-कब तक पुकारूं, उसी प्रकार प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में भी अपने परिवेश से अपने आस-पास के जीवन से जुड़ी हुई अनेक विविध समस्याओं से परिचित कराने का सफल प्रयास किया है। उनकी कहानियां गांव से रूबरू कराती हैं तथा कस्बे की जिंदगी या स्कूल-कॉलेज से भी जुड़ी हुई हैं। उदाहरणस्वरूप बूढ़ी काकी, शतरंज के खिलाड़ी, पूस की रात, कफन जीवन के यथार्थ को उजागर करती हैं। जयशंकर प्रसाद की 'बेड़ी' कहानी एक अंधे भिक्षुक की लाठी कहलाने वाले उसके पुत्र की विदारकता को प्रस्तुत करती है। समाज का हर कोना साहित्य में हमें झांकता हुआ-सा प्रतीत होता है।

निराला, महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर आदि ने अपनी रचनाओं में भी ऐसे यथार्थ चित्र उकेरे हैं। साहित्य अपनी सभी विधाओं द्वारा समाज के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों से हमें परिचित कराता आया है। काव्य हो या कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि सभी विधाओं में साहित्य ने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। समाज और साहित्य बीज तथा उत्पन्न पौधे के समान होता है।

मीडिया

सामाजिक जीवन में हरेक व्यक्ति को जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है। सामाजिक परिवर्तन के रूप में शिक्षा की अहम् भूमिका सर्वविदित सत्य है, शिक्षा मानवीय अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाती है तथा समाज के पारंपारिक ढांचे में परिवर्तन लाती है। भाषा द्वारा प्रभावी संप्रेषण किया जाता है, जानकारी का आदान-प्रदान भी किया जाता है। शिक्षा के संप्रेषण हेतु तंत्रविज्ञान माध्यमों का स्वरूप बहुत ही उपयुक्त साबित होता है—दूरदर्शन, रेडियो उसी प्रकार चलचित्र (सिनेमा) आदि का योगदान देखा जा सकता है।

मीडिया पर सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का प्रभाव

साहित्य जगत की उत्तम कृतियों को चलचित्र द्वारा दर्शकों के सम्मुख रखा जाता है। साहित्य को बहुत ही अच्छे ढंग से परोसने का कार्य गत वर्षों में किया भी गया जो उल्लेखनीय है—जैसे साहब, बीवी और गुलाम। गुरुदत्त ने इसे बखूबी पेश किया था, सामाजिक तथा पारिवारिक समस्या का जीवंत उदाहरण इस कथा का विषय था। उसी प्रकार भीष्म साहनी द्वारा लिखित तमस, रांगेय राघव द्वारा

लिखित 'कब तक पुकारूं', देवकीनंदन खत्री लिखित 'चंद्रकांता', वृंदावनलाल वर्मा द्वारा लिखित 'मृगनयनी'—ऐतिहासिक परिवेश को उजागर करते हैं तथा प्राचीन संस्कृति और रीति-रिवाज, प्रथाएं, परंपराओं से रूबरू कराते यह चलचित्र उस समय का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

उसी प्रकार उषा प्रियंवदा का 'पचपन खंबे लाल दीवारें' धारावाहिक, 'उड़ान', 'कल्याणी', 'हम लोग', 'हिंदुस्तान एक खोज', पौराणिक धारावाहिक 'रामायण', 'महाभारत' आदि सभी क्षेत्रों की जानकारी ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक तथा सामाजिकता से हमें परिचित कराती है। प्रेमचंद के उपन्यास को धारावाहिक का रूप दिया गया—निर्मला, उसी प्रकार कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आंधी' को आंधी फिल्म के द्वारा दर्शकों तक लाया गया। साहित्य के सामाजिक आदर्श तथा राजनीति तथा आर्थिक परिस्थितियों से अवगत किया गया।

मीडिया का दायित्व

साहित्य समाज के कोने-कोने को रोशन करता है इस माध्यम से। साक्षर-निरक्षर सभी लेखक की संविदनाओं से भली-भांति परिचित होते हैं। मीडिया के इस प्रभावी माध्यम द्वारा। उसी प्रकार चलचित्र की कहानी गीत, गजल सभी का गहरा संबंध साहित्य से है, भाषा शैली से है, पात्रों के चरित्रचित्रण, देश काल, वातावरण तथा उद्देश्य से है। साहित्य तथा चलचित्रों का गहरा संबंध समाज से है। लेखक की यथार्थता उसकी काल्पनिकता तथा उसका आदर्श रचनाओं में तीव्रता से उजागर होता है। उसका उसके परिवेश से गहरा संबंध दिखाई देता है जो उसकी रचनाओं में कृतियों में साफ झलकता है। मीडिया को समाज प्रबोधन, जनजागृति, लोक कल्याण करने का महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जाता है। मीडिया में जनहित के लिए अनिवार्य बातों को ही विशेषता प्रदान करना उसका प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। अश्लीलता परोसकर समाज को पतन की ओर ले जानेवाले मनोरंजन को साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य जो समाजहित में सहायक हो, दिशादर्शक, पथ प्रदर्शक हो, सदैव जीवित रहे वही समाज को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा सकता है। जो आज मीडिया के लिए ऐसी सामग्री परोसना नितान्त आवश्यक बन गया है। मीडिया आज समाजकल्याण का सशक्त माध्यम होते हुए भी विज्ञापनों के बोझ तले दबकर कहीं दूर भटकता हुआ सा प्रतीत होता है। या फिर विज्ञापन की दुनिया का उस पर बढ़ता प्रभाव इस भटकाव का कारण है, या फिर अर्थ प्राप्ति का जरिया। मीडिया ने आज एक सामान्य व्यक्ति के लिए उच्चकोटि का मनोरंजन तथा शिक्षा एवं जानकारी का सशक्त माध्यम प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य किया है।

समाजशास्त्र

समाजशास्त्र भी समाज में मनुष्य की स्थिति और गति दोनों

का वस्तुगत अध्ययन करता है। सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सामाजिक स्थिरता और गतिशीलता के अध्ययन से समाजशास्त्र का गहरा संबंध है। इस प्रकार साहित्य और समाजशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य का साबका काफी हद तक उन्हीं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं से पड़ता है जिनसे समाजशास्त्र का। अंतर इतना ही है कि कलात्मक रचना के रूप में साहित्य केवल वर्णन या वस्तुगत चित्रण, विश्लेषण से आगे बढ़कर सामाजिक जीवन की गहराई में प्रवेश करता है।

साहित्य मनुष्य की चिंता, आशा और आकांक्षाओं को चित्रित करने के कारण, संभवतः सामाजिक शक्तियों के प्रति मानवी प्रतिक्रिया का सबसे अधिक प्रभावी सामाजिक मापक होता है। जैसे प्रेमचंद के पात्र समाज के प्रतिनिधि हैं। एक पात्र या व्यक्ति की समस्त समस्याएं उभर कर नहीं आतीं। अतः प्रेमचंद ने समाज के प्रतिनिधि पात्रों को लिया है। परिवार चित्रण प्राथमिक ईकाई के रूप में होने के कारण सामाजिक चित्रण हुआ है।

जीवन का अनुभव ही मनुष्य का इतिहास है। वह मनुष्य चाहे कलाकार हो या कोई भी हो।¹ साहित्य की समय-सजगता, संघर्ष परायण, नागरिकों की सर्जना एवं वर्णनों की यथार्थता का कारण बीज भी, व्यक्तित्व की उपर्युक्त विशिष्टता में निहित है। अपने समय के समाज में संवेदनात्मक प्रभावों को ग्रहण करने की मात्रा प्रत्येक मनुष्य या लेखक में एक-सी नहीं होती।

साहित्य के किसी भी विधा का विचार किया जाए उसमें सामाजिकता या सामाजिक समस्याएं निहित हैं। कविता, जंगल, गीत, सभी में समाज की विद्रुपताएं उजागर की गई हैं। प्रेमचंद, नागार्जुन, यशपाल, निराला उसी प्रकार शायरों में भी गालिब, फैज से लेकर दुष्यंतकुमार तक (साथ में धूप) में हम सामाजिक छवि को देख सकते हैं। फिर सामाजिक विषमता हो, भ्रष्टाचार हो, धर्म या शिक्षा, या न्याय के नाम पर की जाने वाली लूट हो, इसका विवरण हमें देखने का मिलता है।

जीवन विकास की इन जटिलताओं का प्रभाव मनुष्य की व्यक्तिगत और सामूहिक चेतना पर व्यापक रूप से पड़ा है। नए जीवन-विकास की जटिलता ने जब मनुष्य की चेतना को चुनौती देना आरंभ किया तो पहले तो वह अपनी परंपरागत सामाजिक तथा नैतिक मर्यादाओं और आदर्शों के रक्षा-कवच को साफ करने, चमकाने तथा ओढ़ने की ओर प्रवृत्त हुआ और इस प्रवृत्ति से सारे संसार का साहित्य प्रभावित हुआ।

साहित्य निर्मित में समाज का प्रभाव

साहित्यकार समाज का एक जागरूक नागरिक होता है, जिससे उसका कर्तव्य या दायित्व समाज के प्रति विशेष हो जाता है क्योंकि वह समाज की उपज है। समाज में व्याप्त निराशा, हताशा तथा विवशता आदि को दूर करने का सरल मार्ग साहित्य है। समाज

में नई चेतना, नई उमंग तथा नई आकांक्षाएं जगाने का सशक्त माध्यम है साहित्य। साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा कमाल कर सकता है। व्यक्ति के अंतर चेतना में गहरे उतरकर अवसाद, कुंठा और आत्महीनता की ग्रंथियों को खोले या नई चेतना का साहित्य जो बलिदान, त्याग, तपस्या और सामाजिक कल्याण पर खड़ा है साहित्यकार का समाज के प्रति बड़ा दायित्व है। आज के सामाजिक परिवेश को चित्रित करने में ही उसके कर्तव्य की इतिश्री नहीं होती बल्कि वह नए समाज की कल्पना साकार करता है। साहित्य के प्रयोजन के संबंध में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के विचार भी दर्शनीय हैं—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।²

साहित्य निर्मित करनेवाला व्यक्ति भी सामाजिक प्राणी है वह समाज में ही रहता है। समाज के द्वारा अनेक संस्कार ग्रहण करता है। उसकी दृष्टि सघन, सूक्ष्म होती है। समाज की गतिविधियों का अवलोकन करने की क्षमा उसमें होती है। बुराईयों को दूर करने का यथासंभव प्रयास करता है। इस प्रकार साहित्य व्यक्ति का, व्यक्ति समाज और समाज राष्ट्र का निर्माण करता है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है, उसको जैसी मानसिक खाद मिलती है वैसी ही उसकी कृति होती है।³ तो इस प्रकार साहित्यकार समाज द्वारा जो कुछ पाता है साहित्य उसी की अभिव्यक्ति होती है।

तत्व :-

1. साहित्य मानव जीवन के हर्ष-विषाद सुख-दुख के ताने बाने से बुना हुआ एक रचना विधान है, जिसके माध्यम से रचनाकार अपने आपको व्यक्त करता है।
2. साहित्य समाज की चेतना में सांस लेता है।
3. साहित्य और समाज निरंतर एक दूसरे को देखने का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं।
4. साहित्य समाज का दर्पण है।
5. मीडिया समाज प्रबोधन का सशक्त माध्यम।
6. मीडिया आधुनिक तंत्रविज्ञान द्वारा संप्रेषण में सक्षम।
7. मीडिया साहित्य, समाज से अत्यधिक प्रभावित होता है।
8. समाजहित में मीडिया उच्चप्रति का कार्य कर सकता है।
9. समाजशास्त्र में सामाजिक तथ्यों एवं समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
10. सामाजिक घटनाओं का ही परिणाम है कि प्रत्येक व्यक्ति इन्हें अपने दृष्टिकोण से देखने और समझने का प्रयास करता है।
11. सामाजिक घटनाओं का प्रत्यक्ष संबंध मानवीय व्यवहारों तथा इसकी क्रिया-प्रणालियों से होता है।

उद्देश्य :-

1. संसार में सदैव ऐसे साहित्य की रचना की गई है जो मानव-जीवन में सुख-शांति की भावना का निर्माण करता आया है।
2. समाज की कार्यप्रणाली को बदलने के लिए संसार में अनेक संस्थाएं अपना अमूल्य योगदान देती हैं, जिनमें से साहित्य भी एक प्रभावी संस्था है।
3. साहित्य जीवन को प्रतिबिंबित करता है।
4. साहित्य मनुष्य के सांस्कृतिक विकास का महत्वपूर्ण चरण है।
5. मीडिया द्वारा समाजोपयोगी, जनजागृति पर आधारित संदेश का प्रसारण होता है।
6. शिक्षा के प्रचार-प्रसार के द्वारा राष्ट्रीय विकास पर अधिक बल दिया जाता है।
7. राष्ट्रीय एकता, सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाता है।
8. मीडिया द्वारा साहित्य तथा सामाजिक मूल्यों के विविध आयामों को उद्घाटित किया जा सकता है।
9. समाजशास्त्र द्वारा समाज के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है।
10. समाजशास्त्र मानव समाज, मानवीय संबंधों तथा सहसंबंधों का एक अनोखा ताना-बाना है।
11. इसमें निरक्षरता, अज्ञानता, कुसंस्कार साम्प्रदायिक दंगे-फसाद, जातिवाद एवं प्रजातिवाद के घोर अंधकार से लेकर शिक्षा-दीक्षा और ज्ञान का जगमगाता प्रकाश भी है।
12. जटिलता सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की सर्वप्रमुख विशेषता है। इसका प्रत्यक्ष संबंध मानवी व्यवहारों तथा क्रिया प्रणालियों से होता है।

निष्कर्ष :-

1. जीवन की पूर्णता के लिए तथा उसको सुंदर और स्वच्छ, सरस और मधुर बनाने के लिए साहित्य का योगदान सराहनीय माना जाता है।
2. साहित्य हताश व्यक्तियों को अपने कार्यक्षेत्र में अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त करता है।
3. साहित्य का प्रभाव व्यापक होता है, जिससे समाज का कोई कोना वंचित नहीं रहता है।
4. साहित्य जीवन को प्रतिबिंबित करता है। साहित्य समाज के लिए उपयोगी माध्यम है।
5. साहित्य का कांतासम्मित मधुर उपदेश बड़ा ही प्रभावोत्पादक होता है।
6. आज मीडिया का प्रभाव ग्रामीण भागों में भी देखा जा रहा है, जहां मीडिया द्वारा पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा

राजनीतिक क्रांति का परिचय मिलता है।

7. मीडिया समाज की ज्वलंत समस्याओं को उजागर कर दर्शकों के सम्मुख रखता है तथा दर्शकों से संवाद कर हल निकालने का भरसक प्रयत्न करता दिखाई देता है।
8. मीडिया सारे विश्व का अध्ययन कराने में सहायक साबित होता है—जैसे अन्य देशों की सांस्कृतिक परंपरा, राजनीतिक गतिविधियां, साहित्यिक गतिविधियां, मनोरंजन, रीति-रिवाज में मीडिया प्रभाव उत्पन्न करता है।
9. मीडिया समाज के विविध पहलुओं का मनोरंजन के द्वारा स्पर्श करता है।
10. साहित्य तथा समाज के बीच मीडिया एक सेतु का कार्य करता प्रतीत होता है।
11. समाजशास्त्र सामाजिक प्राणी अर्थात् व्यक्ति की अनुभूतियों का तथा विविध सामाजिक घटनाओं का केंद्र है।
12. समाजशास्त्र व्यक्तिसमूह विशिष्ट संस्कृति तथा विचारों के आदान-प्रदान का मुख्य बिंदु है।
13. समाज के बिना मनुष्य अधूरा और साहित्य समाज और मनुष्य के बिना अधूरा है।

संदर्भ सूची :

1. हिंदी साहित्यिक निबंध-7
2. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां - 677
3. हिंदी साहित्यिक निबंध - 8
4. वही - 8

संदर्भ ग्रंथ :-

1. उच्चतर सामाजिक अनुसंधान (शोध) सुनील गोयल, आर.बी. एस.ए. पब्लिशर्स, सुनीता गोयल, जयपुर, प्रथम संस्करण
2. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. राजकिशोर सिंह
3. साहित्य का समाज शास्त्रीय चिंतन-निर्मला जैन, दिल्ली विश्वविद्यालय
4. साहित्यिक निबंध- जितेन्द्र टी. मनुबारवाला
5. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां - डॉ. जयकिशन प्रसाद
6. माहिता संप्रेषण तंत्रज्ञान - डॉ. किशोर चव्हाण
7. सामाजिक अनुसंधान का पद्धतिशास्त्र-शशि के जैन

संपर्क : 17/4 मलंग सोसायटी, नियर पी.ई. स्कूल,
जोयरोड-नासिक रोड-422101, महाराष्ट्र, मो. 09881182035

महिलाओं की गोद भरता बाबा!

विगत दिनों लखनऊ के करीब बाराबंकी में एक दस वर्षीय संत बाबा परमानंद उर्फ राम शंकर तिवारी सुर्खियों में था। उन पर आरोप है कि उसने महिलाओं की गोद भरने की आड़ में बलात्कार किया और उनकी सेक्स वीडियो बनाया। यह भेद न खुलता यदि उसका लेपटॉप खराब न होता। कम्प्यूटर इंजीनियर ने जब लैपटॉप सुधारने के दौरान उस वीडियो क्लिप को देखा तो हैरान रह गया। उसमें करीब 200 महिलाओं के सेक्स वीडियो थे। उसने कुछेक वीडियो को सोशल साईट पर अपलोड कर दिया। इसके बाद हल्ला मचा और पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। सोशल मीडिया में तैर रहे इन तमाम वीडियो में से कुछ वीडियो को देखने के बाद मन विचलित हो जाता है और मन सोचने के लिए मजबूर होता है कि हमारा जन समुदाय किस ओर जा रहा है। हमारी शिक्षा का क्या औचित्य है?

गौरतलब है कि बाबा परमानंद संतान प्राप्ति का सुख देने के लिए कुख्यात है। खासकर पुत्र प्राप्ति हेतु। दावा है कि वैदिक रीति से तंत्र-मंत्र की साधना करते हैं। कई केन्द्रीय और राज्य मंत्री उनके मुरीद हैं। उनके आश्रम (अय्याशगाह) में लगी इन हस्तियों के साथ तस्वीर को देखने से उनके राजनीतिक और समाजिक हैसियत का अंदाजा लगाया जा सकता है। इन वीडियो को देखने से कहीं से भी ये नहीं लगता कि यह कोई बलात्कार है, ऐसे ही एक वीडियो में एक युवती अपने वस्त्र उतार रही है और बाबा परमानंद के अंतःवस्त्र उतारने में मदद कर रही है। बाबा लेटे हुए हैं और युवती मुख मैथुन कर रही है। तत्पश्चात् बाबा उसे बाकी वस्त्र भी उतारने का इशारा करते हैं वह बिना संकोच शेष वस्त्र भी उतार देती है। गौरतलब है कि इसी दरमियान भजन गायन की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। महसूस होता है कि दूसरे कमरे में काफी लोग भजन गा रहे हैं और बीच-बीच में देवी-देवताओं, बाबा परमानंद की जय के नारे भी लगा रहे हैं। इसी बीच बाबा युवती को अपने ऊपर आने का इशारा करते हैं उसके नाजुक अंगों को छेड़ते हैं बाद में बाबा युवती के ऊपर आ जाता है। करीब 24 मिनट के इस वीडियो में मैथुन पश्चात् बाबा खड़ा हो जाता है, युवती उसे उसके अंतःवस्त्र पहनने के लिए देती है और अपने अंतःवस्त्र पहनती है। बताना चाहूंगा कि महिला के वस्त्र पहनने के दौरान लेटा हुआ बाबा उसके नाजुक अंगों में, सिर व चेहरे पर लात फेर रहा है। मानो वह कोई पालतू जानवर हो। आश्रम का वह कमरा जहां यह स्केण्डल हो रहा है निहायत ही छोटा है और देवी-देवताओं की तस्वीर और धार्मिक किताबों से अटा पड़ा है। किताबों के बीच लगे सीसीटीवी कैमरे से ये सब सूट किया जा रहा था। यह सब विस्तार से बताने का मकसद यह है कि वीडियो में कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है, जैसा कि प्रचारित किया जा रहा है।

अन्य वीडियो में भी इसी प्रकार की प्रक्रिया नजर आती है। महिला बदल जाती है। कभी सलवार सूट में तो कभी साड़ी में। ये वीडियो इसलिए विचलित कर देने वाला है क्योंकि बाबा परमानंद के साथ सेक्स कर रही महिलाएं कोई सेक्सवर्कर नहीं हैं, ये आम उच्च मध्यम परिवार की हैं। बावजूद इसके वे इसका विरोध नहीं कर रही हैं और इस लिहाज से बाबा आरोपी बिल्कुल भी नहीं क्योंकि कानून, सहमति के साथ किए गए संबंध की इजाजत देता है।

यह सब ऐसे देश में हो रहा है जहां महिलाएं घर से बाहर अकेले नहीं निकलतीं। कोई अगर घूर कर देख भी ले तो लोग मरने-मरने को उतारू हो जाते हैं। निश्चय ही बाबा के आश्रम में आने के लिए उस महिला ने अपनी मां, बहन, भाई, सास, ननद, पति, देवर, देवरानी, जेठानी का सहारा लिया होगा। यानी उस दौरान जब वो बाबा के साथ समागम कर रही होगी तब निहायत ही करीबी रिश्तेदार बगल के कमरे में बाबा परमानंद की जय के नारे लगा रहा होगा या भजन में लीन रहा होगा।

यह तो तय है कि ये घटना पहली नहीं है और न ही ये आखिरी है क्योंकि जबतक धर्म के लिए अंधभक्ति रहेगी। तब

तक आशाराम, परमानंद, नित्यानंद जैसे लोग अपनी इच्छा तृप्त करते रहेंगे। गौरतलब है कि ये समस्या किसी विशेष धर्म तक सीमित नहीं है, धर्म के ठेकेदार किसी न किसी रूप से अपने भक्तों का शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक शोषण करते रहते हैं।

क्यों होता है ऐसा?

एक ओर भारत में ही 70 वर्ष की महिला का चिकित्सा विज्ञान के सहारे संतान सुख प्राप्त होने के उदाहरण मौजूद हैं वहीं दूसरी ओर एक मर्द को भी बच्चा जनने का मौका मिल चुका है। ऐसी स्थिति में भारत में आए दिन ऐसी खबरें आना दुखद है। भारत का जनमानस अंधविश्वास से उबर नहीं पा रहा है। प्रशासन को इस पर गहराई से विचार करना होगा। हमें यह सोचने पर महबूर होना पड़ेगा कि हमारी शिक्षा का क्या औचित्य है? क्या हम धार्मिक अंधविश्वास के तले आधुनिक शिक्षा को रौंद रहे हैं? संत बाबा परमानंद से समागम करतीं ये महिलाएं खूबसूरत हैं, संभ्रात परिवार की लगती हैं। निश्चय ही वे पढ़ी-लिखी होंगी, उनका परिवार भी शिक्षित होगा, तो फिर उस परिवार ने कैसे संतान प्राप्ति के लिए झाड़-फूंक यज्ञ हेतु अपनी महिलाओं को सौंप दिया।

पहलू और भी हैं

एक ऐसे देश में जहां महिलाओं की हरेक गतिविधि पर नजर रखी जाती है, उन्हें महीनों चाहरदीवारी में कैद रखा जाता है, वहीं दूसरी ओर ऐसे आश्रमों में जाने की खुली छूट रहती है। भारत में आज भी संतान के लिए महिलाओं को जिम्मेदार माना जाता है, निस्संतान होने पर तरह-तरह से जलील किया जाता है। यातनाएं दी जाती हैं। पारिवारिक, सामाजिक तानों से उसका जीवन नर्क बना दिया जाता है। इन वीडियो को देखने से लगता है कि इस नरक भरी जिन्दगी से उबरने के लिए यदि किसी महिला को ये सब करना पड़ रहा हो, तो शायद इतना बुरा नहीं है जितना समझा जाता रहा है क्योंकि ऐसा करने के लिए उसी के परिवार ने, समाज ने उसे मजबूर किया है।

○

संपर्क : एमआई-11, फेस-1
नियर संत थॉमस स्कूल, कबीर नगर,
रायपुर (छत्तीसगढ़)-492099
मो. - 09977082331

युद्धरत आम आदमी का अगला अंक-जुलाई, 2017

कहानियां

सूर्यनाथ सिंह, विमल कुमार टोप्पो
गुलशन बानो, बृजेश यादव
हूबलाल राम 'अलकहा'

कविताएं

राहुल राजेश, वीरू सोनकर, दिनेश कुमार

आलोचना

अरुण अभिषेक, निवेदिता, डॉ. रवीन्द्र कुमार
डॉ. रमेन्द्र, रत्नेश कातुलकर

आदिवासी आलेख

डॉ. धीरज भाई वणकर, प्रमोद मीणा
आरती चौधरी

दलित आलेख

जयप्रकाश वाल्मीकि, कविता पासवान
बाबू दावलपुरा, ओम प्रकाश मीणा

निकष

धर्मचंद्र विद्यालंकार,

नए दौर के प्रकाशक

हिन्दी साहित्य और हिन्दी समाज के बीच का रिश्ता लगातार कमजोर पड़ता जा रहा है। हाल के वर्षों में इन दोनों के बीच अलगाव तेजी से बढ़ा है। विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा में साहित्यिक पुस्तकों की द्वाँई सौ-पाँच सौ प्रतियाँ भी मुश्किल से बिक पाती हैं। बाजार ने हमारी संवेदना को और तकनीक ने हमारे पठन-पाठन के तौर-तरीके को पूरी तरह बदलकर रख दिया है। साहित्य की दुनिया बहुत थोड़े से लोगों के बीच सिमट कर रह गई है। इन थोड़े से लोगों के बीच ही रचनाएं लिखी जाती हैं, पढ़ी जाती हैं, प्रशंसित होती हैं और महान भी बन जाती हैं। साहित्य की दुनिया से संबद्ध हर कोई इस संकट से वाकिफ है और चिंतित भी। साहित्यिक विरादरी के सामने एक बड़ा प्रश्न यह है कि निरंतर खत्म होते साहित्यिक संस्कार और रुचि को कैसे बरकरार रखा जाए? बाजार और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के अज्ञेल हमलों के बीच साहित्य को कैसे अपनी पूरी गरिमा और अर्थवत्ता के साथ अविचल रखा जा सके?

निस्सन्देह इस चुनौती से निपटने में सबसे बड़ी भूमिका प्रकाशकों की है। लेखक तो सिर्फ बेहतर लिख सकता है। उसके लिखे हुए का प्रचार-प्रसार करना और देश के कोने-कोने में फैले साहित्य प्रेमियों तक पहुंचाना तो प्रकाशकों का ही काम है। आज के समय की असल समस्या अच्छी पुस्तकों का अभाव नहीं बल्कि उनका पाठकों तक न पहुंच पाना है। हिंदी प्रकाशन उद्योग का केन्द्र दिल्ली है। यहां हिंदी के सभी बड़े प्रकाशक हैं। बावजूद इसके पूरी दिल्ली में एक भी दुकान नहीं है जहां आप अपनी मनचाही पुस्तकों को उलट-पलट सकें और आश्वस्त होने पर खरीद सकें। जब दिल्ली की यह हालत है तो अन्य शहरों की स्थिति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। छोटे-बड़े शहरों में लोग चाहते हुए भी न किताबों को देख पाते हैं, न खरीद पाते हैं। प्रकाशन के व्यवसाय से घर, गाड़ी सहित तमाम भौतिक सुविधाएं जुटाकर आभिजात्य जीवन जी रहे प्रकाशकों की इस बात में तनिक भी दिलचस्पी नहीं है कि हिंदी पुस्तकों का एक अखिल भारतीय नेटवर्क तैयार किया जाए और हर शहर में पुस्तकों की उपलब्धता को सुनिश्चित किया जा सके।

यह स्थिति किसी को भी अचरज में डाल सकती है कि प्रकाशक पाठकों की पहुंच बढ़ाने की दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं करते हैं। सामान्य बुद्धि तो यही कहती है कि पुस्तकों के प्रचार-प्रसार और पाठकों के बीच सुगमता से उपलब्धता के कारण बिक्री बढ़ेगी और प्रकाशकों को लाभ होगा। तो क्या हिन्दी का प्रकाशक लाभ कमाना नहीं चाहता? नहीं, वह खूब लाभ कमाना चाहता है बल्कि यह कहना ठीक होगा कि वह सिर्फ और सिर्फ लाभ ही कमाना चाहता है। दरअसल, सच्चाई यह है कि हिन्दी प्रकाशक को पाठकों तक पहुंचने की अनिवार्यता ही नहीं है। हिंदी का पूरा प्रकाशन उद्योग सरकारी खरीद पर निर्भर है। उसमें भी थोक खरीद पर अधिक। सरकारी खरीद के कारण ही किताबों के अनाप-शनाप दाम रखे जाते हैं। दाम रखते समय पाठक को नहीं सरकारी खरीद को ध्यान में रखा जाता है ताकि कम प्रति बेचकर भी अधिक से अधिक मुनाफा कमाया जा सके। सरकारी खरीद ने लेखन की गुणवत्ता को बुरी तरह प्रभावित किया है। प्रकाशक इस आत्मविश्वास से भरा होता है कि वह रद्दी से रद्दी रचना को भी सरकारी खरीद में खपा देगा। उसके लिए लेखक की महत्ता सिर्फ सूची पत्रों में नाम देकर अपना 'ब्रांड वैल्यू' बढ़ाने तक सीमित है।

हिन्दी का प्रकाशक बिना परिश्रम के ठोस लाभ कमाने में यकीन रखता है। पाठक केन्द्रित व्यवसाय में मेहनत अधिक है। इसलिए वह पाठकरहित व्यवसाय को प्राथमिकता देता है। पाठकरहित व्यवसाय का एक रूप सरकारी खरीद है। इसका दूसरा रूप इस तथ्य में देखने को मिलता है कि हिंदी में नब्बे प्रतिशत लेखकों को कोई रायल्टी नहीं मिलती है। अधिकांश लेखकों के साथ तो कोई 'कांटेक्ट' भी साइन नहीं होता है। बहुत सारे लेखकों से पुस्तकें छापने के लिए पैसे लिए जाते हैं। दस से पचास हजार तक रेट है। आप कितनी सौदेबाजी कर सकते हैं यह आप पर निर्भर है। पाठकरहित व्यवसाय का यह तीसरा रूप है। इधर एक चौथा रूप भी दिखाई देने लगा है। अब प्रकाशक पहले की तरह किताबों की प्रतियाँ छापकर नहीं

ख रहे हैं। लेखक को संतोष दिलाने के लिए दस-बीस प्रति छाप देते हैं। बाकी खरीद का 'आर्डर' मिलने पर छापते हैं। ऐसे में यह बहुत संभव है कि नई किताब की ही कोई एक प्रति पाठक खरीदने जाए तो उसे 'आउट ऑफ प्रिन्ट' बताया जाए।

पाठकरहित प्रकाशन व्यवसाय की कुप्रवृत्तियों ने हिंदी में पुस्तक संस्कृति के विकास और संवर्धन में प्रकाशकों की कोई भूमिका हो सकती है, इस संभावना को पूरी तरह समाप्त कर दिया है। लोगों में साहित्यिक संस्कार पैदा करने के लिए प्रकाशक कोई पहल न करें, यहां तक तो फिर भी गनीमत है, पर प्रकाशक अगर साहित्यिक अभिरुचि और संस्कार को नष्ट करने लगे यह तो हद है। हिंदी के दो बड़े प्रकाशनों ने इधर एक खतरनाक प्रवृत्ति को जन्म दिया है जिससे पहले से ही संकटग्रस्त हिंदी साहित्य का संकट और बढ़ गया है। इन दोनों प्रकाशनों ने साहित्यिकता से रहित सतही मनोभावों की सतही गद्यात्मक अभिव्यक्ति को साहित्य के नाम पर न सिर्फ छापना शुरू कर दिया है बल्कि उसका आक्रामक प्रचार-प्रसार भी कर रहे हैं। साहित्य के स्वधर्म व स्वाभाविक गुणों और उद्देश्यों से रहित इन किताबों को साहित्यिक पुस्तकों पर तरजीह दी जा रही है। यह काम छुटभैये अनाम प्रकाशक करते तो कोई नोटिस लेने वाली बात नहीं थी क्योंकि फुटपाथों पर छोटे-मोटे अनजान प्रकाशनों से छपी ऐसी किताबों का बिकना सामान्य बात है। पर समस्या गंभीर तब बन जाती है जब यह काम वे प्रकाशक कर रहे हैं, जिनका साहित्यिक पुस्तकों के व्यवसाय पर लगभग सत्तर फीसदी तक कब्जा है और आज जिनकी पूरी प्रतिष्ठा और अर्थतंत्र का आधार साहित्यिक पुस्तकें हैं।

साहित्य का बाजार बनाने की जगह बाजार के अनुरूप तथाकथित साहित्य छापने की व्यवस्थित शुरुआत हिंदी के सबसे बड़े प्रकाशन समूह राजकमल प्रकाशन ने लप्रेक (लघु प्रेम कथाएं) सीरीज से की। इसके तहत 'इश्क में शहर होना' (रवीश कुमार), 'इश्क में माटी सोना' (गिरीश नाथ झा) और 'इश्क कोई न्यूज नहीं' (विनीत कुमार) जैसी आकर्षक शीर्षक वाली आनंददायक किताबें छपी गईं। इन किताबों का जोर-शोर से ऐसा प्रचार किया गया कि मानो साहित्य में नए युग की शुरुआत हो गई है और यही भावी पीढ़ी का साहित्य है। हिंदी के लगभग सभी क्लासिक रचनाओं को छापने वाला प्रकाशक इस कदर दृष्टिहीनता का शिकार हो सकता है, पहली बार महसूस हुआ। दृष्टि की तो सीमा हो सकती है पर दृष्टिहीनता का कोई अंत नहीं है। प्रकाशक को लगा कि पुरुषों की तुलना में स्त्री के अनुभव ज्यादा रोमांचकारी और बिकाऊ होते हैं

इसलिए उसने यात्रा-वृत्तांत के नाम पर अनुराधा बेनीवाल की किताब 'आजादी मेरा ब्रांड' को न सिर्फ छपा बल्कि उसे उस साल की श्रेष्ठ कृति (पाण्डुलिपि) का अपना सलाना पुरस्कार भी दिया। इस किताब को भी ऐसे प्रचारित किया गया कि जैसे इसी पुस्तक से हिंदी में यात्रा-साहित्य की शुरुआत हो रही है। सच्चाई यह है कि यात्रा-साहित्य की समृद्ध परंपरा में यह पुस्तक कहीं भी टिकती ही नहीं है। स्पष्ट है, यह नए दौर का राजकमल है जो अपने गौरवमयी अतीत को तिलांजलि देने का सचेत प्रयास कर रहा है। अतीत से छुटकारा पाने के लिए वह किस हद तक जाएगा, अभी ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अभी इसी विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशक ने क्षितिज रॉय की किताब 'गंदी बात' शीर्षक से उपन्यास कहकर छपा है। इसके कवर पर ही लिखा है—'प्यार में कुछ भी गंदा नहीं होता' और बैक कवर पर लिखा है—'एक लड़का था-कुछ लोफर, लफुआ, दीवाना-सा!.....।' पाठकों को लुभाने के लिए कवर पर सिर्फ मनभावक तस्वीरों की कमी है। हो

सकता है आगे की किताबों में इस संकोच से भी तौबा कर लिया जाए।

जब हिंदी के सबसे बड़े प्रकाशक ने 'लप्रेक', 'आजादी मेरा ब्रांड' और 'गंदी बात' जैसी किताबें छापकर इनके पक्ष में आक्रामक प्रचार अभियान शुरू किया तो दूसरे नंबर के प्रकाशक को पिछड़ने का डर सताने लगा। वैसे भी 'महाजने येन गतः स पन्थाः।' अनुराधा बेनीवाल की 'आजादी मेरा ब्रांड' को टक्कर देने के लिए वाणी प्रकाशन ने नीलिमा चौहान की 'पतनशील पत्नियों के नोट्स' को खड़ा किया। भाषा के सतहीपन, अनुभवों की स्थूल अभिव्यक्ति और पुरुषों को आनंदित करने की दृष्टि से यह पुस्तक कई कदम आगे है। आप चाहे तो इसे 'साट पोर्न' कह सकते हैं नहीं तो हिंदी में सर्वाधिक दुरुपयोग होने वाला शब्द 'बोल्ड' तो है ही। पारदर्शी प्लास्टिक में बंद इस किताब के बैक कवर पर पाठकों की उत्सुकता जगाने के लिए लिखा है, "सियाह में सुफेद और सुफेद में सियाह की शिनाख्त करने वालियों की चुटीली-चटकीली बकबक है ये किताब। उनके दिलों की खलबली जो थी अब तक अनसुनी-अनकही। जनाब किताब नहीं है, आतिश है, जलजला है।... अपनी चाहतों और सपनों को बेहिजाब कर डालने वालियां, आफतों पर रोने की बजाय हंस सकने वालियां और आपको भी हंसाकर अपनी तकरीरों के शिकंजे में फांस लेने वालियां! हजरात यही हैं पतनशील पत्नियां!..." स्त्री के रोजमर्रा के अंतरंग अनुभवों को, स्त्री शरीर को लेकर आदमी की सोच को उर्दू की कामुक शब्दावली में कुछ इस तरह स्थूल

दंग से प्रस्तुत किया गया है कि कोई स्त्री की पीड़ा का एहसास भी न कर पाए। इस बात का पूरा ख्याल रखा गया है कि पढ़ते समय पुरुष को सिर्फ मजा आए। स्त्री पीड़ा के अहसास से उसका मन बेस्वाद न हो जाए। वर्णन शैली ठीक वैसी ही है जैसे कोई यह चित्रित करे कि बलात्कार में स्त्री यौन आनंद पा रही है। साहित्य के सनातन प्रश्नों में से एक प्रश्न रूप और अंतर्वस्तु के संबंध का है। इस पुस्तक के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि साहित्य के लिए रूप का प्रश्न विषयवस्तु के प्रश्न से तनिक भी कम महत्व का नहीं होता। इस पुस्तक की विषयवस्तु को अलग-अलग रूप में अभिव्यक्त करने से नतीजे भी अलग-अलग होंगे। वर्तमान रूप (भाषा, शब्द, चयन और शैली) के कारण यह पुस्तक 'साट पोर्न' है। दूसरे रूप में यह स्त्री विमर्श की पुस्तक भी बन सकती है। यह किताब इस बात की बेमिसाल उदाहरण है कि लेखकीय दृष्टिहीनता के कारण किस तरह किसी स्त्री द्वारा लिखित देखा सुना और भोगा गया जीवनानुभव 'साट पोर्न' में तब्दील हो जाता है और पुरुष की संवेदनशीलता को झकझोरने की जगह मजा देने लगता है।

शायद प्रकाशक की भी दिलचस्पी स्त्री के प्रति संवेदनशीलता पैदा करने में नहीं बल्कि स्त्री को मजा की वस्तु बना देने में है। प्रकाशक इस किताब का जिस तरह प्रचार-प्रसार कर रहा है वह अभूतपूर्व है। कुछ इस तरह की उसके पास अद्वितीय साहित्यिक कृति के रूप में एकमात्र किताब 'पतनशील पत्नियों के नोट्स' है और इसके सामने हिंदी की सारी रचनाएं दोगुने दर्जे की हैं। जयपुर लिटरेचर फेस्टिवल से लेकर आई0 पी0 कॉलेज के साहित्योत्सव तक के दर्जनों आयोजनों में इसी किताब को महत्ता मिली। 'वोटर माता की जय' (प्रतिष्ठा सिंह), और लतासुर गाथा (यतीन्द्र मिश्र) जैसी कुछ किताबों का जरूर थोड़ा-बहुत प्रचार-प्रसार किया गया। पर ये किताबें भी साहित्यिक किताबें नहीं हैं। याद नहीं आता कि इधर के वर्षों में इस प्रकाशक ने कभी बड़े-बड़े साहित्यकारों तक की किताबों के प्रचार-प्रसार के लिए इतने व्यापक स्तर पर कुछ किया हो। वह नरेन्द्र सैनी की किताब 'इश्क की दुकान बंद है' पर परिचर्चा के लिए गोष्ठी कर सकता है पर अपने यहां से आई मुख्यधारा की साहित्यिक कृति पर चर्चा कराना उसे अतिरिक्त महत्व देना लगता है। उसे मालूम है कि स्वाभिमानरहित हिंदी के लेखक घनघोर उपेक्षा और अपमान के बावजूद भी उसके यहां करबद्ध खड़े रहेंगे। अनुभवों ने उसे यही सिखाया है।

इस तरह की किताबों को छापना और उसे वास्तविक साहित्य की कीमत पर तरजीह देते हुए प्रचार-प्रसार करना

हिंदी साहित्य और उन साहित्यकारों के प्रति विश्वासघात है जिनकी किताबें बेच-बेचकर आज ये महान बने हैं। क्या नई पीढ़ी इसी तरह की किताबें पढ़कर साहित्यिक संस्कार सीखेगी? सबसे दुखद बात तो यह है कि आज कोई इसका विरोध नहीं कर रहा है। वे लेखक-लेखिकाएं कहां हैं जो राजेन्द्र यादव के स्त्री विमर्श को पानी पी-पी कर कोसते थे। 'होना सोना एक खूबसूरत दुश्मन के साथ' शीर्षक राजेन्द्र यादव के लेख पर तूफान खड़ा करने वाले लोग कहां हैं? वे कहां हैं जिन्हें नई पीढ़ी की लेखिकाओं की साहित्यिक रचनाओं में सेक्स को लेकर मौज-मस्ती का भाव दिखाई देता है। वे इस तरह की किताबों को लेकर क्यों चुप हैं? स्त्री के माध्यम से घोर स्त्री विरोधी लेखन को 'प्रमोट' किया जा रहा है और सब चुप हैं। साहित्य का चीरहरण हो रहा है और सभी महारथी चुप हैं। साहित्य के दो बड़े प्रकाशक अपने-अपने तरीके से साहित्य को बेदखल कर रहे हैं और सब चुप हैं। यह चुप्पी समझदारी नहीं कायरता है। इस चुप्पी का परिणाम हिंदी साहित्य के लिए आत्मघाती और दूरगामी होगा।

○

**संपर्क : फ्लैट न0 4 (अपर ग्राउण्ड), एस0-21,
खिड़की एक्सटेंशन, मालवीय नगर, नई
दिल्ली-110007,
मो0- 09717575908**

समाचार पत्रों की पहचान होती है भाषा : ओम थानवी (‘जनसत्ता’ के पूर्व सम्पादक ओम थानवी से रजनीश मिश्रा की बातचीत)

(हिंदी अखबारों ने बदलाव के कई दौर देखे हैं जिससे वे प्रभावित भी हुए। वर्तमान ‘सूचना-समाज’ एवं प्रौद्योगिकी के युग में इन अखबारों को एक नई किस्म की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, वे चुनौतियां किस प्रकार की हैं और उसका क्या असर हिंदी के अखबारों में है, इन सब विषयों पर जनसत्ता से हाल ही में सेवानिवृत्त हुए संपादक **ओम थानवी** का **रजनीश मिश्रा** द्वारा लिए गए साक्षात्कार के प्रमुख अंश)

ओम थानवी जी, आप पच्चीस वर्षों तक जनसत्ता से जुड़े रहे, पहले चंडीगढ़ फिर काफी समय तक दिल्ली में, आप हिंदी पत्रकारिता में आए परिवर्तन के गवाह भी हैं, इन परिवर्तनों के बीच आप जनसत्ता को अन्य हिंदी दैनिक समाचार पत्रों की पंक्ति में किस प्रकार देखते हैं?

जनसत्ता शुरू से ही एक अलग किस्म का अखबार था। इसके संस्थापक संपादक प्रभाष जोशी ने इसे एक ऐसा अखबार बनाने की शुरुआत की जिसमें खबरों के साथ-साथ विचारों का चयन भी बड़ी गंभीरता से किया जाता था, जब मैं चंडीगढ़ में था तब वहां से प्रकाशित संस्करण की स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी, वह कोलकाता और लखनऊ संस्करण की तरह ही निकलता था लेकिन दिल्ली संस्करण अपने निष्पक्ष विचारों एवं अपनी संतुलित पृष्ठ सज्जा के साथ अपनी अलग पहचान बना चुका था, और कई तरह के व्यवधानों का सामना करते हुए आज भी हिंदी अखबारों में जनसत्ता अपनी विशेष पहचान बनाए हुए है, इसके संपादकीय एवं वैचारिक पृष्ठ आज भी विचारशील लोगों के बीच गंभीरता से पढ़े जाते हैं।

हिंदी समाचारपत्रों के इतिहास में संपादकों और संपादकीय नीतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, आप हिंदी समाचारपत्रों में वैचारिक पृष्ठ के महत्व को किस रूप में देखते हैं, विशेषकर वर्चुअल संचार माध्यमों की बढ़ती लोकप्रियता के बीच?

वर्चुअल माध्यम में विचारों की गहराई नहीं होती वे त्वरित होते हैं, अधिकतर भावावेश में लिखे गए होते हैं इसलिए कम समय में मिट जाते हैं, लेकिन वैचारिक पृष्ठों एवं पत्रिकाओं आदि के लेखों में गहराई होती है, जहां तक संपादकीय पृष्ठों की बात है तो वे हमेशा से समाचारपत्रों की जान रहे हैं। इसमें संपादक अपने विवेक के अनुसार सामग्री एवं विषयों का चुनाव करते हैं। हमारे यहां पहले संपादकीय पृष्ठों में तीन संपादकीय लिखे जाते थे जिसमें एक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर, एक में राज्य एवं वहां होने वाली घटनाओं से संबंधित विचार तथा तीसरे में कम गंभीर विषय पर विचार होते थे, इन संपादकीयों के अलावा इस पृष्ठ पर अग्रलेखों के द्वारा भी कई विषयों पर विचार प्रस्तुत किए जाते थे। वर्तमान समाज में जहां लोग अपनी भागम-भाग वाले जीवन में व्यस्त हैं और सोचने से बचना चाहते हैं ऐसे में संपादकीय पृष्ठों का महत्व बढ़ जाता है।

हिंदी समाचारपत्रों के पृष्ठों में इंपोर्ट-एक्सपोर्ट के दौर में विचारों का भी इंपोर्ट-एक्सपोर्ट होने लगा है। कई आलेख अनूदित होकर (इसमें केवल अंग्रेजी से हिंदी ही है न कि कोई अन्य भारतीय भाषा) छपने लगे हैं, इसे क्या हिंदी में विशेषज्ञ लेखन की शून्यता माना जाए?

हिंदी के अखबारों में जो एक और चीज देखने को मिली है वह है कि इसमें हिंदी के लोगों से ज्यादा अंग्रेजी के लोग छपते हैं, जैसे हिंदी में लेखकों-बुद्धिजीवी का अभाव हो। रामचंद्र गुहा, कुलदीप नैयर छपते हैं क्योंकि ये लोग अंग्रेजी में ब्रांड बन चुके हैं। ये अखबार उन्हें छापते हैं और कहते हैं कि हमारा अखबार बड़ा अखबार है क्योंकि हम लोग अंग्रेजी के लेखकों को छापते हैं। हिंदी के कृष्ण कुमार जैसे लेखकों को जहां अंग्रेजी के समाचार पत्र छापते हैं वहीं

हिंदी के समाचार पत्रों के पास उनके लिए जगह कम है। चेतन भगत जैसे लेखकों को छापना उनके ब्रांड का फायदा उठाने के अलावा कुछ नहीं है। हां एक दूसरा कारण संसाधनों की कमी भी है। हिंदी के कई समाचार पत्रों के पास संसाधनों की कमी है, प्रबंधन के द्वारा पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं कराए जाते और कम खर्च पर काम चलाने को कहा जाता है, मान लीजिए एक लेख के लिए अगर एक हजार रुपए देने पड़ते हों तो महीने के तीस हजार हुए और जब कम कीमत पर अनूदित लेख उपलब्ध हों तो प्रबंधन उसी से काम चलाना चाहता है।

वर्ष 1990 के आस-पास जनसत्ता के संपादकीय पृष्ठों में तीन संपादकीय (विषयों) के अलावा, शिकायतें, आलेख एवं किसी राज्य में हो रही परिघटना से संबंधित विचार एवं पाठकों के पत्र (चौपाल) होते थे, वहीं वर्तमान में उनकी जगह कुछ जगह 'दुनिया मेरे आगे' और 'समांतर' जैसे कॉलम ने ली है इसके बारे में कुछ बताएं?

तीन संपादकीय छपने ही चाहिए लेकिन प्रबंधन के दबाव में उसे केवल दो तक ही सीमित कर दिया जाता है। शिकायतें चूंकि विचारों से संबंधित नहीं होती थीं इसलिए उसे अन्य पृष्ठ में भेज दिया गया। 'दुनिया मेरे आगे' स्तम्भ अच्युतानंद मिश्र ने शुरू किया था जिसमें लोगों के जीवन में घटने वाली आम घटना के लेखन को भी स्थान मिल सके। 'दुनिया मेरे आगे' और 'समांतर' के लिए पैसा नहीं देना पड़ता था यह कई बार साभार प्रकाशित होती थी। 'समांतर' और 'दुनिया मेरे आगे' ने दूसरे अग्रलेख की जगह ले ली क्योंकि प्रबंधन ने हमारे संसाधन छोटे कर दिए थे। संसाधन छोटे थे लेकिन उन्होंने हमारी स्वतंत्रता में कभी भी दखल नहीं डाला।

आपके संपादन काल में जनसत्ता के वैचारिक पृष्ठों पर हाशिए के चिंतन को प्रमुखता से स्थान मिला जो कि अन्य हिंदी समाचार पत्रों में न के बराबर है इसके पीछे का विचार क्या है?

अखबारों और मीडिया में शुरुआत से ही सवर्णों का अधिकार था, जनसत्ता में भी प्रभाष जोशी, अच्युतानंद मिश्र, राहुल देव और मैं खुद ब्राह्मण वर्ग से आते हैं, और भी अन्य कारणों से दलितों, आदिवासियों और वंचितों को वह स्थान नहीं मिला, जो अब उन्हें मिलना चाहिए उनसे जुड़े विभिन्न मुद्दों पर हो रहे विमर्शों को भी अखबारों में स्थान दिया जाना चाहिए।

क्या भूमंडलीकरण ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाचारपत्रों के वैचारिक पृष्ठों की अंतर्वस्तु को प्रभावित किया है?

हां, लेकिन 'जनसत्ता' के संपादकीय पृष्ठों पर इसका कोई विशेष प्रभाव पड़ा हो ऐसा नहीं है, हमने समाचार के साथ विचार को लगातार प्रस्तुत किया। लेकिन प्रबंधन के द्वारा हमारे अखबार को संसाधन बढ़ाने की छूट नहीं मिली, इसलिए हम ज्यादा बदलाव नहीं ला पाए। हमने इसके लिए प्रबंधन से लड़ाई भी लड़ी, वह हमें अनुबंध में काम कराना चाहते थे लेकिन हमने पुरानी व्यवस्था ही स्वीकार की जिसका मुझे निजी तौर पर खमियाजा भुगताना पड़ा, मेरा प्रमोशन कई वर्षों तक रोक दिया गया। अंतिम समय तक भले ही मैंने संपादक का पूरा दायित्व निभाया और लोग मुझे संपादक ही समझते रहे लेकिन रिटायर्ड होने तक प्रिंट लाइन में मेरा नाम कार्यकारी संपादक के तौर पर ही अंकित था।

जब वर्तमान में पश्चिम के कई देशों में समाचारपत्रों की संख्या में कमी आई है, और भारत में इसमें वृद्धि हुई है, ऐसे में आप भारत में समाचारपत्रों विशेषकर हिंदी समाचारपत्रों के भविष्य को कैसे देखते हैं?

जैसे-जैसे पत्रकारिता में मुनाफे का खेल बढ़ेगा पत्रकारिता कम होती जाएगी, हिंदी अखबारों में जो सबसे बड़ा नुकसान हुआ है वह है विचारों का लोप, अखबारों में कोई विश्लेषण नहीं होता है और संपादकीय पेज आज के प्रबंधन के लिए सबसे अप्रासंगिक चीज है। एक और बात जो मैं समझता हूं वह यह है कि अखबार में संपादक नाम की जो चीज है वो बिल्कुल खत्म है, सबसे ज्यादा बिकने वाले जो अखबार हैं जिनमें आंध्र, केरल, तमिलनाडु, पंजाब, प. बंगाल, मध्य प्रदेश आदि से प्रकाशित क्षेत्रीय अखबार प्रमुख हैं, इन ज्यादातर अखबारों में मालिक ही संपादक होते हैं और नीतियां भी वे ही बनाते हैं, संपादकीय पेज की क्या जगह हो यह तय मालिक ही करता है और मालिक को लगता है कि यह सबसे खराब चीज है इसे कोई नहीं पढ़ता या इसे पढ़ने वाले बहुत कम लोग हैं तो वह इसे मनोरंजन की चीज बना देता है।

वर्तमान समय में हिंदी अखबारों में जिस भाषा का प्रचलन बढ़ा है उसमें अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग के अलावा हिंदी के शब्दों का दुरुपयोग भी है, इस विषय पर आप के क्या विचार हैं?

भाषा अखबार के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन है जिसका पतन हिंदी समाचार पत्रों में बहुत तेजी से हुआ है, अंग्रेजी के बहुत से शब्द हिंदी में आ गए हैं, हिंदी अब बची नहीं है। शब्दों को भी गलत अर्थों में प्रयोग किया जा रहा है, जैसे दबंग और बाहुबली, किसी भी हिंदी शब्दकोश में इन दोनों शब्दों के अर्थ नकारात्मक नहीं हैं ये अच्छे शब्द हैं, बाहुबली तो एक जैन देवता का नाम है, और दबंग का अर्थ है जो किसी से न दबता हो, जो निडर हो, लेकिन अब दबंग दबाने वाले को कहते हैं जिसका उपयोग मीडिया के पत्रकार क्षेत्रीय गुंडों के लिए करने लगे हैं।

मालिक तर्क देता है और सम्पादक को कहता है कि आप खराब हिंदी लिखिए क्योंकि लोग ऐसी ही हिंदी बोलते हैं, तो मेरा तर्क है कि आप अपने अंग्रेजी अखबार में वो अंग्रेजी क्यों नहीं लिखते जो हिंदुस्तान का आदमी बोलता है, वहां संपादक को जिम्मेदारी चाहिए लेकिन हिंदी के प्रति उसका वह रवैया नहीं दिखता। भाषा एक तर्क देती है जिससे पता चलता है कि किसके पास कैसी शब्दावली है और इसी से उसके कद का निर्धारण होता है। जैसे कि जब आप शेक्सपियर को पढ़ते हैं तो उतनी देर के लिए आप शेक्सपियर के बराबर हो जाते हैं आपको शेक्सपियर को पढ़ने के लिए अपनी शब्दावली, अपनी मेधा, अपने विवेक, को ऊंचा उठाना पड़ता है। तो आप अगर अच्छी भाषा को लेकर नहीं आते हैं तो आप समाज को देंगे क्या। हमारी पत्रकारिता का हिसाब भी भाषा है।

संपर्क : रजनीश कुमार मिश्रा
पांडिचेरी केंद्रीय विश्वविद्यालय, पांडिचेरी
sabkarajnish@gmail-com
Mob : 7598369536, 8015353407

निकष

डॉ. बलदेव पाण्डेय

नेटुआ करम बड़ा दुखदायी

सामाजिक गैर-बराबरी, आर्थिक शोषण एवं दैहिक उत्पीड़न के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज करना साहित्य का बुनियादी कर्म है। पेट के लिए एक स्त्री का दैहिक समर्पण सामाजिक कलंक है किंतु इसी पेट के लिए एक पुरुष जब किसी दूसरे पुरुष के सामने स्त्री बनकर नाचने और उसकी कुत्सित कामुकता को बर्दास्त करने की पीड़ा और संताप झेलता है तो उसकी इस अंतहीन अमानवीय यातनाओं की थाह पाना कोई सहज काम नहीं है। कथाकार रतन वर्मा ने इस लेखकीय चुनौती को स्वीकारते हुए अपने सद्यःप्रकाशित उपन्यास 'नेटुआ करम बड़ा दुखदायी' में पुरुष नर्तकों की इसी नीच त्रासदी को बड़ी शिद्दत के साथ उकेरने का काम किया है।

रतन वर्मा ने अपने उपन्यास 'नेटुआ करम बड़ा दुखदायी' में बिहार के मिथिलांचल में मृतप्राय हो रहे नेटुआ-नृत्य से जुड़े लोक नर्तकों की दुरावस्था का मार्मिक चित्रण करते हुए उत्तर आधुनिकता के इस दौर में तथाकथित सभ्य समाज के सामने कई ज्वलंत सवाल खड़े किए हैं। एक समाजशास्त्री वाली पैनी दृष्टि के साथ उन्होंने उन कारकीय तत्वों की गहरी पड़ताल की है जिनके कारण समाज के दलित अभिवांचित वर्ग के पुरुष साड़ी या चोली घाघरा पहनकर नाचने को मजबूर होते हैं। त्रासद सच्चाई यह भी है कि इस साड़ी या चोली-घाघरे के लिए भी उसे मालिक का मुंहताज रहना पड़ता है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र सुक्कन रात भर करवटें बदलकर उन शब्दों की तलाश करता है जिसमें वह अपने मालिक ठाकुर रामउदार सिंह से मनुहार करते हुए चोली-घाघरा खरीदने के लिए कुछ रुपये प्राप्त कर पाता, किंतु सुबह उनकी दहलीज पर पहुंचकर मालिक के सामने जाने की हिम्मत सिर्फ इसलिए नहीं जुटा पाता है कि 'जतरा' के समय उसका मुंह देख लेने मात्र से मालिक का जतरा बिगड़ जाएगा। यह कितनी बड़ी विसंगति है कि साधारण स्थिति में जिन दलितों का मुंह देखने से जतरा बिगड़ता है वहीं विद्या बाबू, नारायण बाबू जैसे ठाकुर लोग नाचते समय नशे में धुत्त होकर मुंह में नोट रखकर उनका मुंह चूमते हैं। नारायण बाबू जैसे विकृत मानसिकता वाले अधेड़ तो उसके साथ दैहिक सम्पर्क के लिए आतुर हो उठते हैं।

नेटुए का बेटा नेटुआ ही होगा या उसे हर हाल में नेटुआ बनकर नाचना ही पड़ेगा, इस तल्ल सच्चाई को उपन्यासकार ने नेटुआ कर्म के लिए अभिशप्त तीन पीढ़ियों के पात्रों यथा- सुक्कन, जमुना और

रामप्रताप के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सुक्कन की जवानी के दिन तो अच्छे थे किंतु जब वह अधेड़ हो जाता है और उसके आगे के दो दांत टूट जाते हैं तो उसके मुंह से निकले श्रृंगार के गीत हास्य और वितृष्णा पैदा करने लगते हैं। देहात में एक मशहूर कहावत है—‘अबरा के मौगी सबके भौजी।’ नाचने वाला नेटुआ जमुना जब गौना कराकर अपनी मेहरिया को लाता है तो गांव के सारे लम्पट तो क्या, नशेड़ी अधेड़ तक जमुना की मेहरिया का देहमर्दन करने के लिए होरी खेलने के बहाने पहुंच जाते हैं। जमुना का कुचला हुआ आत्म-सम्मान जब जगता है और जब वह बांस के फट्टे से मारकर उन्हें भगाता है तो प्रतिकार में इन बाबुओं के द्वारा उसी रात में उसका घर फूंक दिया जाता है। विस्थापन का दंश झेलता हुआ जमुना दर-दर भटकता हुआ किसी प्रकार पेट काटकर अपने बेटे रामप्रताप को पटना में रखकर पढ़ाने का प्रयास करता है और वहां जाकर भी वह लोकनर्तक बनकर स्टेज शो में जुट जाता है। जमुना अपना आपा खो देता है और अखबार में छपी रामप्रताप की फोटो को जलाते हुए अपनी मेहरिया से यह कहता है कि वह बेटे की ‘लहास’ जला रहा है।

आंचलिक कथा-लेखन का प्रबल सूत्रपात करने वाले फणीश्वरनाथ रेणु की जन्मभूमि से ‘विदापत नाच’ के साथ-साथ नेटुआ का नाच भी अवसान के कगार पर है। यह सुखद संयोग का विषय है कि हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु एवं रतन वर्मा दोनों की जन्मभूमि मिथिलांचल है। रेणु परंपरा के कथाकार रतन वर्मा का यह उपन्यास अपनी जबर्दस्त पठनीयता के कारण पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करता है। यह रचना अपने आंचलिक गीतों यथा फाग, जोगीड़ा, विवाह गीत एवं लोक-जीवन की जीवंत झांकियों के सतरंगी चित्रण के बल पर आद्योपांत पाठकों को बांधे रखती है। एक संवेदनशील कलाकार के रूप में लेखक ने अपने इस उपन्यास में यह दिखलाने का प्रयास किया है कि आजादी के लगभग सत्तर साल पूरे होने को है लेकिन लोक-कलाओं का प्रदर्शन कर अपना पेट पालने वालों की दुनिया आज भी वहीं की वहीं ठहरी है।

अनन्य प्रकाशन से प्रकाशित तीन सौ पैंतीस पृष्ठों वाले इस उपन्यास का एक-एक शब्द बिहार में नेटुआ कर्म से जुड़े लोगों की बेवसी और लाचारी में डूबा हुआ है। दबंगों के समाज में यह नेटुआ करम जितना मिथिलांचल में

दुखदायी बना हुआ है उतना ही भोजपुरी जनपदों में ‘लौंडा का नाच’ के रूप में प्रचलित यह लोक-नृत्य परंपरा हास्यास्पद, शर्मनाक और अपमानजनक बनकर अंतिम सांस ले रही है। एक समय था जबकि तिरहुतिया के नाच के रूप में भोजपुरी जनपदों में भिखारी ठाकुर, दरबारी गिरि और चाई ओझा के ये पुरुष लोक-नर्तक शादी-विवाह के अवसर पर होने वाले नाच में साड़ी पहनकर विरह-वेदना से डूबी पूर्वी की ऊंची तान जब गांव के बाहर उठाते थे तो एक ओर दबंग पुरुष समाज उन पर रुपये लुटाता था और दूसरी ओर सात पर्दे के भीतर रहने वाली औरतें ‘ढरूअ-ढरूअ लोर बहाती थीं। शादी विवाह के अवसर पर बढ़ते शानो-शौकत के साथ जब गांव के जमींदार और सम्पन्न किसान तक की महफिलों में बनारस, छपरा और मुजफ्फरपुर की बाई जी नाचने लगीं तो नेटुआ या लौंडा कहे जाने वाले इन पुरुष नर्तकों का मन थोड़ा छोटा तो जरूर हुआ किंतु इन्होंने अपनी बेजोड़ नर्तन कला के बल पर उनसे लोहा लेने का भरसक प्रयास किया। रही-सही कसर सिनेमा वीडियो, ऑरकेस्ट्रा के बाद डीजे के धूम-धडाके ने पूरी कर दी। इन लोक कलाकारों के साथ दो जून की रोटी तक का संकट आ गया। स्वभाव की स्त्रियोचित कोमलता एवं कलाकार मन के आत्मसम्मान के कारण न तो ये खेतों में मजदूरी करने लायक रहे और न ही गांव के मनचले युवकों और विकृत मानसिकता वाले अधेड़ लोगों ने इन्हें किसी दूसरे काम के लायक रख छोड़ा। आजादी के कई दशकों के बाद तक सामंतवादी ढांचे पर खड़े बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के गांवों की आर्थिक सामाजिक गैर-बराबरी में थोड़ी-बहुत कमी भले आई हो किंतु उनकी आदिम मानसिक विकृति में रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं आ पाया है। सुक्कन के बाद जमुना और जमुना के बाद रामप्रताप के द्वारा नेटुआ कर्म का अंतहीन संताप झेलना सहज ही यह सवाल खड़े करता है कि क्या कभी इनके भी अच्छे दिन आएंगे?

उपन्यास : नेटुआ करम बड़ा दुखदायी

उपन्यासकार : रतन वर्मा

प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली

○

द्वारा - डॉ. बलदेव पाण्डेय
102, मालती मिथिलेश रेसीडेंसी, रामनगर,
हजारीबाग - 825301
Mobile : 9334662954,
e-mail : baldeopandeyhb@gmail.com

ग्राम-गंध से सराबोर एक कथाकृति

कहानी वर्तमान में साहित्य की केन्द्रीय विधा है क्योंकि आजकल के आपाधापी भरे युग में पाठकों के पास उसको पढ़ने का अवकाश नहीं है। इस विधा में संक्षेप में ही जीवन के अभाव-अभियोग स्थान पाते हैं। 'चेतना की चिंगारी' धर्मचन्द्र विद्यालंकार का एक ऐसा ही कथा-संग्रह है, जिसमें भारतीय ग्रामीण जीवन की विवशताओं का बेबाक वर्णन है। इस संग्रह की प्रथम कहानी 'ऋण मुक्ति' एक लघु किसान की आकंठ ऋणग्रस्तता के चलते किस प्रकार से ऋणमुक्ति की चाह जीवनमुक्ति में ही परिणत हो जाती है, यह दिखाया गया है। पंजाब से लेकर महाराष्ट्र (विदर्भ) और आन्ध्रप्रदेश एवं तेलंगाना तक पसरी किसानों की आत्महत्याओं की अनवरत श्रृंखला की ओर यह भयावह संकेत है।

'उड़ती चिड़िया' इस संग्रह की प्रेम में विश्वासघात को लेकर लिखित है। प्रायः पुरुष को ही कठोर और अनन्यनिष्ठ प्रेमी के रूप में जाना जाता है लेकिन पूंजीवादी उपभोक्तावाद ने अब एकनिष्ठ समर्पणकारी भारतीय महिलाओं को भी पारिवारिक मूल्यों के प्रति कितना बेपरवाह बना दिया है, यह यहां पर दर्शनीय है। रामो, हीरालाल की दूसरी पत्नी है, पहली स्वर्गवासी हो गई थी, वह पुत्र रत्न देकर जहां पर उसके परि सन्तति-सूत्र को अग्रसर करके वंश-बेल का वर्धन करती हैं, वहीं पर हीरालाल (ड्राईवर) की एक दुर्घटना में मृत्यु होने पर वह उसको मिलने वाले सारे ही सेवा-लाभों से संचित पूंजी को समेटकर दूसरी डाल पर चिड़िया की भांति जा बैठती है। अतएव इसे पारिवारिक मूल्यों से विचलन ही कहा जा सकता है, भले ही कुछ अतिप्रगतिशील इसे नारी-मुक्ति ही क्यों न कहें।

इस संग्रह की 'प्रवज्या' कहानी आध्यात्मिक अथवा धर्मिक पाखण्ड का उद्घाटन करती है। इसमें चन्द्रसेन शर्मा नामक एक विधुर वैद्य अपनी दोनों ही सुपुत्रियों के साथ सन्यस्त एक आश्रम में जाकर रहने लगते हैं। लेकिन आश्रम की प्रौढ़ संचालिका उनको अपने मोहपाश में बांध लेती है। अतएव वे अपने इस प्रणय-प्रसंग का दुष्प्रभाव अपनी दोनों चिरकुमारी पुत्रियों पर देखकर पुनः घरवारी बनने और उनका विवाह करने का निश्चय करते हैं। इसमें धर्मचन्द्र विद्यालंकार ने राग (आसक्ति) और विराग (विरक्ति) जैसी मानव मन की अन्तःप्रवृत्तियों के अन्तः संघर्ष को बखूबी दिखाया है। यहां पर विराग पर राग ही कहीं भारी पड़ता दिखाई देता है।

'चेतना की चिंगारी' में स्वतन्त्रता के सूर्योदय से पूर्व सामन्ती गढ़-राजस्थान में किस प्रकार से किसानों ने सामन्ती व्यवस्था के शोषण से मुक्ति पाने के लिए रक्तिम संघर्ष किया था, यह वर्णित है। किसानों को अपने हित-लाभों के लिए सामाजिक और राजनीतिक संगठन बनाने और सभा-सम्मेलन तक करने की आजादी उस जागीरदारी व्यवस्था में नहीं थी। उनके ऊपर सैकड़ों प्रकार की लाग-बाग (अवैध कर) आरोपित की जाती थीं। अपनी स्वतन्त्रता और समानता के लिए शेखावाटी और मारवाड़ अंचल के जाट-किसानों ने कितना सुदीर्घ संघर्ष किया था, यह यहां पर देखा जा सकता है। बिजौलिया से लेकर डाबड़ा तक के कृषक-आन्दोलनों की एक सुदीर्घ संघर्ष-श्रृंखला मरूभूमि (राजस्थान) में रही है। लेकिन राजनीतिक स्वतन्त्रता पाने के एकाकी उन्माद में हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व ने सदैव इन समतामूलक संघर्षों की अनदेखी ही की है। विजय सिंह पथिक के नेतृत्व में लड़े गए सर्वाधिक सुदीर्घ बिजौलिया आन्दोलन तक को राष्ट्रीय कांग्रेस का खुला समर्थन नहीं मिला था क्योंकि वह पूंजीपतियों और जमींदारों को ही स्वतन्त्रता संघर्ष में अपना अनन्य सहायक समझती थी।

धर्मचन्द्र विद्यालंकार की अभिरुचि भारत के प्राचीन इतिहास में भी गहरी है, इसीलिए उन्होंने इतिहास के अतल कूप में उतरकर अतीत में भी झांकने का प्रयास किया है। अब तक प्रायः यही अवधारणा जनमानस में बद्धमूल है कि सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) ने जगत के जंजालों से विरक्त होकर ही गृहत्याग किया था। लेकिन कथाकार ने यहां पर

उनके द्वारा अभिव्यक्त असहमति को ही उनके राज्य-निर्वासन का एकमात्र कारण बताया है। इस कथा के आधार पर कोलियों और शाक्यों जैसे गणों के मध्य में रोहिणी नदी के जल-वितरण को लेकर हुए विवाद में शाक्य-गण की गणपरिषद् में युद्ध का जो प्रस्ताव बहुमत से पारित किया गया था उसके विरुद्ध असहमति अभिव्यक्त करने के ही कारण उनको देश-निर्वासन का कठोर दण्ड दिया गया था। अतएव उपर्युक्त कथा का नामकरण 'असहमति का मूल्य' सार्थक ही है क्योंकि असहमति का मूल्य सदैव सुकरात से लेकर सरमद और बूर्नों जैसे विचारकों और वैज्ञानिकों ने अपने प्राण देकर चुकाया है। आजकल जनतांत्रिक व्यवस्था में भी जो विषम वातावरण असहमति के विरुद्ध बनने जा रहा है, वह तो और भी अधिक विकराल स्वरूप ले सकता है।

'अपने और पराये' कहानी संयुक्त पंजाब में शहरी सवर्णों और ग्रामीण किसानों के मध्य में चलने वाले वर्ग-संघर्ष को ही उकेरती है। भले ही शोषक वर्गों ने अपने द्वारा संचालित भाषायी (हिन्दी राज) आन्दोलन को धार्मिक पहचान दे दी थी। सिख और हिन्दू जाट किसानों में भाषा की दीवार खड़ी करके पंजाब के अभिजात वर्ग के दोनों ही कृषक-समूहों को भाषा और धर्म के नाम पर लड़ाकर सदियों से अपना हित-साधन कर रहे थे। लेकिन संयुक्त पंजाब के उदग्र कृषक नायक चौधरी छोटूराम द्वारा स्वतन्त्रता पूर्व काल में ही कृषक-चेतना की जो चिंगारी सुलगाई थी उसका पुण्य प्रभाव स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी बना हुआ था। अतएव दोनों ही कृषक समुदायों ने बजाय परस्पर में संघर्ष करने के समझौता कर लिया था और पंजाब का भाषायी आधार पर विभाजन होने पर दोनों ही भूभागों में किसान-शक्ति का सत्तारोहण करा दिया था।

जैसाकि हमने पहले भी संकेत किया है कि धर्मचन्द्र विद्यालंकार की भारतीय अतीत में गहरी अभिरुचि है। 'वचन-व्रत' जैसी ऐतिहासिक कहानी मध्यकाल के सामन्ती वातावरण पर आधारित है। भरतपुर के युवराज सूरजमल, जयपुराधीश जयसिंह को उनके द्वारा आयोजित राजसूय-यज्ञ में जो वचन देते हैं, उसका निर्वाह वे उनके देहान्त के पश्चात् होने वाले उत्तराधिकार के लिए हुए संघर्ष में पालन करते हैं। जयपुर नरेश जयसिंह के दो पुत्र ईश्वरी सिंह और माधवसिंह थे। आर्य-मर्यादा के अनुसार वहां के

राजसिंहासन पर ज्येष्ठ भ्राता ईश्वरीसिंह का ही अधिकार बनता था वैध रूप से लेकिन मेवाड़ के राणाओं का दौहित्र होने के कारण माधोसिंह अपना प्रबल दावा दिखा रहा था। यही नहीं, उसके साथ अन्य सप्त महारथियों के रूप में चार राजपूत एवं तीन मराठा शासक और भी थे। ऐसी अवस्था में ईश्वरी सिंह नितान्त एकाकी और असहाय थे। ऐसी विषम परिस्थिति में भरतपुर के युवराज सूरजमल ही उनके सबल सहायक बनकर आते हैं और सप्त महान महारथियों को रणक्षेत्र में धूल-चटाकर ईश्वरीसिंह का राज्यारोहण कराकर उसके पिता को दिए गए वचन-व्रत का पालन करते हैं। 'व्रत-पालन' या 'वचन-पालन' सामन्ती युग की एक अनन्य विशेषता थी।

आलोच्य कृति की 'पुनर्मिलन' जैसी कहानी भारत-विभाजन की विभीषिका की ओर इंगित करती है। इस कहानी में केसरकौर अपने परिवार से बिछुड़कर पाकिस्तान चली जाती है। वह वहीं पर शादी-ब्याह करके अपना घर-परिवार भी बसा लेती है। इसके लिए चाहे उसे अपने धर्म और विश्वास को भी तिलांजलि देनी पड़ती है। इधर भारतीय पंजाब में उसके सहोदर कश्मीरसिंह का भरा-पूरा परिवार है। एक बार वह क्रिकेट का मैच देखने के लिए जब लाहौर जाता है, तभी दोनों भाई-बहनों का छह दशकों के बाद मधुर मिलन होता है। उनके इस स्नेह-मिलन में उनका धर्म या मजहब आड़े नहीं आते हैं, बल्कि रक्त-सम्बन्ध उन पर कहीं भारी पड़ता है।

'मोहित का प्यार' और 'मां का प्यार' भी इसी श्रृंखला की अगली कड़ियां हैं। मोहित का प्यार यदि बचपन का पवित्र प्रेम है एक विजातीय युवक और युवती के बीच में, इसीलिए वह अंकुर उगने से पूर्व ही रौंद दिया जाता है। भारतीय रुढ़िग्रस्त समाज में आज तक भी व्यक्तिगत स्नेहिल संबंधों पर जाति-पांतिगत सामाजिक बन्धन और दबाव कितने प्रबल हैं, यही यहां पर देखा जा सकता है। प्रेम-विवाहों को लेकर तभी हमें आए दिन ऑनर-किलिंग की घटनाएं सुनने या पढ़ने को मिलती हैं। मोहित का प्यार भी उसी ओर संकेत करता है।

इसके विपरीत 'मां का प्यार' कहानी थोड़ी-सी लीक से हटकर है क्योंकि इसमें धर्मचन्द्र विद्यालंकार ने एक विधवा मां द्वारा अपने इकलौते और उन्मादी अथवा मनोरोगी पुत्र को संवारने और सहेजेने की सत्यकथा ही अंकित है। किस प्रकार से आज भी ग्रामीण कृषक परिवारों

में जनबल कई बार धनबल पर भी हावी रहता है, यह दिखाया गया है। ओमपाल सिंह नामक युवक की अपने ही भाईयों द्वारा उपेक्षा और अनदेखी का वर्णन मर्यान्तक है। तथापि उसकी विधवा मां ही पिता और माता बनकर उसके लिए सबल संबल सिद्ध होती है। मां की निर्मल ममता और उसका निश्चल नेह-छोह यहां पर दर्शनीय है।

‘वृन्दावन-विहार’ भी आलोच्य कथाकृति की एक ऐसी ही प्रेम-परक कहानी है जिसमें एक विधुर व्यक्ति पुनर्विवाह रचाना चाहता है लेकिन वह अपनी दूसरी पत्नी से होने वाली संतान को जन्म नहीं देना चाहता है क्योंकि उसके पास पहले से ही कई पुत्र-पुत्रियां हैं। एक परित्यक्ता निस्संतान स्त्री उसकी जीवन-संगिनी बनने के लिए उद्यत होती है लेकिन वह स्वयं के लिए संतान-प्राप्ति की शर्त रखती है। उनके बीच में प्रेम पनपने लगता है, वह परवान भी चढ़ता है और वे बिना किसी प्रकार की औपचारिकताओं के पति-पत्नी भी बन जाते हैं। अतएव प्रेम-सम्बन्धों में प्रगाढ़ता के चलते विवाह जैसा बाह्य-आडम्बरों को भी कथाकार परिहार्य ही मानता है।

‘पेट की जात’ आलोच्य कथा-कृति की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहानी है। जिसमें लेखक ने एक-विवाह सम्बन्धों में बजाय जाति-पातिगत बन्धन के वर की अर्जन क्षमता को ही अधिमान दिया है। पं. दयाशंकर पुरोहित-वर्ग के व्यक्ति हैं, अतएव वे अपनी पुत्री सुकन्या को भी पुरोहित परिवार में देना चाहते हैं। लेकिन वे अनचाहे भी उस लोक लीक को तोड़कर अपनी पुत्री का विवाह एक स्वजातीय कृषक-पुत्र सुखदेव के साथ कर देते हैं जोकि शास्त्रों के अनुसार शूद्र ही मान्य हैं। सुकन्या को भी वह विवाह-सम्बन्ध सहजतया स्वीकार्य नहीं होता है। लेकिन वह पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके इस विवाह-सम्बन्ध में बंध ही जाती है।

देव-योग से एक बार भयंकर अकाल उस क्षेत्र (देश) में पड़ जाता है। अतएव सुखदेव कृषिकार्य छोड़कर मोची का कार्य करने लगता है लेकिन अपने इस व्यवस्था-परिवर्तन की सूचना वह अपनी जीवन-संगिनी को भी नहीं देता है। उधर पं. दयाशंकर भी व्यवसाय-परिवर्तन करके पुरोहित से जादूगर बन जाते हैं। संयोग से वे अपनी पुत्री की ससुराल में ही अपने ऐन्द्रजालिक करतब दिखाने लगते हैं। कार्यक्रम के अन्त में पुत्री अपने पिता को पहचान लेती है और उनसे अपने घर चलने का अनुरोध करती है। जैसे ही पिता-पुत्री

घर को चलते हैं तो मार्ग मध्य में सुखदेव उनको चर्मकार के रूप में दीख जाता है। इस दारुण दृश्य को देखकर सुकन्या लजाकर सहम जाती है। तब पं. दयाशंकर अपने दामाद का पक्ष-पोषण करके अपनी पुत्री को लोक-लाज से उबारते हैं। अतएव भारतवर्ष में जो जाति को व्यवसायों के साथ अनिवार्य रूप से जो जोड़ दिया गया है, यह लेखक उसके पक्ष में नहीं है। व्यवसाय-परिवर्तन के पश्चात् भी एक आदमी की जन्मजात पहचान जीवन-पर्यन्त क्यों बनी रहती है, यह उसे गवारा नहीं है। इस प्रकार से एक परिवर्तनकामी प्रगतिशील जीवन दृष्टि धर्मचन्द्र विद्यालंकार की सभी कहानियों में दृष्टिगत होती है। अतएव ग्रामगंध से सराबोर यह कथाकृति अवश्यमेव पठनीय है।

- कहानी संग्रह :** चेतना की चिंगारी
कहानीकार : धर्मचन्द्र विद्यालंकार
प्रकाशक : चिन्मय ज्ञानपीठ, 74, मेधा अपार्टमेंट, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091
मूल्य-राशि : 275/- रुपये मात्र।



जीवन की लय की पकड़ने की कशमकश

एक चीज जो मुझे लेखन के लिए प्राथमिक लगती है, वह है नैतिक संवेदना। रचना की भीतरी ईमानदारी की तहों में दबी हुई एक यही चीज होती है, जो पाठकीय विश्वास को अर्जित ही नहीं करती बल्कि उसे सुरक्षित भी रखती है। यह डेनिश लेखिका ईसाक डिनेसन का कहना है। रवीन्द्र कात्यायन में नैतिक संवेदना है, वे मानवीय हैं, तंज करने वाली कोई भी स्थिति या पात्र उनसे छूट नहीं पाते। अच्छी कहानी वह कहानी है जिसे पढ़ते हुए पाठक सब कुछ भूलकर कहानी के प्रवाह के साथ, अपने अंदर के अनुभव संसार में भ्रमण करने लग जाए। कहानी हमेशा कही नहीं जाती, कहानी कभी-कभी छलक भी पड़ती है और पहाड़ी नदी की तरह सरपट बहने लगती है। पानी इतना पारदर्शी कि तलछट की सारी चीजें बिल्कुल साफ दिखाई पड़ती हैं। अपने आप नए अर्थ और नई व्याख्याएं उभरने लगती हैं। ऐसे में लेखक भी साथ में बह रहा होता है और रचना बहुआयामी हो जाती है। सब-टेक्स्ट और उसका अर्थ उभर आता है। सच तो यह है कि कुछ ऐसा चमत्कारिक होता है, जिसे लेखक भी नहीं जान पाता है।

‘हैल्यूसिनेशन’ कहानी से हमारे सामने मानव स्वभाव की अनेक सच्चाईयां उजागर हो उठती हैं। यह पारंपरिक और आधुनिक जीवन मूल्यों तथा जीवन आदर्शों के छद्म को उजागर करती है। कहानी पढ़ कर हमें इस बात पर पूरा यकीन हो जाता है कि खून के रिश्ते भी कितने बेमानी होते हैं।

यह एक मनुष्य की आस्था, अमानवीयता, मानवीयता, देशभक्ति, राष्ट्रियता, भाईचारा, दुश्मनी, कमजोरी और जिजीविषा को जड़ से झकझोर देती है। इस कहानी से कहानीकार मेरे पाठकीय विश्वास को पूरी तरह से जीत लेता है। “प्यार में लड़की” रवींद्र कात्यायन का पहला कहानी संग्रह है। इसमें कुल बारह कहानियां हैं। इसकी पहली कहानी “कहानी यहीं खत्म नहीं होती” है। इसके मुख्य पात्र अनभिज्ञ और निर्द्वंद्व हैं तथा सहायक पात्र करुणार्द्र।

इस कहानी की पृष्ठभूमि में भूतल मानसिक पुरुष वार्ड यानी पागलखाना है। कहानीकार की यह बात हमारी संवेदना को झकझोर देती है कि अधिकतर पागलों के मानसिक असंतुलन के पीछे हमारे आप जैसे समझदार व्यक्तियों के करम रहते हैं और हम आप ही इन्हें पागल कहते हैं। पागलों के जीवन के इस अभिशप्त यथार्थ का निर्वाह समग्रतः संभव नहीं लेकिन कहानीकार ने पूरी ईमानदारी और सूक्ष्मता से इसका निर्वाह किया है। यह कहानी पांच दिन और पांच रातों में फैली हुई है।

बेड नंबर इक्कीस के पागल ओम की चार साल की बेटी इधर-उधर खेल रही है। उसकी पत्नी और बहन मां से बातें कर रही हैं और रो भी रही हैं। ऐसे लोग जीवन से कितने ओत-प्रोत हैं, जिन्हें रोते हुए भी जिंदगी बातें करने पर मजबूर करती है।

पी. डब्ल्यू. डी. के हेल्पर भगत जी को माता ने पचास भूत दे रखे हैं। वह महाकाल है लेकिन पचासों भूत बांसुरीवादक द्वारा उसकी पत्नी के चेहरे पर आने वाली रंगत को पहचान नहीं पाते हैं।

एक बाप अपने पागल बेटे की खूबियां गिना रहा है लेकिन अनजाने में उसकी विवशता प्रकट हो रही है। पागल बेटा कहता है अब्बू, अब मैं तुम्हें पूरी जिंदगी झिलाऊंगा।

एक पागल है जो खुद को भगवान मानता है और अजीबो-गरीब बातें करता है। दूसरे पागल आशीष का कहना है कि साबुन लगाने से शरीर के रोएं पहले लाल, फिर भूरे और अंत में सफेद हो जाएंगे। यहां जादुई यथार्थ बिल्कुल स्वाभाविक रूप में आया है। इस तरह के प्लॉट पर कहानी लिखना बहुत कठिन है। इसमें कहानीकार ने चरित्रों के भाव को पकड़कर कहानी को आगे बढ़ाया है।

यह विविधरंगी भावों की बहुआयामी कहानी है इसे लिखने के लिए गहन ऑब्जर्वेशन जरूरी है। लेखक के परिश्रम ने कहानी में अपना रंग भर दिया है।

दूसरी कहानी “अंतर्द्वंद्व” में फौजियों की दारुण कथा है। यह कहानी तिल-तिल कर मरते हुए एक फौजी बचन सिंह द्वारा अपनी मां को लिखे गए पत्र के आस-पास बुनी गई है। यह राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, दुनिया की महाशक्तियों का खेल और सैन्य व्यवस्था को बेनकाब करती है, अगर आज इस प्लॉट पर फिल्म बना दी जाए तो इसे पास कराना नामुमकिन हो जाएगा। यह कहानी युद्ध और शांति जैसे महत्वपूर्ण विषय पर भी सवाल खड़े करती है। यह नैतिक संकट की कहानी है जिसे कहने वाला व्यक्ति समाज की सबसे महत्वपूर्ण समस्या को सामने लाता है।

“लालचंद उर्फ आम आदमी की स्लो डेथ” का प्लॉट बिल्कुल नया है, इस तरह के प्लॉट पर शायद ही कोई कहानी लिखी गई हो। इसमें है लाल चौक की खबरी दीवार जिस पर पहली बार लिखा जाता है—भारत आजाद हो गया है—तारीख 15 अगस्त सन् 1947 और यहीं से कहानी शुरू होती है। यह दीवार कहानीकार के लिए एक बड़े कैनवस में बदल जाती है। यह इंदिरा गांधी की हत्या, सिख दंगे, राजीव गांधी की हत्या, बाबरी मस्जिद, गोधरा की घटना और उसके बाद गुजरात में फैले दंगे को समेट लेती है। कहानी वर्तमान और भूतकाल में आती-जाती रहती है।

“गेन्दुली” एक वृद्धा की कहानी है जो अपने आप को सर्वश्रेष्ठ मानती हैं। कहानीकार के शब्दों में माताजी ऐसी पैदा नहीं हुईं, निश्चित रूप से वह ऐसी बनाई गई हैं। महान है वह परंपरा और व्यवस्था जो एक स्त्री को माताजी बना देती है।

“कॉन्फ्रेंस” और “इंस्पेक्शन” फौजी जीवन की मजेदार कहानियां हैं। वहीं “कालिदास की शकुंतला की स्कैनिंग” हिंदी के एक रसिया प्रोफेसर की कहानी है, जो अपनी छात्र को वाग्जाल में फंसा लेते हैं और छककर उसका भोग करते हैं।

“प्रेम पत्र” एक प्रयोगधर्मी कहानी है। इसमें एकांकी नाटक के तत्व हैं। यह इस संग्रह की सबसे छोटी कहानी है। इस कहानी का अंत आसान नहीं था। कहानी का अंत लिखने में कात्यायन प्रवीण हैं। किसी भी कहानीकार के

लिए यह पहली और आखिरी कसौटी हो सकती है कि वह कहानी का अंत कैसे करता है।

आज जनता को भ्रमित करने के लिए तमाम औजार और सोशल मीडिया का प्रायोजित जाल राज्य व्यवस्था ने विकसित कर लिए हैं। ऐसे में कहानीकार को सचेत रहने की जरूरत है। “ब्रेकिंग न्यूज” इस व्यवस्था को तार-तार करती है। इस कहानी का ताना-बाना साहित्यिक कम और फिल्म-स्क्रिप्ट के ज्यादा करीब है।

“अथ चित् कपटी को अंग” यह कहानी एक अद्भुत चरित्र पामर जी के चारों ओर बुनी गई है। यह सही है कि ऐसे अनोखे चरित्र आपको हमेशा याद रह जाते हैं। इसकी ज्यादा संभावना है कि पामर जी ने जबरन लेखक से कहानी लिखवा ली हो।

“प्यार में लड़की” इस संग्रह की अंतिम कहानी है और यही इस संग्रह का नाम भी है। इस कहानी का प्लॉट बड़ा है। यह ऐसे समाज की कहानी है, जिसे आमतौर पर हिंदी की कहानियों का विषय नहीं बनाया जाता है। खासी परम्परा में किसी भी लड़की को अपना मरद चुनने व बदलने का पूरा हक है। लच्छो ने राधा को चुना है। वह राधा के साथ कानपुर जाती है और सोलह-सत्रह दिनों की हनीमून ट्रिप से दोनों पीक पर वापस लौटते हैं। राधा लच्छो को छोड़कर हमेशा के लिए चला जाता है और पीक पर रह जाती है “प्यार में लड़की” लच्छो।

कहानी संग्रह	: प्यार में लड़की
कहानीकार	: रवीन्द्र कात्यायन
प्रकाशक	: स्टोरी मिरर, इनफोटेक प्रा. लि. गुडगांव, हरियाणा
मूल्य	: 180 रुपये

○

संपर्क : D&4/Bhagyodaya co-hsg-society/Plot no-85/ Mhada colony Malwani gate no-8/ Malad&west /Mumbai-400095
Contact – 9820070721 /
binod-hindustani@gmail-com

जीवन की कठोरता से साक्षात्कार

कहानियों के साथ-साथ रिपोर्ताज लिखने वाले हिन्दी-लेखक सत्यनारायण के बारे में यह कहना शायद अत्युक्ति नहीं होगी कि वह अपनी कहानियों से ज्यादा रिपोर्ताजों के कारण जाने जाते हैं। समीक्ष्य पुस्तक उनके रिपोर्ताजों की पांचवीं पुस्तक है। हालांकि 'कथादेश' में स्तंभ के रूप में प्रकाशित होकर ये रिपोर्ताज अनेक पाठकों के सामने से गुजर चुके हैं लेकिन पुस्तक के रूप में एक साथ पढ़कर पाठक समग्रता में उन अनुभवों से रू-ब-रू हो सकते हैं जो सत्यनारायण ने जगह-जगह से प्राप्त किए हैं।

इस पुस्तक को पढ़कर पाठक इस बात से सहमत हुए बिना नहीं रह सकते कि सत्यनारायण ने जीवन की कठोरता से जूझते लोगों को बहुत नजदीक से देखा है। यह उनकी घुमक्कड़ वृत्ति और कहीं भी, किसी से मिलकर बतिया आने का स्वभाव ही है कि उनके अनुभव-संसार में इतने अलग-अलग तरह के लोग आ शामिल हुए हैं। हरषा दादा, स्वामी जी, ग्यारसी, ताई, कफन बेचने वाला डोकरा, मोहन्या की बीबी, रामली, सिराज, हिम्मत सिंह, कवि सौदाई, खेजड़े वाली, प्यारे लाल जैसे अनेक लोग उनसे सीधे-सीधे टकराए हैं और उन्होंने उन लोगों के जीवन के मार्मिक प्रसंगों को इन रिपोर्ताजों में उतार दिया है। सत्यनारायण के रिपोर्ताजों की पुस्तक 'यह एक दुनिया' की तरह ही इस पुस्तक के बारे में भी यह कहा जा सकता है कि यह कैसी दुनिया है जिसमें असंख्य लोग अपने-अपने दुखों की सलीब उठाए जीने को अभिशप्त हैं? कोई उन्हें देखने वाला नहीं है, कोई उनके लिए कुछ करने वाला नहीं है। इस दुनिया को आखिर कोई फर्क क्यों नहीं पड़ता कि उसकी दुनिया में कोई सड़क के बीचोंबीच सोने को अभिशप्त है तो कोई विक्षिप्त हो गलियों में भटक रहा है? कोई अपनी कला को मामूली दामों में बेचने को लाचार है तो कोई अपनी कविता को? कोई खुद को ही बेचकर अपना पेट पालने की मजबूरी में जी रहा है तो कोई सौ रुपये जमाकर अपनी शादी रचाने के ख्वाब में जी रहा है? कोई बैंड-दल में शामिल होकर अपनी सांसों का ही बाजा बजा रहा है तो कोई अपनी बेटियों से ही धंधा करवाकर अपना पेट पाल रहा है? और तमाम अभावों में जीने वाले लोग किस तरह 'बाबो भली करेला का विश्वास पाले हुए हैं यह भी इस किताब को पढ़कर जाना जा सकता है।

निश्चय ही सत्यनारायण अपनी संवेदनशील भाषा में समाज की कई परतों को उघाड़ने का काम करते हैं। चूंकि सत्यनारायण के ज्यादातर अनुभव राजस्थानी समाज से जुड़े हुए हैं, उनको अभिव्यक्त करने वाली भाषा भी राजस्थानी युक्त है। राजस्थान से बाहर के पाठकों के लिए बहुत से शब्दों को समझना मुश्किल लग सकता है। आंचलिक शब्दों का प्रयोग एक सीमा तक ही होना चाहिए, इस किताब को पढ़कर यह बात जरूर कही जा सकती है।

**पुस्तक : यायावर की डायरी,
लेखक : सत्यनारायण,
प्रकाशक : मेधा बुक्स, दिल्ली,
मूल्य : 250 रुपये**

खोए अर्थ की पहचान

1947 में हुए दंगों ने जहां हिन्दू-मुस्लिम की साझा संस्कृति में दरार पैदा करने का काम किया था, 1984 के दंगों ने वही काम हिन्दू-सिख के बीच किया। पंजाब में जहां हिन्दू और सिख एक साथ मिलकर रहा करते थे, 1984 में एक दूसरे को शक की निगाह से देखने लगे थे। दोनों संप्रदायों के बीच प्रेम, सद्भाव और भाईचारा जैसे शब्द अपने अर्थ खो चुके थे। उन्हीं खोए हुए अर्थों की पहचान करने के लिहाज से निरंजन तस्नीम ने यह उपन्यास लिखा है। पंजाबी में लिखा और हिन्दी में अनूदित यह उपन्यास साहित्य अकादेमी के द्वारा पुरस्कृत तो किया ही गया है, प्रकाशित भी किया गया है। इस उपन्यास में एक ओर 1947 के दंगों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है, तो दूसरी ओर 1984 के दंगों को। 84 में सिख समुदाय के लोग किस तरह अकारण ही शक के घेरे में आ गए थे और उन्हें किस तरह अपमान के घूंट पीने पड़े थे यह उपन्यास इस बात की सांकेतिक अभिव्यक्ति कर देता है। इस उपन्यास में घटनाएं बहुत अधिक नहीं हैं लेकिन इक्का-दुक्का घटनाओं के आधार पर ही उस दमघोटू वातावरण को उपस्थित करने का काम कर दिया गया है।

इस उपन्यास में सांप्रदायिक तनाव तो कई जगह देखे ही जा सकते हैं लेकिन आश्चर्यकारी बात यह है कि अलग-अलग संप्रदायों के दो मित्रों के बीच इस तनाव की छाया तक दिखाई नहीं देती है। यानी स्वार्थी और अपराधी तत्वों की भेड़चाल में पूरी कौम बहती हुई हरगिज दिखाई नहीं देती है। उपन्यास के अंत में युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में दिखाए गए पात्र सुभाष के माध्यम से तो लेखक ने यह भी दिखा दिया है कि खोए हुए मूल्यों को संजोए रखने वाले लोग आगे भी दिखाई देते रहेंगे।

यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में तो लिखा ही गया है, बहुत हद तक आत्मकथात्मक भी है। उपन्यास के कथावाचक बलवीर और लेखक निरंजन तस्नीम में बहुत कुछ समानताएं भी दिखाई पड़ती हैं।

इस तरह यह उपन्यास लेखक की आत्मकथा का हिस्सा भी मालूम पड़ता है। हां, इसे पढ़कर यह जरूर लगता रहता है कि काश! इसमें अनावश्यक ब्योरे थोड़े कम होते और विषय की गहराई थोड़ी अधिक होती!

पुस्तक : खोए हुए अर्थ, लेखक : निरंजन तस्नीम, अनु. कीर्ति केसर, प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, मूल्य : 125 रुपए।

जिस्म-जिस्म के लोग

राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित शाजी जमां का यह 'उपन्यास' कई मायनों में 'प्रयोगवादी' है। अपने अति लघु आकार के कारण, कथानक और पात्रों के अकाल के कारण और सबसे अधिक-लगभग हर दूसरी पंक्ति में 'जिस्म' शब्द के प्रयोग के कारण! इंसान को सिर्फ जिस्म मानने और समय को भी जिस्म से नापने के कारण भी! ('प्रकाश वर्ष' की तरह 'जिस्म-वर्ष' के ईजाद के लिए लेखक को नोबल पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए!) पूरे 'उपन्यास' को जिस्म के आसपास ही घूमते देख पाठक अगर अपना जिस्म छोड़कर कहीं भाग जाएं तो कोई गलत नहीं होगा! कथानायिका तो खैर नायक के इस 'जिस्मवाद' से आतंकित होकर भाग ही गई थी! उपन्यास के अंत में फिर उसके सामने पता नहीं किस वजह से आ गई? इसलिए कि 'जिस्मों-जिस्मों' होता आया, अब ये जिस्म समझ में आया?' जिस्म-जिस्म भटकने के बाद आखिर कोई लौटता भी है तो जिस्म पर ही? या जिस्म के अंदर भी कुछ होता है जो जिस्म से भी अधिक महत्व रखता है? नहीं, इस उपन्यास में तो कतई नहीं! प्रेमी-प्रेमिका भी यहां जिस्म से ऊपर नहीं उठ सके हैं। शायद इसीलिए जिस्म के आकर्षण के खत्म होने पर अलग हो गए। तरह-तरह के जिस्मों से भटककर अगर दोनों फिर से मिले भी तो क्या यह जरूरी है कि अब वे एक-दूसरे के जिस्म से नहीं ऊबेंगे? आखिर जिस्म उन्हें कब तक बांधे रखेगा?

'हंस' में कहानी के रूप में छपी इस 'रचना' को

उपन्यास के रूप में छपा देखकर प्रकाशन-जगत के बारे में भी बहुत कुछ पता चल जाता है!

पुस्तक : जिस्म-जिस्म के लोग, लेखक : शाजी जमां, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : 200 रुपए

समाज की वास्तविकता

ज्योतिपर्व प्रकाशन की 'मेरी प्रिय कथाएं' श्रृंखला के तहत प्रकाशित चर्चित कथाकार महेश कटारे की ये कहानियां पाठकों की प्रिय कथाएं बनने की योग्यता रखती हैं। यों इस संग्रह की 'समर शेष है', 'इतिकथा-अथकथा', 'मुर्दा स्थगित', 'छछिया भर छाछ', जैसी कहानियां कहानी के पाठकों के बीच अपनी पहचान रखती ही हैं, 'पराजित गंधर्व, लक्ष्मण रेखा, 'पहियों पर चढ़े सुख' और 'फतह' जैसी कहानियां भी पाठकों के बीच जगह बनाने की योग्यता रखती हैं। आम आदमी का जीवन और पग-पग पर उनका शोषण इन कहानियों का मुख्य कथ्य है, इसके साथ ही व्यवस्था, सांप्रदायिकता, प्रेम, स्त्रियों का जीवन वगैरह भी इन कहानियों में जगह-जगह अभिव्यक्त हुए हैं। एक तरफ समाज की वास्तविकताएं, दूसरी तरफ प्रेम और लगाव की अंतर्धाराएं और तीसरी तरफ बुंदेलखंड की बोली-बानी इन कहानियों को विशिष्ट तो बनाती ही हैं, आंचलिक कहानियों के निकट भी ले जाती हैं। 'पराजित गंधर्व' और 'पहियों पर चढ़े सुख' जैसी कहानियों को पढ़कर तो यह भी लगता रहता है कि हम रेणु जी की 'रसप्रिया' और 'तीसरी कसम' कहानियों को थोड़े बदले रूप में पढ़ रहे हों! अस्तु!

संग्रह में संकलित 'समर शेष है' एक नाबालिग बच्चे के शोषण पर आधारित है। बारात के साथ सिर पर ट्यूब लाइट लादे चलते बच्चे की स्थिति और अंत में उसका सांकेतिक प्रतिरोध इस कहानी में देखा जा सकता है। 'मुर्दा स्थगित' शहर के किसी विशिष्ट व्यक्ति के बेटे के विवाह के दरम्यान पूरे शहर को स्थगित कर देने की कहानी है। बारात के रास्ते किसी मुर्दे के आ जाने पर कैसे अधिकारी और पुलिस उसे

छुपाने में लग जाते हैं और उसका जलाया जाना स्थगित हो जाता है, यह इस कहानी में देखा जा सकता है। यह कहानी विशिष्ट व्यक्ति और आम आदमी के फर्क को बहुत बारीकी से सामने लाती है। 'भौजी' और 'छछिया भर छाछ' स्त्रियों की जिजीविषा को जोरदार ढंग से सामने लाने वाली कहानियां हैं। 'पराजित गंधर्व' नौटंकी में काम करने वाले किसी पुरुष की उपेक्षा भरी जिंदगी को दिखलाती है, तो 'पार' चंबल की महिला डकैतों की काम-कुंठा को। 'इकाई-दहाई' कहानी किसी व्यक्ति के अरबपति बनने के ख्वाब को दिखलाती है तो 'पहियों पर चढ़े सुख' और 'लक्ष्मण रेखा' स्त्री-पुरुष के रागात्मक संबंध को। 'फतह' कहानी में सांप्रदायिकता के द्वारा समाज के विभाजन को दिखलाया गया है, तो 'गोद में गांव' मल्टी नेशनल कंपनियों के द्वारा गांवों की जमीनें खरीदने और वहां के संसाधनों के दोहन को लेकर लिखी गई है। किस्सागोई शैली में लिखी गई कहानी 'इतिकथा-अथकथा' बाजारवाद की आहटों से आगाह करती कहानी है। मूलतः ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखी गई ये कहानियां ग्रामीण और किसानों की संस्कृति की बहुत सी बातों को बतलाने का काम करती हैं। गांव की बोली-चाली, मुहावरे, कहावतें और गालियां भी यहां बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त हुई हैं।

पुस्तक : मेरी प्रिय कथाएं, लेखक : महेश कटारे, प्रकाशक : ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, मूल्य-299 रुपये।

○

संपर्क : एसएफ-2, सिद्ध विनायक अपार्टमेंट,
अभयखंड-3, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद-201014

(उत्तर प्रदेश)

दमित अस्मिताओं का विकास

2, 3 मार्च 2017 को दोईमुख रोडो हिल्स स्थित रा. गां. विश्वविद्यालय ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का विषय 'साहित्यिक विमर्शों का दौर : दमित अस्मिताओं का उत्थान' रखा गया था। रा. गां. वि. के सभागार में इसका उद्घाटन प्रो. तामो मिबांग कुलपति, रा, गां. वि., प्रो. चौथीराम यादव, बी.एच.यू., सेवानिवृत्त और प्रो. हरीश कुमार शर्मा, भाषा संकाय के अध्यक्ष व संगोष्ठी संयोजक अभिषेक कुमार यादव द्वारा किया गया। अपने बीज वक्तव्य में चौथीराम यादव ने साहित्यिक विमर्शों के दौर में आदिवासी साहित्य, दलित साहित्य, स्त्री साहित्य को एक साथ आकर बहुजन हिताय की ओर अग्रसर होने का आग्रह किया। वहीं कुलपति तामो मिबांग ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में इस आयोजन की सफलता की कामना करते हुए पूर्वोत्तर राज्यों में आदिवासी समुदाय के बीच प्रचारित हो रही हिन्दी के सार्थक प्रयासों को साफगोई के साथ चिन्हित किया। अभिषेक कुमार यादव ने संगोष्ठी की प्रस्तावना में स्पष्ट किया कि क्यों यह आयोजन आज के समय की मांग है इसे देश के कोने-कोने से आए विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्वानों के द्वारा बहस, पक्ष-प्रतिपक्ष में सुनने की आवश्यकता है।

प्रथम दिन में अनिल चमड़िया ने हिन्दी पत्रकारिता और हाशिए के समाज के सवालियों पर अपने सर्वेक्षण से प्राप्त डाटा के आधार पर बताया कि अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू आदि मीडिया में एकतरफा सवर्णों का कब्जा है, किसी भी भाषा की मीडिया में संवाददाता, एडिटर आदि विभिन्न पदों से एससी, एसटी, ओबीसी, अल्पसंख्यक का कोई प्रतिनिधित्व देखने को नहीं मिलता और इसे हम देश के लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ स्वीकारते हैं। प्रेम कुमार मणि ने भी मिथक, साहित्य और दमित समुदायों का वर्तमान विषय पर अपने राजनीतिक विचारों से श्रोताओं का ज्ञानवर्द्धन किया। वहीं प्रो. वीर भारत तलवार ने विमर्शों के आपसी संबंध, अलगाव और चुनौतियों पर अपनी बात रखते हुए इनके मध्य के सांस्कृतिक भिन्नताओं का रेखांकन कर, कुछ सामान्य हित पर एकजुट होने का आह्वान किया। उन्होंने पूर्वोत्तर भारत के आदिवासियों और मध्य भारत के आदिवासियों के बीच के अंतर व उसके कारण 5th Schedule एरिया और 6th Schedule एरिया को बताया। उन्होंने दलितों को अपनी पहचान से मुक्त होने की कोशिश पर प्रकाश डाला जबकि आदिवासी विमर्श के हवाले से बताया कि वे अपनी पहचान को बचाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

तेजपुर विश्वविद्यालय से आए डॉ. अनुशब्द ने आदिवासी जीवन और हिन्दी सिनेमा पर विचार रखें, वहीं दिल्ली विश्वविद्यालय से डॉ. सपना चमड़िया ने स्त्री विमर्श की रचनात्मकता और वैचारिकी के अन्तःसंबंध पर अपनी बात प्रस्तुत की। डॉ. कमलेश वर्मा ने हिन्दी साहित्य और पिछड़ी जातियों पर अपना वक्तव्य दिया। वरिष्ठ आलोचक वीरेन्द्र यादव ने हाशिए का समाज और मुख्यधारा का साहित्य पर अपनी बात रखी। लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो. कालीचरण स्नेही ने बुद्ध, आंबेडकर और दलित साहित्य की वैचारिकी पर अपने पक्ष रखे। संगोष्ठी का दूसरा दिन डॉ. बृजेश यादव द्वारा वंचित का पक्ष, विमर्श का प्रश्न लोकगीत के संदर्भ में प्रस्तुत किया। मिजोरम विश्वविद्यालय से अमिष वर्मा ने हिन्दी साहित्य और जाति का प्रश्न पर कई गम्भीर सवाल खड़े किए। आम्बेडकर विश्वविद्यालय से प्रो. गोपाल प्रधान ने अकादमिक संस्थान और साहित्य में अस्मिता विमर्श पर अपनी बात रखी। उसके बाद श्रोताओं द्वारा वक्ताओं के लिए प्रश्न व टिप्पणियां भी रखी गईं जो इस सेमीनार में खुलकर बात करने की संभावनाओं के साथ अभिव्यक्त हुआ। नीतिशा खलखो ने अपने आलेख में बताया कि किस तरह झारखंड का उरांव समाज अपनी स्त्रियों को कोमलांगी, नाजुक आदि उपमानों के बनिस्पत अपने लोकगीतों में उसे जंगली सूअर की तरह तेज, जीवट बताया है, जो मुख्यधारा साहित्य के लिए अनुठा व बिल्कुल अलग बिम्ब रूप में सामने दिखाई पड़ता है।। इसके अलावा, तादाभ खटी, आशा सिंह, प्रवीण कुमार, प्रचंद नारायण पीराजी, सुलीन चैतंग, अपराजिता राय, विवेक सिंह, नीलम राठी, डिंपी दत्ता, कंचन विश्वकर्मा, रीपी बरठाकुर, जमुना तायेड, आइनाम ईरिड और मो. शफी खान ने अपने विचार प्रस्तुत किए।

○

संपर्क : संयुक्त महासचिव,
ऑल इंडिया ट्राइबल लिटरेरी फोरम, नई दिल्ली, मो.-9205645207

7. दलित हस्तक्षेप/रमणिका गुप्ता/सं. ओमप्रकाश वाल्मीकि	आलेख	2004	200/-
8. दलित सपनों का भारत और यथार्थ/रमणिका गुप्ता (रफा)	आलेख	2004	10/-
9. मायावती और दलित साहित्य, कंवल भारती (रफा)	आलेख	2004	150/-
10. मशालची/गुरुचरण सिंह राओ, अनु-द्वारका भारती/सं. पुनरीक्षण-रमणिका गुप्ता	उपन्यास	2009	300/-
11. दलित दर्शन/सं. रमणिका गुप्ता, ज्ञानसिंह बल, द्वारका भारती	आलेख	2009	350/-
12. मलमूत्र ढोता भारत: विचार की कसौटी पर संपा. रमणिका गुप्ता, सुशीला टाकभौरे	दलित आलेख	2009	150/-
13. दलित प्रश्न संवाद और यूटोपिया/सं. रमणिका गुप्ता	दलित आलेख	2010	250/-
14. भारतीय दलित साहित्य कथा-कोश (हिन्दी)/सं. रमणिका गुप्ता	दलित कहानियाँ	2010	495/-
15. दलित दृष्टि	आलेख	2011	250/-
16. मलमूत्र ढोता भारत : सृजन के आईने में/सं. रमणिका गुप्ता, सुशीला टाकभौरे	विविध	2011	795/-
17. दलित चेतना : साहित्य/सं. रमणिका गुप्ता	आलेख	2012	300/-
18. दलित चेतना : सोच/सं. रमणिका गुप्ता	आलेख	2012	350/-
19. दलित चेतना : कविता/सं. रमणिका गुप्ता	कविता	2012	300/-
20. दलित साहित्य का स्वरूप : विकास और प्रवृत्तियाँ/डा. गुणशेखर (रफा)	आलेख	2012	225/-
21. भारतीय दलित साहित्य कथा-कोश (गुजराती)/सं. रमणिका गुप्ता	दलित कहानियाँ	2012	295/-
22. भारतीय दलित साहित्य कथा-कोश (मराठी)/सं. रमणिका गुप्ता	दलित कहानियाँ	2012	295/-
23. दूसरी दुनिया का का यथार्थ/सं. रमणिका गुप्ता	दलित कहानियाँ	2012	400/-
24. भारतीय दलित साहित्य कथा-कोश (पंजाबी)/सं. रमणिका गुप्ता	कहानी	2013	595/-
25. घुटन : रमाशंकर आर्य	आत्मकथा	2014	200/-
26. जाति धर्म और राष्ट्र : कंवल भारती	आलेख	2005	50/-
स्त्री			
1. खूँटे/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता (स्त्री)	1980	100/-
2. प्रकृति युद्धरत है/रमणिका गुप्ता, द्वितीय संस्करण (फोटो स्टेट)	कविता संग्रह	1980/93	60/-
3. मैं आज़ाद हुई हूँ/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता (स्त्री)	1998	115/-
4. स्त्री विमर्श : कलम-कुदाल के बहाने/रमणिका गुप्ता	आलेख	2004	175/-
5. पातियाँ प्रेम की/रमणिका गुप्ता	प्रेम-कविता	2006	150/-
6. मेरे साक्षात्कार/रमणिका गुप्ता	साक्षात्कार	2007	175/-
7. स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण/सं. रमणिका गुप्ता, विमल थोरात, अनिता भारती, प्रोमिला	आलेख	2009	300/-
8. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास/सं. रमणिका गुप्ता	स्त्री-विमर्श	2012	300/-
9. आधुनिक महिला लेखन : कहानी/सं. रमणिका गुप्ता	कहानी	2012	300/-
10. आधुनिक महिला लेखन : कविता/रमणिका गुप्ता	कविता	2012	375/-
11. स्त्री-मुक्ति की प्रतिनिधि तेलुगु कहानियाँ/जे.एल.रेड्डी (रफा)	कहानी	2012	300/-
12. हाशिण उलांघती औरत (तीन खंड) (हिन्दी)/सं. रमणिका गुप्ता/अर्चना वर्मा	कहानी	2015	600/-
आत्मकथा			
1. आपहुदरी/रमणिका गुप्ता	आत्मकथा	2016	795/-
2. हादसे/रमणिका गुप्ता	आत्मकथा	2005	200/-
3. लहरों की लय/रमणिका गुप्ता	यात्रा-संस्मरण	2008	225/-
अन्य/विविध			
1. गीत-अगीत/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता	1969	120/-
2. अब और तब/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता	1978	120/-
3. कैसे करोगे बंटवारा इतिहास का/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता	1994	100/-
4. विज्ञापन बनता कवि/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता संग्रह	1996	150/-
5. तुम कौन/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	कविता संग्रह	1999	70/-
6. तिल-तिल नूतन/रमणिका गुप्ता	कविता संग्रह	1999	80/-
7. भीड़ सतर में चलने लगी है/रमणिका गुप्ता	कविता संग्रह	2002	80/-
8. सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे/रमणिका गुप्ता (फोटो स्टेट)	आलेख	2004	125/-
9. कविता का लोकतंत्र/सं. अभिषेक कश्यप	मूल्यांकन	2008	250/-
10. प्रतिनिधि कविताएं/सं. मदन कश्यप	कविता	2008	350/-
11. समय के साथ/रमणिका गुप्ता	आलेख	2010	225/-
12. समकालीन कहानियाँ/सं. रमणिका गुप्ता	दलित कहानियाँ	2012	350/-
13. अनुभूतियों की दस्तक/गिरिजा शंकर मोदी (रफा)	कविता	2012	200/-
14. दृश्य एक घर है/राजकुमार कुम्भज	कविता	2014	125/-

अप्रैल, 2017 के संपादकीय पर बहस -1

दलित साहित्य संसार का सम्यक आकलन

माननीय संपादक,

'दलित जमात बनें, जाति नहीं' युद्धरत आम आदमी के अप्रैल 2017 अंक के सम्पादकीय ने सोचने के लिए मजबूर किया है कि हिंदी-पट्टी में दलित वर्ग के बुद्धिजीवी (साहित्यकर्मियों को प्रायः बुद्धिजीवी समझा जाता है अथवा वे खुद को भी वैसा समझते हैं) आम्बेडकर को शर्मसार कर रहे हैं। यह जान कर दुख होता है कि जिस जाति के खात्मे की बात आम्बेडकर ने की थी (annihilation of caste), और जो सही सोच वाले हर भारतीय का प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए, उस जाति के दलदल से हमारे 'महान बुद्धिजीवी' निकलने की बात तो जाने दीजिए, उसी में और गहरे डूबते जा रहे हैं। आपने सही कहा है कि आजकल कुछ दलित लेखकों में सर्वर्ण हिन्दुओं से भी ज्यादा जातीय आधार पर विभाजन शुरू हो गया है।

आपने दलित लेखक संघ का जिक्र करते हुए कहा है कि 'संगठन में कुछ उद्देश्य होते हैं। वहां विचारधारा महत्वपूर्ण होती है व्यक्ति नहीं।' पर क्या इन संगठनों (संगठनों, इसलिए कि कई हो गए हैं) की कोई पुरखा विचारधारा कायम हो सकी है? आपने 'रमणिका फाउंडेशन' की विचारधारा का जिक्र किया है, दलित आंदोलन की भी बात की है। क्या दलित आन्दोलन, दलित 'लेखकों-मात्र' का ही आन्दोलन है? और, विचारधारा और संगठन के प्रति प्रतिबद्धता आपको वाम विचारधारा से मिली है। वह आपको दूसरी जगह देखने को नहीं मिलेगी। दलित लेखक आम्बेडकरवादी विचारधारा से सन्नद्ध, उसके ध्वजवाहक समझे जाते थे, लेकिन हुआ क्या है? वे सिर्फ 'मुख वीर' या 'कलम वीर' ही साबित हुए। उनके व्यवहार में यह विचारधारा कहीं नहीं है। कम-से-कम आपका सम्पादकीय तो यही कहता है। मुझे तो आरम्भ से ही दलित लेखक जातिवादी से अधिक व्यक्तिवादी ही लगे हैं।

'चमारवाद' और 'भंगीवाद'? क्या है, यह सब?

आपने सही आकलन किया है—'उनके (दलितों के) बुद्धिजीवी व नेता तो पहले से ही दुविधाग्रस्त थे।' कोई विचारधारा सम्पन्न व्यक्ति दुविधाग्रस्त नहीं हो सकता। आज एक खास विचारधारा के लोगों को देख कर इस बात की पुष्टि हो जाती है। लगता है दलित लेखकों को आसन्न संकट की आहट सुनाई नहीं दे रही है। दलितों की 'घर-वापसी' कर 'चमार' को 'चमार' और 'भंगी' को 'भंगी' यथावत कर देने की तैयारी है।

दलित साहित्य के हुए ही कितने दिन हैं? आपसी उठापटक से इस पर निस्संदेह नकारात्मक प्रभाव होगा।

आपने सूरजपाल चौहान जी का एक पत्र छापा भी है और उस पत्र का सन्दर्भ अपने सम्पादकीय में भी दिया है। लॉरा जी का कथन दलित साहित्य की अवधारणा में पुरानी बहस को फिर जीवंत करता-सा लगता है। आपने दलित साहित्य की सर्वमान्य परिभाषा भी दी है, उस परिभाषा के 'सम्मान' में स्वयं के नाम को दलित लेखकों की फेहरिस्त से हटाने का भी जिक्र है। फिर संदेह कहां है? या यह परिभाषा दलित साहित्य की परिभाषा ही नहीं है, वह कुछ और है!

आपने सही सुझाया है कि दलित लेखक अपने आलोचक पैदा करें। यों तो अभी समग्र हिंदी साहित्य में ही 'आलोचना' प्रश्नों के घेरे में है, फिर दलित आलोचक कितने 'निष्पक्ष' हो सकेंगे, यह देखना होगा।

आपका सम्पादकीय वर्तमान दलित 'साहित्य-संसार' का सम्यक आकलन-सा है। मैं मनाता हूँ कि दलित लेखकों के जेहन में आपकी चेतावनी का असर हो और वे समय रहते सावधान हो जाएं!

आप इन बिन्दुओं पर अपनी पत्रिका के माध्यम से बहस चला सकतीं तो अच्छा होता!

अपने सम्पादकीय के माध्यम से दलित लेखकों/चिंतकों के लिए विचारणीय बिंदु प्रस्तुत करने के लिए साधुवाद! काश, दलित जमात बनते!

स्वस्थ रहें, दीर्घायु हों!

आपका

प्रह्लाद चंद्र दास

2226, सेक्टर-4, ए, बोकारो स्टील सिटी, बोकारो-827004, मो. 09431743074

प्रेषक:**युद्धरत आम आदमी**

द्वारा : रमणिका फाउंडेशन

1516 पहली मंजिल, वजीर नगर,

कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली-03

कार्यालय : दूरभाष : 011-46577704, मो. : 09910744984

ई-मेल : yuddhrataamaadmi@gmail.com

सेवा में